

श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ



संकलन

श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ

यह संकलन परिकल्पना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाया जा रहा है। हालांकि अभी ये स्टॉक में नहीं है पर आप जनचेतना द्वारा वितरित किया जा रहा अन्य प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य दिये गये अमेजन लिंक से खरीद सकते हैं।

अमेजन लिंक : https://goo.gl/bxmZR5

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविताएं, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ में
- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- हर रविवार किसी महत्वपूर्ण पुस्तक की पीडीएफ

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए इस लिंक का इस्तेमाल करें

www.mazdoorbigul.net/whatsapp

जुड़ने में समस्या आने पर अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें – 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul



श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ

श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

मूल्य : रु. 100.00

पहला संस्करण : जनवरी, 2006
दूसरा संस्करण : सितम्बर, 2011

परिकल्पना प्रकाशन
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226 006 द्वारा प्रकाशित

कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन द्वारा टाइपसेटिंग

मल्टी मीडियम, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण **: रामबाबू**

SHRESHTH ROOSI KAHANIYAN

ISBN 978-81-87425-91-5

संकलन के बारे में

उन्नीसवीं शताब्दी की वैचारिक-कलात्मक समृद्धि की जब भी बात की जायेगी तो बाल्ज़ाक, स्तान्धाल, फ़्लॉबेयर, ह्यूगो, द्यूमा, ज़ोला, मोपासा, डिकेंस, थैकरे, आदि के साथ गोगोल, तुर्गेनेव, दोस्तोयेव्स्की, तोल्स्तोय, चेख़व आदि का भी नामोल्लेख अवश्य किया जायेगा। यूरोप में जब आलोचनात्मक यथार्थवादी धारा की एक प्रवृत्ति फ़्रांस में और दूसरी इंग्लैण्ड में विकसित हो रही थी, उसी समय अपनी सर्वथा अलग पहचान वाली एक तीसरी प्रवृत्ति उस पिछड़े हुए रूस में भी पनप रही थी, जो यूरोप और एशिया का सन्धिस्थल था। इस तीसरी प्रवृत्ति के जन्मदाता पुश्किन थे और इसकी शुरुआती परवरिश लर्मन्तोव, गोगोल और तुर्गेनेव ने की थी। इसका परिपक्व रूप विभिन्न छटाओं के साथ निखरकर दोस्तोयेव्स्की, तोल्स्तोय, गार्शिन, साल्तिकोव-श्चेद्रिन, कोरोलेंको, बूनिन, चेख़व आदि की कृतियों में सामने आया। इनमें से, कहानीकार के रूप में पुश्किन, गोगोल और चेख़व ही दुनिया में अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। अन्य मुख्यतः अपने कालजयी उपन्यासों के चलते विश्वविख्यात रहे हैं। लेकिन इन सभी रचनाकारों ने कई श्रेष्ठ कहानियाँ भी लिखी हैं।

यहाँ हम उन्नीसवीं शताब्दी की सोलह श्रेष्ठ यथार्थवादी कहानियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे पाठकों को उस समृद्ध साहित्य-परम्परा का एक परिचय मिल जायेगा, जिसकी विरासत बीसवीं शताब्दी में सोवियत लेखकों की उस पीढ़ी को मिली जिसने समाजवादी यथार्थवादी धारा का प्रवर्तन और विकास किया। गोर्की, फ़देयेव, फ़ेदिन, अलेक्सेई तोल्स्तोय, लाव्रेन्योव, प्लातोनोव, बुल्गाकोव, पाउस्तोव्स्की आदि सोवियत लेखकों की क़तार

लर्मन्तोव, गोगोल, तुर्गेनेव, दोस्तोयेव्स्की, तोल्स्तोय, चेख़व आदि की समृद्ध परम्परा की ही अगली कड़ी थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के इन महान रूसी लेखकों की रचनाओं को पढ़ना विश्व-साहित्य की अनमोल धरोहर से परिचित होना है। अपने देश की नयी पीढ़ी की सांस्कृतिक समृद्धि के लिए भी यह ज़रूरी है कि वह इन महान लेखकों की श्रेष्ठ रचनाओं से परिचित हो। प्रस्तुत संकलन इसी दिशा में एक छोटा-सा, विनम्र प्रयास है।

- **कात्यायनी**

अनुक्रम



अलेक्सान्द्र पुश्किन

(1799–1836)

"...पुश्किन...महान रूसी लोक-कवि, सुन्दरता और कुशाग्र बुद्धि से मुग्ध करने वाले क़िस्सों के रचयिता, प्रथम यथार्थवादी उपन्यास 'येव्गेनी ओनेगिन' के जन्मदाता, हमारे सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक 'बोरीस गोदुनोव' के लेखक, ऐसे कवि जिनके काव्यगत सौन्दर्य तथा भावों और विचारों को अभिव्यक्ति देने की शक्ति से कोई आज तक बाज़ी नहीं मार सका, वही पुश्किन महान रूसी साहित्य के जनक थे," सोवियत साहित्य के प्रवर्तक मक्सिम गोर्की ने लिखा है।

पुश्किन सर्वप्रथम तो कवि थे जिन्होंने प्रेम और दार्शनिक भावनाओं की उत्कृष्टतम गीतिकाओं का सृजन किया। किन्तु उनके साहित्यिक स्वर्ण-भण्डार में 'कप्तान की बेटी', 'दुब्रोव्स्की' और अन्य गद्य-रचनाएँ भी हैं।

'डाक-चौकी का मुंशी' 'बेल्किन की कहानियाँ' (1830) संग्रह की एक कहानी है जिसमें "छोटे मानव" का विषय पहली बार रूसी साहित्य में असाधारण शक्ति से उभरकर सामने आया।

ताबूतसाज़

नज़र आते हैं ताबूत हर जगह,
पक चले हैं बाल इस दुनिया के!

– देरझाविन

ताबूतसाज़ आद्रियान प्रॅखोरोव के घरेलू साज़–सामान का आख़िरी हिस्सा भी गाड़ी पर लद गया और गाड़ी में जुते मरियल घोड़ों की जोड़ी ने चौथी बार बसमन्नाया गली से निकीत्स्काया गली तक का चक्कर लगाया, जहाँ ताबूतसाज़ अपने समूचे घरबार के साथ जा बसा था। दुकान में उसने ताला डाल दिया और दरवाज़े पर एक तख़्ती जड़ दी कि यह घर बिक्री या किराये के लिए ख़ाली है, और अपने नये निवास–स्थान की ओर पैदल ही चल दिया। एक मुद्दत से इस घर पर उसकी नज़र थी और भारी रक़म देकर उसे ख़रीदा था। लेकिन अब, उस समय जब कि बूढ़ा ताबूतसाज़ इस घर की पीली दीवारों के निकट पहुँच गया था, यह जानकर उसे बड़ा अजीब मालूम हुआ कि उसका हृदय ख़ुशी से छलछला नहीं रहा है। अनजानी दहलीज़ लाँघकर नयी रिहाइश में पाँव रखते समय, जहाँ अभी तक सब कुछ अस्त–व्यस्त और उलटा–पलटा था, उस जर्जर दड़बे के लिए उसके मुँह से एक आह निकल गयी जिसे छोड़कर वह आया था। अठारह साल उसने वहाँ बिताये थे, और व्यवस्था इतनी सख़्त थी कि एक सींक भी इधर से उधर नहीं हो सकती थी। लेकिन यहाँ सभी कुछ अस्त–व्यस्त था। उसने अपनी दोनों लड़कियों और घर की नौकरानी को सख़्त–सुस्त कहा और ख़ुद भी उनका हाथ बँटाने में जुट गया। जल्द ही सब चीज़ें क़रीने से सज गयीं – देव–मूर्ति का आसन, चीनी के बरतनों की अलमारी, मेज़, सोफ़े और पलंग – ये सब पिछले कमरे के विभिन्न कोनों में, अपनी–अपनी जगह पर जमा दिये गये। घर के मालिक का सामान – सभी रंगों और माप के ताबूत, मातमी

लबादों-टोपियों से भरी अलमारियाँ और मशालें, रसोई और बरामदे में जमा दी गयीं। दरवाज़े के ऊपर एक साइनबोर्ड लटका दिया गया जिसमें उल्टी मशाल हाथ में लिये हृष्ट-पुष्ट कामदेव की तस्वीर बनी थी और उसके नीचे लिखा था : "सादे और रंगीन ताबूत यहाँ बेचे और तैयार किये जाते हैं, किराये पर दिये जाते हैं और पुराने ताबूतों की मरम्मत भी की जाती है।"

उसकी लड़कियाँ अपने कमरे में आराम करने चली गयीं और आद्रियान ने अपनी नयी रिहाइश का मुआयना करने के बाद, खिड़की के पास बैठते हुए समोवार गरम करने का आदेश दिया।

जानकार पाठकों से यह छिपा नहीं है कि शेक्सपीयर और सर वाल्टर स्कॉट, दोनों ने ही मैयत का सामान बेचने और क़ब्र खोदने वालों को ख़ुशमिज़ाज और बातूनी चित्रित किया है। यह इसलिए कि उनके धन्धे और स्वभाव में भिन्नता दिखाकर हमारे दिमाग़ों को ज़्यादा प्रभावित किया जा सके। जो हो, सत्य के क़ायल होने के नाते हम उनका अनुकरण नहीं कर सकते, और हमें यह कहना पड़ता है कि हमारे ताबूतसाज़ का स्वभाव उसके मातमी धन्धे के साथ पूर्णतया मेल खाता था। आद्रियान प्रॅखोरोव मुँहबन्द और मोहर्रमी व्यक्ति था। वह बिरले ही अपनी ख़ामोशी तोड़ता था, और सो भी उस समय जब वह अपनी लड़कियों को निठल्लों की भाँति खिड़की से बाहर झाँकते और राह चलतों पर नज़रें डालते देखता, या उस समय जब वह अपने हाथ की बनी चीज़ों के लिए उन अभागों से (या भाग्यशालियों से, मौक़े के अनुसार जैसा भी हो) कसकर दाम माँगता था जिन्हें उन चीज़ों की ज़रूरत आ पड़ती थी। सो आद्रियान, चाय का सातवाँ प्याला सामने रखे, खिड़की से लगा बैठा था और सदा की भाँति अपने मोहर्रमी ख़यालों में डूबा था। उसे उस मूसलाधार बारिश की याद हो आयी जो अभी, पिछले सप्ताह, उस समय पड़नी शुरू हो गयी थी जब कि अवकाश-प्राप्त ब्रिगेडियर की अर्थी का जुलूस चुंगी-दरवाज़े में से गुज़र रहा था। नतीजा यह हुआ कि कितने ही मातमी चोग़ों में सिकुड़ने पड़ गयीं, कितने ही मातमी टोपों के किनारे ऐण्डे-बैण्डे हो गये। उसके मातमी कपड़ों के प्राचीन स्टॉक की हालत दयनीय थी, और इसके लिए भारी रक़म ख़र्च करने की दरकार थी। उसे उम्मीद थी कि सौदागर की विधवा पत्नी त्र्यूखिना के मरने पर सारा घाटा पूरा हो जायेगा। वह बूढ़ी हो चुकी थी, और पूरे एक साल से क़ब्र में पाँव लटकाये अब-मरूँ अब-मरूँ कर रही थी। लेकिन त्र्यूखिना आख़िरी घड़ियाँ गिन रही थी राज़गूल्याइ गली में, और प्रॅखोरोव को डर था कि उसके उत्तराधिकारी – बावजूद इसके कि वे उसे वचन दे चुके थे – उसे इतनी दूर से बुलाने का कष्ट नहीं करेंगे, और पास-पड़ोस के किसी ठेकेदार से सब कुछ तय कर लेंगे।

वह इन्हीं सब विचारों में डूबा था कि यकायक – मानो भगवान ने उसकी पुकार सुन ली हो – बाहर के दरवाज़े को किसी ने तीन बार खटखटाया। ताबूतसाज़ के विचारों का ताँता टूट गया। वह चौंककर चिल्लाया : "कौन है?"

तभी दरवाज़ा खुला और एक आदमी – शक्ल–सूरत से जिसे तुरन्त पहचाना जा सकता था कि कोई जर्मन दस्तकार है – भीतर कमरे में चला आया और ताबूतसाज़ के निकट जाकर प्रसन्न मुद्रा में खड़ा हो गया।

"मुझे माफ़ करना, प्यारे पड़ोसी," टूटी–फूटी रूसी भाषा में उसने कुछ ऐसे अटपटे अन्दाज़ से बोलना शुरू किया कि उसकी याद कर आज भी हँसी रोके नहीं रुकती, "मुझे माफ़ करना अगर मेरे आने से आपको कोई बाधा हुई हो, लेकिन आपसे जान–पहचान करने के लिए मैं इतना उतावला हूँ कि रुक नहीं सकता। मैं मोची हूँ, होत्त्ल्येब शूल्त्स मेरा नाम है, और ठीक सड़क के उस पार सामने वाले उस छोटे से घर में रहता हूँ जिसे आप अपनी खिड़की से देख सकते हैं। कल मैं अपने विवाह की रजत जयन्ती मना रहा हूँ। मैं आपको तथा आपकी लड़कियों को आमन्त्रित करता हूँ कि मेरे यहाँ आयें और मित्रतापूर्ण भोज में शामिल हों।"

ताबूतसाज़ ने सिर झुकाकर निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, और मोची से बैठने तथा लगे हाथ एक प्याला चाय पीने का अनुरोध किया। मोची बैठ गया। वह कुछ इतने खुले दिल का था कि शीघ्र ही दोनों अत्यन्त घुल–मिलकर बातें करने लगे।

"कहिये, आपके धन्धे का क्या हालचाल है?" आद्रियान ने पूछा।

"हे–हो," शूल्त्स ने जवाब दिया। "कभी अच्छा, कभी बुरा। सब चलता है। यह बात ज़रूर है कि मेरा माल आपसे भिन्न है – जो जीवित हैं, बिना जूतों के भी रह सकते हैं, लेकिन मरने के बाद तो ताबूत के बिना चल नहीं सकता।"

"बिल्कुल ठीक कहते हो," आद्रियान ने सहमति प्रकट की। "लेकिन एक बात है। माना कि अगर जीवित आदमी के पास पैसा नहीं है तो वह बिना जूतों के भी रह जाये और तुम्हारी टाल कर जाये; लेकिन मृत भिखारी के साथ ऐसी बात नहीं, बिना कुछ ख़र्च किये ही वह ताबूत पा जाता है।"

इस तरह बातचीत कुछ देर और चलती रही। आख़िर मोची उठा और अपने निमन्त्रण को एक बार फिर दोहराते हुए उसने ताबूतसाज़ से विदा ली।

अगले दिन, ठीक दोपहर के समय, ताबूतसाज़ और उसकी लड़कियाँ नये ख़रीदे घर के दरवाज़े से बाहर निकले और अपने पड़ोसी से मिलने चल दिये। आधुनिक उपन्यासकारों की भाँति, उनकी लीक पर चलते हुए, न तो हम यहाँ आद्रियान प्रॅखोरोव के रूसी काफ़्लान (जामे) का वर्णन करेंगे, और न आकुलिना तथा दारिया के यूरोपीय पहरावे का। फिर भी यह बताना बेकार न

होगा कि दोनों युवतियाँ पीले हैट और लाल जूतियाँ पहने थीं। जिन्हें वे ख़ास-ख़ास मौक़ों पर ही बाहर निकालती थीं।

मोची का छोटा-सा कमरा अतिथियों से भरा था। उनमें अधिकांश जर्मन दस्तकार, उनकी पत्नियाँ और ऐसे युवक थे जो काम सीखने के लिए उसकी शागिर्दी कर रहे थे। रूसी अफ़सरों में से केवल एक वहाँ मौजूद था - पुलिस का सिपाही यूरको। जाति का वह चूखन था, और उसकी आवभगत में मेज़बान ख़ास तौर से जुटा था। पच्चीस साल से पूरी फ़रमाबरदारी के साथ, पॅगॅर्येल्स्की के सुप्रसिद्ध हरकारे की भाँति, वह अपनी नौकरी बजा रहा था। 1812 की अगलग्गी ने, प्राचीन राजधानी को ध्वस्त करने के साथ-साथ, उसकी पीली सन्तरी-चौकी की खोली को भी ख़ाक में मिला दिया था। लेकिन दुश्मन के दुम दबाकर भागते ही उसकी जगह पर एक नयी सन्तरी-चौकी का उदय हो गया - सलेटी रंग की, और सफ़ेद प्राचीन यूनानी दोरियसी बनावट के पायों से अलंकृत। और सिर से पाँव तक लैस यूरको उसके सामने अब फिर, पहले की ही भाँति, इधर से उधर और उधर से इधर गश्त लगाने लगा। निकीत्स्की दरवाज़े के इर्द-गिर्द बसे सभी जर्मनों से वह परिचित था, और उनमें से कुछ तो ऐसे थे जिनके पास उसकी सन्तरी-चौकी के अलावा रात काटने की और कोई जगह नहीं थी। आद्रियान भी उससे - एक ऐसे आदमी से जिसकी देर या सबेर, निश्चय ही उसे भी ज़रूरत पड़ सकती थी - जान-पहचान करने में पीछे नहीं रहा और जब अतिथियों ने मेज़ पर बैठना शुरू किया तो ये दोनों एक-दूसरे के आस-पास बैठे। शूल्त्स, उसकी पत्नी और उनकी सत्रह वर्षीया लड़की लोत्तखेन, अपने अतिथियों के साथ भोजन में शामिल होते हुए भी, बावर्ची को परोसने और रकाबियों में चीज़ें रखने में मदद दे रहे थे। बीयर खुलकर बह रही थी। यूरको अकेले ही चार के बराबर खा-पी रहा था। आद्रियान भी पीछे नहीं था। बातचीत का सिलसिला, जो जर्मन भाषा में चल रहा था, हर घड़ी ज़ोर पकड़ रहा था। सहसा मेज़बान ने सबका ध्यान खींचा, और कोलतार पुती एक बोतल का काग खोलते हुए रूसी भाषा में ज़ोरों से चिल्लाकर कहा :

"नेक लूइस के स्वास्थ्य के नाम!"

काग के निकलते ही तरल शैम्पेन के झाग उफनने लगे। मेज़बान ने अपनी अधेड़ जीवन-संगिनी का ताज़ा रंगतदार चेहरा चूमा, और अतिथियों ने हल्ले-गुल्ले के साथ नेक लूइस के स्वास्थ्य का जाम पिया। इसके बाद, एक दूसरी बोतल का काग खोलते हुए मेज़बान चिल्लाया :

"प्यारे अतिथियों के स्वास्थ्य के नाम!"

और अतिथियों ने, बदले में धन्यवाद देते हुए फिर गिलास ख़ाली कर दिये।

इसके बाद स्वास्थ्य कामना के लिए गिलास खनकाने और ख़ाली करने की

जैसे एक बाढ़ आ गयी – जितने अतिथि थे एक-एक करके उन सबके नाम जाम पिये गये, फिर मास्को और क़रीब एक दर्जन छोटे-मोटे जर्मन नगरों के नाम गिलास खनके, फिर सब धन्धों के नाम एक साथ और उसके बाद अलग-अलग करके गिलास ख़ाली हुए, और इन धन्धों में काम करने वाले कारीगरों तथा सभी नये शागिर्दों के स्वास्थ्य के नाम बोतलों के काग खुले। आद्रियान नशे में धुत्त नहीं हुआ था, काफ़ी सँभलकर वह पी रहा था, लेकिन उस पर भी ऐसा रंग सवार हुआ कि उसने सचमुच में सनकीपन से भरी एक कामना के नाम गिलास ख़ाली कर दिया। इसके बाद एक हट्टे-कट्टे अतिथि ने – जो पावरोटी-बिस्कुट बनाने का काम करता था – अपना गिलास उठाते हुए चिल्लाकर कहा : "उन लोगों के स्वास्थ्य के लिए जिनकी ख़ातिर हम काम करते हैं!" इस कामना का भी, पहले कि भाँति, सभी ने ख़ुशी से स्वागत किया। अतिथि एक-दूसरे के सामने झुक-झुककर गिलास ख़ाली करने लगे – दर्ज़ी मोची के सामने, मोची दर्ज़ी के सामने, पावरोटी बनाने वाला इन दोनों के सामने और सभी अतिथि एक साथ मिलकर पावरोटी बनाने वाले के सामने। एक-दूसरे के सामने झुककर पारस्परिक अभिवादन का यह सिलसिला अभी चल ही रहा था कि यूरको ने ताबूतसाज़ की ओर मुँह करते हुए चिल्लाकर कहा : "आओ पड़ोसी, तुम्हारे मृत आसामियों के स्वास्थ्य का जाम पियें!"

इस पर, एक सिरे से, हँसी ने सबको ग्रस लिया। ताबूतसाज़ को यह बुरा मालूम हुआ, और उसकी भौंहें चढ़ गयीं। लेकिन इधर किसी का ध्यान नहीं गया, अतिथियों का दौर चलता रहा और जब वे मेज़ से उठे तो उस समय रात की आख़िरी प्रार्थना के लिए गिरजे की घण्टियाँ बज रही थीं।

काफ़ी रात ढल जाने पर अतिथि विदा हुए। अधिकांश नशे में धुत्त थे। हट्टा-कट्टा नानबाई और जिल्दसाज़ जिसका चेहरा "लाल मोरक्को की जिल्दचढ़ा" मालूम होता था, पुलिस के सिपाही की दोनों बग़लों में अपने हाथ डाले, उसे उसकी शरणागार की ओर ले चले। इस समय उन्हें यह रूसी कहावत याद आ रही थी कि क़र्ज़ का मज़ा उसकी वसूली में है। ताबूतसाज़ भी अपने घर लौट आया था। वह गुस्से से भरा था और दिमाग़ उसका गड़बड़झाला बना हुआ था। "आख़िर," उसने सस्वर सोचा, "मेरा धन्धा क्या अन्य धन्धों से कम सम्मानपूर्ण है? ताबूतसाज़ और जल्लाद क्या भाई-भाई हैं – क्या उन्हें एक साथ रखा जा सकता है? तो फिर इन विदेशियों के हँसने में क्या तुक है, वे क्यों हँसे? क्या वे ताबूतसाज़ को रंग-बिरंगे कपड़ों में सजा बेढंगा विदूषक समझते हैं? तिस पर मज़ा यह कि इन सबको गृह-प्रवेश के प्रीति-भोज में बुलाने जा रहा था। ओह नहीं, मैं ऐसी बेवक़ूफ़ी नहीं करूँगा। मैं उन्हें ही बुलाऊँगा जिनके लिए मैं काम करता हूँ – अपने ईसाई मृतकों को!"

"ओह मालिक!" नौकरानी ने, जो उस समय ताबूतसाज़ के पाँव से जूते उतार रही थी, अचरज और भय से चीख़ते हुए कहा। "ज़रा सोचिये तो सही कि यह आप क्या कर रहे हैं! सलीब का चिह्न बनाइये, कहीं मृतकों को भी गृह-प्रवेश के लिए बुलाया जाता है? कितनी भयानक बात है यह!"

"ख़ुदा साक्षी है, यह मैं ज़रूर करूँगा," आद्रियान ने कहना जारी रखा। "और कल ही। ऐ मेरे आसामियों, मेरे शुभचिन्तकों, कल रात भोज में शामिल होकर मुझे सम्मानित करना। जो कुछ रूखा-सूखा मेरे पास है, सब तुम्हारा ही दिया हुआ है।"

इन शब्दों के साथ ताबूतसाज़ ने बिस्तर की शरण ली और कुछ ही देर बाद खर्राटे भरने लगा।

सुबह जब आद्रियान की आँखें खुलीं तो अभी काफ़ी अँधेरा था। सौदागर की पत्नी त्र्यूखिना रात में ही मर गयी थी और उसके मुसाहिबों में से एक ने आकर उसे इसकी ख़बर दी थी। वह घोड़े की पीठ पर, तेज़ी से उसे दौड़ाता आया था। ताबूतसाज़ ने वोदका के लिए दस कोपेक उसे इनाम में दिये, तुर्ताफ़ुर्ती कपड़े पहने, एक द्रोश्की पकड़ी और उस पर सवार होकर राज़गूल्याइ पहुँचा। मृतक के घर के दरवाज़े पर पुलिस वाले पहले से तैनात थे, और सौदागर इधर से उधर इस तरह मँडरा रहे थे जैसे सड़ी लाश की गन्ध पाकर कौवे मँडराते हैं। शव मेज़ पर रखा था, चेहरा मोमियाई मालूम होता था, लेकिन नाक-नक़्शा अभी ह्रास से बिगड़ा नहीं था। सगे-सम्बन्धी, अड़ोसी-पड़ोसी, नौकर-चाकर उसके चारों ओर खड़े थे। खिड़कियाँ सभी खुली थीं, मोमबत्तियाँ जल रही थीं; और पादरी मृतक के लिए शान्ति-पाठ कर रहे थे।

आद्रियान मृतक स्त्री के भतीजे के पास पहुँचा। वह युवक सौदागर था और फ़ैशनदार लबादा कोट पहने था। आद्रियान ने उसे सूचना दी कि ताबूत, मोमबत्तियाँ, ताबूत ढँकने का कफ़न और अन्य मातमी साज़-सामान बहुत ही बढ़िया हालत में तुरन्त मुहैया किये जायेंगे। यों ही, उड़ते हुए दिमाग़ से, मृतक के उत्तराधिकारी ने उसे धन्यवाद दिया और कहा कि दामों को लेकर वह झिक-झिक नहीं करेगा, और सब कुछ ख़ुद ताबूतसाज़ के ईमान और नेकनीयती पर पूर्णतया छोड़ देगा। ताबूतसाज़ ने अपनी आदत के अनुसार शपथ लेकर कहा कि वह एक पाई भी ज़्यादा वसूल नहीं करेगा, और इसके बाद मुसाहिब ने उसकी ओर और उसने मुसाहिब की ओर भेदभरी नज़र से देखा, और सामान तैयार करने के लिए गाड़ी पर सवार हो घर लौट आया। दिन-भर वह इसी तरह राज़गूल्याइ और निकीत्स्की दरवाज़े के बीच दौड़ लगाता रहा। कभी जाता, कभी वापस लौटता। साँझ तक उसने सभी कुछ ठीक-ठाक कर दिया और गाड़ी को विदा कर पैदल ही घर लौटा। चाँदनी रात थी। सही-सलामत निकीत्स्की दरवाज़े

पहुँच गया। गिरजा के पास से गुज़रते समय हमारे मित्र यूरको ने उसे ललकारा, लेकिन जब देखा कि अपना ही ताबूतसाज़ है तो उसके लिए शुभरात्रि की कामना प्रकट की। देर काफ़ी हो गयी थी। जब वह अपने घर के पास पहुँचा तो यकायक उसे ऐसा मालूम हुआ मानो कोई दरवाज़े के पास तक गया, दरवाज़े को खोला और फिर भीतर जाकर अन्तर्ध्यान हो गया।

"यह क्या तमाशा है?" आद्रियान अचरज से भर उठा। "इस समय भला कौन मुझसे मिलने आ सकता है? कहीं कोई चोर तो नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं कि कोई सैलानी युवक है जो रात को मेरी नन्ही मूर्खाओं – निठल्ली लड़कियों – से साँठ-गाँठ करने आया हो?"

एक बार तो उसने यहाँ तक सोचा कि अपने मित्र यूरको को मदद के लिए बुला लाये। तभी एक और व्यक्ति दरवाज़े के पास पहुँचा और भीतर पाँव रख ही रहा था कि ताबूतसाज़ को घर की ओर तेज़ी से लपकते हुए देखकर वह निश्चल खड़ा हो गया, और अपने तिरछे टोप को उठाकर अभिवादन करने लगा।

आद्रियान को ऐसा मालूम हुआ मानो उसने यह शक्ल कहीं देखी है, लेकिन जल्दी में उसे ध्यान से नहीं देख सका। हाँफते हुए बोला, "क्या आप मुझसे मिलने आये हैं? चलिये, भीतर चलिये।"

"तकल्लुफ़ के फेर में न पड़ें, मित्र," अनजान ने थोथी आवाज़ में कहा। "आगे-आगे चलिये, और अपने अतिथियों का पथ-प्रदर्शन कीजिये!"

आद्रियान को ख़ुद इतनी उतावली थी कि चाहने पर भी वह तकल्लुफ़ निभा न पाता। उसने दरवाज़ा खोला और घर की सीढ़ियों पर पाँव रखा। दूसरा भी उसके पीछे-पीछे चला। आद्रियान को ऐसा मालूम हुआ मानो उसके कमरों में लोग टहल रहे हैं। "यह सब क्या तमाशा है, मेरे राम?" उसने सोचा और लपककर भीतर पहुँचा... और उसके घुटनों ने जवाब दे दिया। कमरा प्रेतों से भरा था। खिड़की में से चाँदनी भीतर पहुँच रही थी और उनके पीले तथा नीले चेहरों, लटके हुए मुँहों, अधमुँदी आँखों और चोटी-सी नाकों को उजागर कर रही थी... आद्रियान ने भय से काँपकर पहचाना कि ये सब वे ही लोग हैं जिनकी मैयत में उसने योग दिया था, और वह जो उसके साथ भीतर आया था, वही ब्रिगेडियर था जिसे मूसलाधार वर्षा के बीच दफ़नाया गया था। वे सब, पुरुष भी और स्त्रियाँ भी, ताबूतसाज़ के चारों ओर बटुर आये, और सिर झुका-झुकाकर अभिवादन करने लगे। भाग्य का मारा केवल एक ऐसा था जो कुछ दिन पहले मुफ़्त दफ़नाया गया था, पास नहीं आया। बेचारगी की मुद्रा बनाये वह सबसे अलग कमरे के एक कोने में खड़ा था, मानो अपने फटे हुए चिथड़ों को छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो। उसके सिवा अन्य सभी बढ़िया कपड़े पहने थे – स्त्रियों के सिरों पर फ़ीतेदार टोपियाँ थीं, दिवालिया अफ़सर

वर्दियाँ डाटे थे, लेकिन उनकी हजामतें बढ़ी थीं, सौदागरों ने एक-से-एक बढ़िया कपड़े छाँटकर निकाले थे।

"देखा, प्रॅखोरोव!" सबकी ओर से बोलते हुए ब्रिगेडियर ने कहा, "हम सब तुम्हारे निमन्त्रण पर अपनी-अपनी क़ब्रों से उठकर आये हैं। केवल वे जो एकदम असमर्थ हैं, जो पूर्णतया गल-सड़ चुके हैं, नहीं आ सके। इसके अलावा उन्हें भी मन मसोसकर रह जाना पड़ा जो केवल हड्डियों का ढेर-भर रह गये थे और जिनका मांस पूरी तरह गल चुका था। लेकिन इनमें से भी एक अपने-आपको नहीं रोक सका, तुमसे मिलने के लिए वह इतना बेचैन था..."

उसी समय एक छोटा कंकाल कोहनियों से सबको धकियाता हुआ आगे निकल आया और आद्रियान की ओर बढ़ने लगा। उसका मांसहीन चेहरा आद्रियान की ओर बड़े चाव से देख रहा था। चटक हरे और लाल रंग की धज्जियाँ और झिनझिनी सालटी उसके ढाँचे से जहाँ-तहाँ लटकी थीं, जैसे बाँस से लटका दी जाती हैं, और उसके घुटने से नीचे की हड्डियाँ घुड़सवारी के ऊँचे जूतों के भीतर इस तरह खटखटा रही थीं जैसे खरल में मूसली खटखटाती है।

"मुझे पहचाना नहीं, प्रॅखोरोव?" कंकाल ने कहा। "गारद के सार्जेण्ट प्योत्र पैत्रोविच कुरीस्किन को भूल गये, जिसके हाथ तुमने 1798 में अपना पहला ताबूत बेचा था – वही जिसे तुमने बतूल का बताया था, लेकिन निकला वह चीड़ की पतली तख़्तियों का!"

यह कहते हुए आद्रियान का कंकाली आलिंगन करने के लिए उसने अपनी बाँहें फैला दीं। अपनी समूची शक्ति बटोरकर आद्रियान चिल्लाया और कंकाल को उसने पीछे धकेल दिया। प्योत्र पैत्रोविच लड़खड़ाकर फ़र्श पर गिर पड़ा, बिखरी हुई हड्डियों का एक ढेर मात्र। मृतकों में विक्षोभ की एक लहर दौड़ गयी। अपने साथी के अपमान का बदला लेने के लिए वे आद्रियान की ओर लपके – चीख़ते-चिल्लाते, कोसते और धमकियाँ देते। अभागे मेज़बान के होश गुम थे। चीख़-चिल्लाहट ने उसके कान सुन्न कर दिये थे, और वे उसे कुचल देना ही चाहते थे। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया, और लड़खड़ाकर अब वह भी मृत सार्जेण्ट की हड्डियों के ढेर पर गिर पड़ा। वह बेसुध हो गया था।

सूरज की किरनें उस बिस्तरे को आलोकित कर रही थीं जिस पर ताबूतसाज़ सो रहा था। आख़िर उसने आँखें खोलीं और देखा कि नौकरानी समोवार में कोयले दहकाने के लिए फूँक मार रही है। रात की घटनाओं की याद आते ही आद्रियान के शरीर में कँपकँपी-सी दौड़ गयी। त्र्यूखिना, ब्रिगेडियर और सार्जेण्ट कुरीस्किन के धुँधले चेहरे उसके मस्तिष्क पर छाये हुए थे। वह चुपचाप प्रतीक्षा करता रहा कि नौकरानी ख़ुद बातचीत शुरू करेगी और रात की

घटनाओं का बाक़ी हाल उसे बतायेगी।

"मालिक आज आप कितनी देर तक सोये," सुबह के समय पहनने का चोग़ा उसे थमाते हुए अक्सीन्या ने कहा। "हमारा पड़ोसी दर्ज़ी आपसे मिलने आया था, और पुलिस का सिपाही भी एक चक्कर लगा गया है। वह यह कहने आया था कि आज उसका जन्मदिन है। लेकिन आप सो रहे थे, और हमने जगाना ठीक नहीं समझा।"

"अच्छा विधवा त्र्यूखिना के यहाँ से भी कोई आया था? – परमात्मा उसे स्वर्ग में शान्ति दे।"

"यह क्या? क्या त्र्यूखिना मर गयी, मालिक?"

"तुम भी निरी चोंच हो। उसका मातमी साज़-सामान तैयार करने में कल तुम्हीं ने तो मेरा हाथ बँटाया था!"

"आप पागल तो नहीं हो गये, मालिक?" अक्सीन्या ने कहा। "या कल के नशे के बादल अभी तक दिमाग़ पर छाये ही हैं? कल किसी की मैयत का सामान तैयार नहीं हुआ। आप दिन-भर जर्मन के यहाँ दावत उड़ाते रहे, रात को नशे में धुत्त लौटे और अपने इसी बिस्तर पर गिर पड़े जिस पर कि आप अभी तक सोये हुए थे। प्रार्थना के लिए गिरजे की घण्टी भी बजते-बजते आख़िर थककर चुप हो गयी।"

"सचमुच?" ताबूतसाज़ ने सन्तोष की साँस लेते हुए कहा।

"और नहीं तो क्या झूठ?" नौकरानी ने जवाब दिया।

"तो फिर जल्दी से चाय बनाओ, और लड़कियों को यहीं बुला लाओ!"

अनु. – नरोत्तम नागर

डाक-चौकी का मुंशी

छोटा-सा कर्मचारी, भई वाह!
वह तो पूरा तानाशाह!

प्रिंस व्याज़ेम्स्की *

डाक-चौकी के मुंशियों को भला किसने नहीं कोसा होगा, किसकी उनसे तू-तू मैं-मैं नहीं हुई होगी? किसने गुस्से से आगबबूला होकर वह क़िस्मत की मारी हुई शिकायत की कॉपी नहीं माँगी होगी, ताकि उसमें उनकी हठधर्मी, अशिष्टता और लापरवाही के बारे में बेकार ही एक शिकायत और लिख दे? कौन उन्हें दरिन्दों जैसा नहीं मानता, गये-बीते घटिया अफ़सरों जैसा या कम से कम "मुरोम के लुटेरों" के समान नहीं समझता? लेकिन हमें इन्साफ़ से काम लेना होगा, अपने को उनके स्थान पर रखकर देखना होगा, तब शायद हम उनके बारे में ऐसी कठोर राय ज़ाहिर नहीं करेंगे। डाक-चौकी का मुंशी आख़िर है क्या? एक बहुत ही छोटा कर्मचारी जिसके भाग्य में यातना ही यातना है और अगर वह लातों-घूँसों की मार से बच जाता है (सो भी हमेशा नहीं - मेरे पाठक अपनी आत्मा में झाँक लें) तो सिर्फ़ इसलिए कि सरकारी कर्मचारी है। प्रिंस व्याज़ेम्स्की ने मज़ाक़ में जिसे तानाशाह कहा है, वह भला कहाँ का तानाशाह है? क्या वास्तव में उसका काम जेल की चक्की पीसने के समान नहीं है? न दिन को चैन, न रात को आराम। ऊबभरी यात्रा के दौरान यात्री को जो दुख-दर्द सहने पड़ते हैं, उनका सारा ग़ुस्सा डाक-चौकी के मुंशी पर निकलता है। मौसम ख़राब है, सड़क टूटी-फूटी है, कोचवान ज़िद्दी है, घोड़े अड़ियल हैं - इन सब

* 19वीं शताब्दी के कवि प्योत्र व्याज़ेम्स्की की 'डाक-चौकी' कविता (1825) की कुछ परिवर्तित काव्य-पंक्तियाँ। ज़ारशाही रूस में सभी सरकारी कर्मचारियों को श्रेणियों में विभाजित किया गया था और डाक-चौकी का मुंशी सबसे नीची, चौदहवीं श्रेणी में आता था। - सं.

के लिए दोषी है डाक-मुंशी। उसके मामूली-से घर के अहाते में दाख़िल होने पर आगन्तुक एक दुश्मन की तरह उसकी तरफ़ देखता है। इस बिन बुलाये मेहमान से अगर उसे जल्दी ही निजात मिल जाये, तो बड़ी ग़नीमत है। लेकिन अगर घोड़े तैयार न मिलें?... तो हे भगवान, कैसी-कैसी गालियाँ और कैसी-कैसी धमकियाँ सुननी पड़ती हैं उसे! बारिश और कीचड़-गन्दगी में उसे पराये अहातों में भागते फिरना पड़ता है, बुरी तरह झल्लाये हुए यात्री की चीख़-चिल्लाहट और धक्कों-मुक्कों से क्षण-भर को चैन पाने के लिए उसे तूफ़ान और कड़ाके की सर्दी में ड्योढ़ी में जा छिपना पड़ता है। कोई जनरल आ जाता है, तो थर-थर काँपता हुआ डाक-मुंशी उसे तीन घोड़ोंवाली आख़िरी दो घोड़ागाड़ियाँ दे देता है, जिनमें एक डाक की घोड़ागाड़ी भी होती है। जनरल तो धन्यवाद का एक शब्द कहे बिना चल देता है। पाँच मिनट बाद घण्टी की टनटन सुनायी पड़ती है... और सरकारी हरकारा उसकी मेज़ पर आदेशपत्र पटक देता है... आइये, इन सब बातों की गहराई में जायें, तो ग़ुस्से के बजाय हमारा हृदय सच्ची सहानुभूति से भर जायेगा। कुछ शब्द और भी – बीस वर्षों के दौरान मैं सभी दिशाओं में रूस की यात्रा कर चुका हूँ, लगभग सभी रास्ते जानता हूँ, कोचवानों की कई पीढ़ियों से परिचित हूँ, शायद ही कोई ऐसा डाक-चौकी का मुंशी होगा जिसे मैं पहचानता न होऊँ, शायद ही कोई ऐसा होगा जिससे मेरा वास्ता न पड़ा हो। निकट भविष्य में मैं अपने यात्रा-अनुभवों को प्रकाशित करने की आशा करता हूँ। फ़िलहाल केवल इतना ही कहूँगा कि आमतौर पर डाक-चौकी के मुंशियों को बहुत ग़लत रंग में पेश किया गया है। इतने अधिक बदनाम ये डाक-मुंशी कुल मिलाकर बड़े शान्त स्वभाव के लोग होते हैं, दूसरों के काम आना उनके मिज़ाज में है, दूसरों से घुलने-मिलने का उनमें झुकाव होता है, उन्हें यह ग़लतफ़हमी नहीं होती कि कुछ और चाहिए और निन्यानबे के फेर में भी बहुत अधिक नहीं पड़ते। उनकी बातचीत से (जिसे कुछ आगन्तुक महानुभाव बकवास से अधिक कुछ नहीं मानते) बहुत कुछ दिलचस्प और शिक्षाप्रद प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, तो मैं ऊँचे दर्जे के किसी सरकारी कर्मचारी की तुलना में उनकी बातचीत को कहीं अधिक बेहतर मानता हूँ।

इस बात का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि डाक-चौकी के मुंशियों की सम्मानित श्रेणी में मेरे भी कुछ मित्र हैं। वास्तव में उनमें से एक की स्मृति को मैं बहुत मूल्यवान मानता हूँ। परिस्थितियाँ हमें निकट ले आयीं और अपने कृपालु पाठकों के साथ मैं अब उसी की चर्चा करना चाहता हूँ।

1816 के मई महीने की बात है कि मुझे ... गुबेर्निया के उस मार्ग पर यात्रा करनी पड़ी जो अब नहीं रहा। मैं छोटा-सा अफ़सर था, एक डाक-चौकी से

दूसरी डाक–चौकी तक जाता था और दो घोड़ों से अधिक किराये पर लेने के लिए मेरी जेब में पैसे नहीं होते थे। नतीजा यह कि डाक–मुंशी भी मेरा कोई लिहाज़ नहीं करते थे और अक्सर मुझे ज़ोर–ज़बरदस्ती से वह लेना पड़ता था जिसे मैं अपना हक़ समझता था। तब मैं जवान और बहुत गरममिज़ाज था और उन डाक–मुंशियों की क़ायरता और नीचता से जल–भुन उठता जो मेरे लिए तैयार किये गये घोड़ों को ऊँचे अफ़सरों के हवाले कर देते। इसी तरह मैं बहुत अर्से तक इस बात का आदी नहीं हो पाया था कि राज्यपाल की मेज़ पर खाना परोसने के समय बड़े लोगों का ध्यान रखने वाला बैरा मेरी अवहेलना कर देता था। अब तो दोनों बातें मुझे ठीक लगती हैं। आप ही सोचें, अगर सामान्य रूप से स्वीकृत इस नियम की जगह कि "नीची पदवीवाला ऊँची पदवीवाले के सामने झुके" यह नियम लागू हो जाता कि "कम समझदार समझदार के सामने सिर झुकाये" तो क्या होता? अच्छी–ख़ासी मुसीबत खड़ी हो जाती। नौकर– चाकर पहले किसकी सेवा करने दौड़ते? ख़ैर, मैं अपनी कहानी सुनाता हूँ।

बहुत गरम दिन था... चौकी से तीन वेर्स्ता* इधर हल्की बूँदा–बाँदी शुरू हुई एक मिनट बाद इतने ज़ोर की बारिश होने लगी कि मैं बिल्कुल भीग गया। डाक–चौकी पर पहुँचते ही मैंने झटपट कपड़े बदले और चाय लाने के लिए कहा। "अरी दून्या!" मुंशी ने आवाज़ दी, "समोवार गरम करो और कुछ क्रीम ले आओ!" इन शब्दों के साथ ही बीच की दीवार के पीछे से कोई चौदह साल की लड़की सामने आयी और ड्योढ़ी की ओर भाग गयी। उसके सौन्दर्य से मैं दंग रह गया। "यह तुम्हारी बेटी है?" मैंने डाक–मुंशी से पूछा। "जी, मेरी बेटी है," उसने गर्व से प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया, "बड़ी समझदार, बड़ी ही चुस्त–फ़ुर्तीली है, बिल्कुल अपनी दिवंगता माँ जैसी।" वह रजिस्टर में मेरा यात्रा–पत्र दर्ज करने लगा और मैं चित्रों को देखने लगा जिनसे उसका साधारण, किन्तु साफ़–सुथरा घर सजा हुआ था। उन चित्रों में एक उड़ाऊ–खाऊ बेटे का क़िस्सा बयान किया गया था। पहले चित्र में ड्रेसिंग–गाउन और रात की टोपी पहने बूढ़ा एक चंचल किशोर को विदा कर रहा था जो बड़ी उतावली से बाप का आशीर्वाद और उसके हाथ से धन की थैली ले रहा था। दूसरे चित्र में उस नौजवान की अय्याशी को ख़ूब उभारा गया था – वह मतलबी दोस्तों और बेहया औरतों से घिरा हुआ मेज़ पर बैठा था। तीसरे चित्र में तबाह हो गये इसी युवक को फटा चोग़ा पहने और सिर पर तिकोनी टोपी रखे सुअर चराता और उन्हीं की संगत में भोजन करते दिखाया गया था। उसके चेहरे पर गहरे सन्ताप और पश्चाताप की छाप थी। अन्तिम चित्र में उसका पिता के पास लौटना चित्रित था

* वेर्स्ता – डेढ़ किलोमीटर से कुछ अधिक। – सं.

– नेक बुज़ुर्ग वही ड्रेसिंग-गाउन और रात की टोपी पहने हुए बेटे के स्वागत को बाहर भागा आता है। ऐयाश बेटा बाप के पैरों पर गिरा हुआ है, चित्र की पृष्ठभूमि में बावर्ची एक मोटे-ताज़े बकरे को काट रहा है और बड़ा भाई उससे इस ख़ुशी, इस जश्न का कारण पूछ रहा है। हर चित्र के नीचे मैंने जर्मन भाषा में लिखी ढंग की कविता भी पढ़ी। यह सब कुछ मेरी स्मृति में आज भी वैसे ही सजीव है, जैसे फूलोंवाले गमले, पलंग और चटक रंग का पर्दा तथा मेरे इर्द-गिर्द की अन्य सभी चीज़ें। घर के स्वामी को भी ज्यों का त्यों अपनी आँखों के सामने देखता हूँ – उम्र कोई पचास साल, प्रफुल्ल और ताज़गी लिये, हरे रंग का फ़्रॉक-कोट पहने जिस पर बदरंग फ़ीतों के साथ तीन तमगे़ लटक रहे थे।

मैंने अभी पिछली डाक-चौकी के कोचवान के पैसे चुकाये ही थे कि दून्या समोवार लिये हुए आ गयी। उस चंचल किशोरी को यह भाँपते देर न लगी कि उसने मुझ पर कैसा जादू कर दिया है। उसने अपनी बड़ी-बड़ी नीली आँखों को नीचे झुका लिया। मैं उसके साथ बातचीत करने लगा और वह किसी भी तरह की झेंप-झिझक के बिना दुनिया के रंग-ढंग से परिचित लड़की की तरह मुझसे बोलने-बतियाने लगी। मैंने उसके पिता की ओर शराब का एक गिलास बढ़ाया, दून्या को चाय का प्याला दिया और हम तीनों ऐसे घुल-मिलकर बातें करने लगे मानो बरसों से एक-दूसरे को जानते हों।

घोड़े कभी के जोत दिये गये थे, मगर डाक-मुंशी और उसकी बेटी से विदा लेने को मेरा मन नहीं हो रहा था। आख़िर मैंने उनसे विदा ली, पिता ने मेरे लिए शुभयात्रा की कामना की और बेटी मुझे घोड़ागाड़ी तक पहुँचाने को मेरे साथ हो ली। मैं ड्योढ़ी में रुका और मैंने उससे चुम्बन लेने की अनुमति माँगी। दून्या इसके लिए राजी हो गयी... चुम्बनों के बारे में बहुत कुछ कह सकता हूँ मैं तबसे,

जबसे मैंने यह खिलवाड़ शुरू किया है,

किन्तु एक चुम्बन ने भी ऐसी अमिट और मधुर छाप मन पर नहीं छोड़ी।

कई साल बीत गये और परिस्थितियाँ मुझे फिर से उसी रास्ते, उन्हीं जगहों पर ले गयीं। मुझे बूढ़े डाक-मुंशी की बेटी की याद हो आयी और इस ख़याल से मेरा मन खिल उठा कि फिर उससे भेंट हो सकेगी। किन्तु यह विचार भी मन में आया कि बूढ़े मुंशी को शायद नौकरी से अलग कर दिया गया हो, दून्या की शादी हो चुकी हो। दोनों में से किसी एक की मृत्यु की बात भी मेरे दिमाग़ में कौंधी और मैं सभी तरह के बुरे-बुरे ख़याल लिये हुए डाक-चौकी के निकट पहुँचा।

घोड़ागाड़ी डाक-मुंशी के छोटे-से घर के सामने जाकर रुक गयी। कमरे में दाख़िल होते ही मैंने उड़ाऊ-खाऊ बेटे की कहानी बयान करने वाले चित्रों को

पहचान लिया। मेज़ और पलंग अपनी पहले वाली जगहों पर ही थे, किन्तु खिड़कियों के दासों पर फूलों के गमले नहीं थे और इर्द-गिर्द गड़बड़ तथा उपेक्षा साफ़ दिखायी दे रही थी। डाक-मुंशी भेड़ की खाल का कोट ओढ़े हुए सो रहा था, मेरे आने से उसकी आँख खुल गयी और वह थोड़ा-सा उठा... यह तो वही सम्सोन वीरिन था, किन्तु कितना बुढ़ा गया था वह! जब तक वह मेरा यात्रा-पत्र दर्ज करता रहा मैं उसके पके बालों, बहुत समय से बढ़ी दाढ़ीवाले चेहरे की गहरी झुर्रियों और उसकी झुकी हुई पीठ को देखता तथा इस बात से हैरान होता रहा कि तीन-चार सालों में प्रफुल्ल मर्द कैसे जीर्ण-शीर्ण बुढ़ऊ में बदल गया है। "मुझे पहचाना?" मैंने उससे पूछा। "हम तो पुराने परिचित हैं।" - "हो सकता है," उसने उदासी से उत्तर दिया, "यह रास्ता बड़ा चालू है, अनेक लोग मेरे यहाँ आ चुके हैं।" - "तुम्हारी दून्या तो ठीक-ठाक है?" मैंने अपनी बात जारी रखते हुए पूछा। बूढ़े के माथे पर बल पड़ गये। "भगवान जाने," उसने उत्तर दिया। "शायद उसकी शादी हो गयी?" मैंने जानना चाहा। बूढ़े ने ऐसे ढोंग किया मानो मेरा सवाल सुना ही न हो और फुसफुसाते हुए यात्रा-पत्र पढ़ता रहा। मैंने अपने सवाल पूछने बन्द कर दिये और चाय के लिए केतली गरम करने को कहा। जिज्ञासा मुझे बेचैन करने लगी और मेरे मन में यह आशा पैदा हुई कि शराब पीने के बाद मेरे पुराने परिचित की ज़ुबान खुल जायेगी।

मेरा अनुमान सही निकला। बूढ़े ने शराब का गिलास ले लिया और मैंने देखा कि उसकी उदासी के बादल छँट गये हैं। शराब का दूसरा गिलास पीने के बाद वह बतियाने लगा। उसे मेरी याद आ गयी या फिर उसने यह ढोंग किया कि उसे मेरा स्मरण हो आया है और उसने मुझे वह क़िस्सा सुनाया जो उस समय मेरे दिल-दिमाग़ पर छा गया और जिसने मेरे मर्म को छू लिया।

"तो आप मेरी दून्या को जानते थे?" उसने कहना आरम्भ किया, "कौन नहीं जानता था उसे? ओह, दून्या, दून्या! क्या लड़की थी वह भी! जो कोई भी यहाँ आता, उसकी तारीफ़ करता, कोई भी उसे भला-बुरा न कहता। कुलीन नारियों में से कोई उसे दुपट्टा भेंट कर जाती, तो कोई झुमके। इधर से गुज़रने वाले बड़े लोग जान-बूझकर दोपहर या रात का भोजन करने के लिए यहाँ रुक जाते, मगर वास्तव में उनका उद्देश्य यही होता कि अधिक देर तक उसे देखते रहें। ऐसा भी होता था कि कोई महानुभाव चाहे कितना ही झल्लाया हुआ क्यों न आता, उसके सामने शान्त हो जाता और मेरे साथ अच्छे ढंग से बातचीत करता। आप विश्वास करेंगे श्रीमान - सरकारी और सैनिक हरकारे आधा-आधा घण्टे तक उससे बतियाते रहते थे। सारा घर भी वही सँभालती थी - झाड़ना-बुहारना, खाना पकाना, सभी कुछ कर लेती थी वह। मुझ बूढ़े उल्लू की तो उसे देखते-देखते नज़र ही नहीं भरती थी, मेरी ख़ुशी का तो कोई ठिकाना ही नहीं

था। क्या जी-जान से प्यार नहीं करता था मैं अपनी बिटिया को, क्या बहुत सहेजकर नहीं रखता था मैं उसे, कोई कष्ट होने देता था क्या उसे? लेकिन नहीं, मुसीबत से बचा नहीं जा सकता, क़िस्मत में जो लिखा है, वह होकर रहता है।" इसके बाद वह सविस्तार अपनी दर्द-कहानी सुनाने लगा। तीन साल पहले जाड़े की एक शाम को जब डाक-चौकी का मुंशी अपने नये रजिस्टर में लकीरें खींच रहा था और उसकी बेटी बीच की दीवार के पीछे अपने लिए फ़्रॉक सी रही थी, तो तीन घोड़ों की एक गाड़ी - त्रोइका - आकर दरवाज़े पर रुकी। चेर्केसी ढंग की टोपी और बड़ा फ़ौजी कोट पहने तथा शाल लपेटे हुए एक व्यक्ति कमरे में दाख़िल हुआ और उसने घोड़े माँगे। उस वक़्त सभी घोड़े गये हुए थे। यह ख़बर सुनते ही यात्री ने अपनी आवाज़ और कोड़ा भी ऊँचा किया। किन्तु दून्या, जो इस तरह के दृश्यों की आदी हो चुकी थी, बीच की दीवार के पीछे से भागकर सामने आयी और बड़े स्नेह से उसने यात्री से पूछा - आप कुछ खाना पसन्द नहीं करेंगे? दून्या के सामने आने का जो असर होना चाहिए था, वही हुआ। आगन्तुक का ग़ुस्सा ठण्डा पड़ गया, वह घोड़ों का इन्तज़ार करने को राजी हो गया और उसने खाने का आदेश दे दिया। फ़र की झबरीली, गोली टोपी, शाल और बड़ा फ़ौजी कोट उतार देने पर काली मूँछोंवाला एक सुघड़-सुडौल हुस्सार अफ़सर सामने आ गया। डाक-मुंशी के घर में इतमीनान से बैठ वह उससे और उसकी बेटी से हँस-हँसकर बोलने-बतियाने लगा। उसके लिए भोजन परोस दिया गया। इसी बीच घोड़े भी आ गये और मुंशी ने आदेश दिया कि दाना-पानी दिये बिना उन्हें यात्री की बर्फ़-गाड़ी में जोत दिया जाये। किन्तु घर में लौटने पर उसने नौजवान अफ़सर को बेंच पर बेहाल-सा पड़ा पाया। वह बेहोश हो रहा था, उसके सिर में बहुत दर्द था और उसके लिए यात्रा जारी रखना सम्भव नहीं था... तो क्या किया जाये! मुंशी ने अपना पलंग उसे दे दिया और यह तय हुआ कि अगर बीमार की तबीयत बेहतर नहीं हो जायेगी, तो अगली सुबह को स... नगर से डॉक्टर को बुलवाया जाये।

अगले दिन हुस्सार की तबीयत और ज़्यादा ख़राब हो गयी। उसका नौकर घोड़े पर सवार होकर डॉक्टर को लाने के लिए शहर चला गया। दून्या ने सिरके में तर किया हुआ रूमाल उसके सिर पर रखा और अपनी सिलाई लेकर उसके पलंग के पास बैठ गयी। डाक-चौकी के मुंशी की उपस्थिति में रोगी हाय-वाय करता, मुँह से लगभग एक भी शब्द न निकालता, फिर भी वह कॉफ़ी के दो प्याले पी गया और आहें भरते हुए उसने अपने लिए दोपहर के भोजन का भी आदेश दिया। दून्या उसके पास ही बैठी रहती थी। वह बार-बार पीने के लिए कुछ देने को कहता और दून्या ख़ुद बनाये हुए लेमोनाड का गिलास उसे देती। रोगी अपने होंठ तर करता और हर बार गिलास लौटाते हुए कृतज्ञता प्रकट करने

के लिए अपने क्षीण हाथ से उसका हाथ दबाता। दोपहर के भोजन के समय तक डॉक्टर भी आ गया। उसने रोगी की नब्ज़ देखी, उसके साथ जर्मन भाषा में बातचीत की और रूसी में यह बताया कि उसे केवल आराम की ज़रूरत है और दो दिन बाद वह अपनी यात्रा आगे जारी रखने के लायक़ हो जायेगा। हुस्सार ने डॉक्टर को पच्चीस रूबल फ़ीस के रूप में दिये और उसे अपने साथ दोपहर का भोजन करने को आमन्त्रित किया। डॉक्टर राजी हो गया, दोनों ने ख़ूब मज़े से भोजन किया, शराब की पूरी बोतल पी डाली और बहुत ख़ुश-ख़ुश एक-दूसरे से विदा ली।

एक दिन और बीतने पर हुस्सार बिल्कुल भला-चंगा हो गया। वह बड़े रंग में था, लगातार कभी दून्या और कभी डाक-मुंशी के साथ हँसी-मज़ाक़ करता, सीटी बजाते हुए धुनें गुनगुनाता, यात्रियों से बातचीत करता, रजिस्टर में उनके यात्रा-पत्र दर्ज़ करता और इस तरह उसने डाक-मुंशी का ऐसे मन मोह लिया कि तीसरे दिन की सुबह को अपने इतने अच्छे मेहमान से विदा लेते हुए उसके दिल को कुछ हो रहा था। इतवार का दिन था और दून्या प्रार्थना के लिए गिरजे में जाने को तैयार हो रही थी। हुस्सार की बर्फ़-गाड़ी दरवाज़े के सामने लायी गयी। उसने डाक-मुंशी से विदा ली और अपने यहाँ ठहराने तथा खिलाने-पिलाने के लिए बहुत-सा पुरस्कार दिया। उसने दून्या से भी विदा ली और यह कहा कि उसे वह अपनी घोड़ागाड़ी में गिरजे तक पहुँचा देगा जो गाँव के छोर पर था। दून्या दुविधा में पड़कर जहाँ की तहाँ खड़ी रह गयी... "अरे, तुम डर क्यों रही हो?" पिता ने उससे कहा, "ये महानुभाव कोई भेड़िया तो हैं नहीं, जो तुम्हें खा जायेंगे, गिरजे तक इनकी गाड़ी में चली जाओ।" दून्या हुस्सार की बर्फ़-गाड़ी में उसकी बग़ल में बैठ गयी, नौकर बॉक्सवाली सीट पर जा बैठा, कोचवान ने सीटी बजायी और घोड़े सरपट दौड़ने लगे।

बेचारा डाक-मुंशी यह समझने में असमर्थ था कि कैसे उसने अपनी दून्या को हुस्सार के साथ जाने दिया, कैसे उसकी आँखों पर पर्दा पड़ गया था और उसकी अक्ल कहाँ घास चरने चली गयी थी। आधा घण्टा भी नहीं बीता था कि उसका दिल बुरी तरह बेचैन होने लगा और उसकी परेशानी इस हद तक बढ़ी कि बेटी को ढूँढ़ने के लिए ख़ुद गिरजे में चला गया। गिरजे के निकट पहुँचने पर उसने देखा कि लोग जा रहे हैं, किन्तु दून्या न तो अहाते में थी और न ही गिरजे की ड्योढ़ी में। वह तेज़ डग भरता हुआ गिरजे में पहुँचा : पादरी देव-मण्डप से बाहर निकल रहा था, गिरजे की देखभाल करने वाला मोमबत्तियाँ बुझा रहा था, दो बूढ़ी औरतें अभी तक एक कोने में प्रार्थना कर रही थीं, किन्तु दून्या गिरजे में नहीं थी। अभागे पिता ने आख़िर मन मारकर गिरजे के चौकीदार से यह पूछा कि दून्या प्रार्थना में आयी थी या नहीं। उसने जवाब दिया कि नहीं

आयी थी। डाक-मुंशी न जीता, न मरता-सा वापस घर चल दिया। सिर्फ़ यही आस उसके दिल में रह गयी – हो सकता है कि जवानी की मस्ती में आकर दून्या ने अगली डाक-चौकी तक, जहाँ उसकी धर्म-माता रहती थी, जाने की ठान ली हो। बहुत ही यातनापूर्ण विह्वलता से वह उस त्रोइका बर्फ़-गाड़ी के लौटने की राह देखने लगा, जिस पर उसने अपनी बेटी को जाने दिया था। कोचवान नहीं लौटा। आख़िर रात हो जाने पर वह नशे में धुत्त अकेला लौटा और उसने यह भयानक ख़बर सुनायी – अगली डाक-चौकी से दून्या हुस्सार के साथ चली गयी।

अपने दुर्भाग्य की इस चोट को बूढ़ा सहन न कर सका, उसी समय उसने वह चारपाई थाम ली जिस पर वह जवान ढोंगी पिछले दिन पड़ा रहा था। सारी परिस्थितियों पर विचार करते हुए डाक-मुंशी समझ गया कि उस जवान ने बीमारी का नाटक किया था। बेचारे को ज़ोर के बुख़ार ने धर दबाया, उसे स... नगर में इलाज के लिए ले जाया गया और किसी अन्य को वक़्ती तौर पर उसकी जगह नियुक्त कर दिया गया। हुस्सार के इलाज के लिए आने वाले डॉक्टर ने ही उसकी चिकित्सा की। उसने डाक-मुंशी को विश्वास दिलाया कि नौजवान अफ़सर बिल्कुल स्वस्थ था, कि उसके बुरे इरादे के बारे में उसने तभी भाँप लिया था, किन्तु उसके कोड़े से डरता हुआ ख़ामोश रहा था। जर्मन डॉक्टर ने सच कहा था या अपनी दूरदर्शिता की डींग हाँकनी चाही थी, बेचारे रोगी को इससे कोई सन्तोष नहीं हुआ। अपनी बीमारी से थोड़ा अच्छा होते ही डाक-मुंशी ने स... नगर के डाक अधिकारी से दो महीने की छुट्टी ली और किसी से भी अपने इरादे की चर्चा किये बिना पैदल ही अपनी बेटी की खोज में चल दिया। यात्रा-पत्र से उसे मालूम था कि कप्तान मीन्स्की स्मोलेन्स्क से आया था और पीटर्सबर्ग गया था। कप्तान को ले जाने वाले कोचवान ने बताया कि दून्या रास्ते-भर रोती रही, यद्यपि ऐसा लगता था कि वह गयी थी अपनी इच्छा से। "शायद मैं अपने उस राह भूले मेमने को घर वापस ला सकूँगा।" मन में यही विचार लिये हुए वह पीटर्सबर्ग पहुँचा, इज़्माइलोव पलटन की बारेक में अपने एक पुराने, सेवानिवृत्त नान-कमीशण्ड साथी के यहाँ ठहरा और उसने अपनी खोज शुरू कर दी। जल्द ही उसे पता चल गया कि कप्तान मीन्स्की पीटर्सबर्ग में है और देमुतोव होटल में रह रहा है। डाक-मुंशी ने उसके यहाँ जाने का निर्णय किया।

वह तड़के ही उसके दरवाज़े पर पहुँचा और अर्दली से यह सूचना देने का अनुरोध किया कि एक बूढ़ा सैनिक हुज़ूर से मिलना चाहता है। घुटनों तक के जूतों को एक बक्से पर रखकर साफ़ कर रहे फ़ौजी अर्दली ने उसे बताया कि साहब सो रहे हैं और ग्यारह बजे से पहले वे किसी से नहीं मिलते। डाक-मुंशी

चला गया और नियत समय पर फिर से यहाँ आया। ड्रेसिंग-गाउन पहने और सिर पर लाल टोपी रखे हुए मीन्स्की खुद बाहर आया। "कहो भाई, क्या चाहिए तुम्हें?" उसने पूछा। बूढ़े के दिल में तूफ़ान-सा उमड़ पड़ा, उसकी आँखें छलछला आयीं और काँपती आवाज़ में वह केवल इतना ही कह पाया, "हुज़ूर, इतनी मेहरबानी कीजिये!..." मीन्स्की ने झटपट उसकी तरफ़ देखा, उसके गालों पर सुर्खी दौड़ गयी, उसका हाथ पकड़कर वह उसे अपने कमरे में ले गया और उसने भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया। "हुज़ूर," बूढ़े ने फिर से कहा, "उतरा हुआ पानी वापस नहीं आता, पर कम से कम मुझे मेरी बेचारी दून्या तो लौटा दीजिये। आपने उससे अपना जी खुश कर लिया, लेकिन अब व्यर्थ उसका जीवन तो नष्ट नहीं करें।" – "जो हो गया, उसे लौटाया नहीं जा सकता," बड़ी उलझन में पड़े युवा अफ़सर ने कहा, "मैं तुम्हारे सम्मुख दोषी हूँ और क्षमा चाहता हूँ; मगर तुम यह न सोचो कि मैं उसे कूड़े-करकट में फेंक सकता हूँ। क़सम खाकर कहता हूँ कि वह सुखी रहेगी। तुम उसे ले जाकर क्या करोगे? वह मुझे प्यार करती है, अपनी पहली स्थिति की अभ्यस्त नहीं रही। जो कुछ हो गया है, उसे न तो तुम और न वही भूल सकती है।" इसके बाद उसकी आस्तीन में कुछ खोंसकर उसने दरवाज़ा खोल दिया और डाक-मुंशी कुछ न समझ पाते हुए सड़क पर बाहर आ गया।

बूढ़ा देर तक बुत बना खड़ा रहा। आख़िर उसे आस्तीन के कफ़ से काग़ज़ों की एक गड्डी-सी दिखायी दी। उसने उस निकालकर खोला और उसमें पाँच तथा दस-दस रूबल के कई मुड़े-मुड़ाये नोट पाये। उसकी आँखों में फिर से आँसू आ गये – विक्षोभ के आँसू। उसने नोटों को मसलकर उनका गोला-सा बनाया, उसे ज़मीन पर फेंका, जूते की एड़ी से रौंदा और आगे चल दिया... कुछ क़दम जाकर वह रुका, उसने थोड़ी देर विचार किया और मुड़ा... किन्तु नोट ग़ायब हो चुके थे। लक-दक कपड़े पहने एक नौजवान उसे अपनी ओर आते देखकर बग्घी की तरफ़ लपका, जल्दी से उसमें बैठ गया और उसने चिल्लाकर कोचवान से कहा, "चलो!..." डाक-मुंशी ने उसका पीछा नहीं किया। उसने अपनी डाक-चौकी पर लौटने का फ़ैसला कर लिया, किन्तु ऐसा करने से पहले अपनी बेचारी दून्या को एक बार देख लेना चाहा। दो दिन बाद वह पुनः मीन्स्की के यहाँ लौटा। किन्तु फ़ौजी अर्दली ने बड़ी कठोरता से उससे कहा कि मालिक किसी से नहीं मिलते, धकियाकर उसे ड्योढ़ी से बाहर निकाला और फटाक से दरवाज़ा बन्द कर दिया। डाक-मुंशी खड़ा रहा, खड़ा रहा – और फिर वापस चला गया।

बूढ़ा उसी शाम को गिरजे की प्रार्थना के बाद लितेयनाया सड़क पर जा रहा था। अचानक उसके सामने से एक बढ़िया बग्घी गुज़री और उसने उसमें

बैठे मीन्स्की को पहचान लिया। बग्घी एक तिमंज़िले मकान के दरवाज़े के सामने रुकी और हुस्सार भागकर ओसारे में चला गया। डाक-मुंशी को एक बात सूझी। वह मुड़ा और कोचवान के पास जाकर उसने पूछा, "किसकी बग्घी है यह भाई? मीन्स्की की तो नहीं?" - "उन्हीं की है," कोचवान ने जवाब दिया, "मगर तुम्हें इससे मतलब?" - "बात यह है कि तुम्हारे साहब ने दून्या के पास पहुँचा देने के लिए एक रुक्का मुझे दिया था, लेकिन मुझे याद नहीं आ रहा कि दून्या कहाँ रहती है?" - "यहीं रहती है, दूसरी मंज़िल पर। देर कर दी तुमने, मेरे भाई, रुक्क़ा लेकर आने में। अब तो साहब ख़ुद उसके पास हैं।" - "इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता," दिल में अस्पष्ट-सी धड़कन अनुभव करते हुए बूढ़े ने कोचवान की बात काटी। "सूचना देने के लिए धन्यवाद, मैं अपना कर्त्तव्य पूरा कर आता हूँ।" इतना कहकर वह ज़ीने पर चढ़ चला।

दरवाज़ा बन्द था। उसने घण्टी बजायी और उसके लिए बहुत बोझिल प्रतीक्षा के कुछ क्षण बीते। चाबी को ताले में डालने की आवाज़ हुई और दरवाज़ा खुला। "अव्दोत्या सम्सोनोव्ना क्या यहीं रहती हैं?" उसने पूछा। "हाँ," जवान नौकरानी ने जवाब दिया। "तुम्हें उनसे क्या काम है?" डाक-मुंशी ने कोई उत्तर नहीं दिया और भीतर बढ़ चला। "भीतर नहीं जाइये, नहीं जाइये!" नौकरानी पीछे से चिल्लायी, "अव्दोत्या सम्सोनोव्ना के यहाँ इस समय मेहमान हैं।" किन्तु डाक-मुंशी उसकी बात पर कान दिये बिना आगे चलता गया। पहले दो कमरों में अँधेरा था, तीसरे में रोशनी थी। खुले दरवाज़े के पास आकर वह रुक गया। बहुत ही सजे-धजे कमरे में मीन्स्की सोच में डूबा हुआ बैठा था। आधुनिकतम फ़ैशन की पुतली-सी बनी दून्या उसकी आरामकुर्सी के हत्थे पर ऐसे बैठी थी, जैसे कोई नारी-घुड़सवार अंग्रेज़ी ज़ीन पर बैठी हो। वह मुग्ध भाव से मीन्स्की को देखती हुई उसके काले घुँघराले बालों को अपनी हीरों से चमकती उँगलियों के गिर्द लपेट रही थी। बेचारा डाक-चौकी का मुंशी! उसे अपनी बेटी कभी भी इतनी सुन्दर नहीं लगी थी, वह बरबस उसे देखता ही रह गया। "कौन है वहाँ?" दून्या ने सिर ऊपर उठाये बिना पूछा। बूढ़ा बाप चुप रहा। कोई उत्तर न मिलने पर दून्या ने सिर ऊपर उठाया... और वह चीख़ मारकर कालीन पर गिर गयी। मीन्स्की घबराकर उसे उठाने के लिए लपका, अचानक डाक-मुंशी को दरवाज़े के पास खड़ा देखकर उसने दून्या को वहीं छोड़ दिया और ग़ुस्से से काँपता हुआ उसके पास गया, "क्या चाहिए तुम्हें?" उसने दाँत पीसते हुए पूछा, "चोरों की तरह हर जगह मेरा पीछा क्यों करते रहते हो? या तुम मेरी जान लेने के फेर में पड़े हो? दफ़ा हो जाओ यहाँ से!" और उसने अपने मज़बूत हाथ से बूढ़े का कॉलर पकड़कर उसे ज़ीने की ओर धकेल दिया।

बूढ़ा बारेक में वापस आया। उसके दोस्त ने सुझाव दिया कि वह मीन्स्की

के ख़िलाफ़ शिकायत करे, किन्तु डाक-मुंशी ने कुछ देर सोचकर हाथ झटका और इस ख़याल को रद्द कर दिया। दो दिन बाद वह पीटर्सबर्ग से अपनी डाक-चौकी को वापस चल पड़ा और फिर से वही पुराना काम करने लगा। "तो अब तीसरा साल चल रहा है इस बात को," उसने अन्त में कहा, "मैं दून्या के बिना रह रहा हूँ और कोई ख़ैर-ख़बर नहीं है मुझे उसके बारे में। वह ज़िन्दा है या मर गयी, भगवान ही जाने। सब कुछ होता है इस दुनिया में। किसी आते-जाते छैल-छबीले के फेर में पड़ जाने वाली वह न तो पहली है और न आख़िरी, जिसके साथ मौज मनाकर फिर उसे एक तरफ़ फेंक दिया जाता है। पीटर्सबर्ग में ऐसी बहुत-सी बुद्धू युवतियाँ हैं जो आज मख़मल और रेशम से लदी हुई हैं, मगर कल फटेहाल शराबियों-पियक्कड़ों के साथ सड़कें बुहारती दिखायी देती हैं। जैसे ही कभी यह ख़याल आता है कि दून्या की भी ऐसी दुर्गति हो सकती है, तो अनचाहे ही मेरा मन उसकी मौत की कामना करने लगता है..."

तो यह थी दर्द-कहानी मेरे मित्र, बूढ़े मेरे डाक-मुंशी की, जिसे सुनाते हुए अनेक बार उसका गला रुँध गया था। अपने आँसुओं को वह वैसे ही अनूठे अन्दाज़ में कोट के पल्लू से पोंछता था जैसे द्मीत्रियेव की सुन्दर कविता में उद्यमी तेरेन्तिच* करता है। उसके आँसू कुछ हद तक शराब के प्रभाव का भी परिणाम थे, जिसके वह कहानी सुनाते हुए पाँच गिलास पी गया था। कुछ भी क्यों न हो, उसके आँसुओं ने मेरे मर्म को अत्यधिक छू लिया था। उससे अलग होने पर मैं बहुत समय तक बूढ़े डाक-मुंशी को नहीं भूल सका, बेचारी दून्या के बारे में भी बहुत समय तक मेरे मन में विचार बने रहे...

कुछ ही समय पहले... बस्ती में से गुज़रते हुए मुझे अपने मित्र का ध्यान हो आया। मालूम करने पर पता चला कि जिस डाक-चौकी का वह मुंशी था, उसे कभी का बन्द किया जा चुका है। मेरे इस प्रश्न का कि "बूढ़ा डाक-मुंशी ज़िन्दा है या नहीं?" किसी से सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। मैंने अपने सुपरिचित स्थान को देखने के लिए जाने का निर्णय किया, किराये की बग्घी ली और "न" गाँव की ओर चल दिया।

यह पतझड़ के दिनों की बात है। धूसर बादल आकाश को ढँके हुए थे, फ़सल-कटे खेतों से ठण्डी हवा आ रही थी और रास्ते में आने वाले वृक्षों के लाल तथा पीले पत्ते अपने साथ उड़ाकर ला रही थी। मैं सूर्यास्त के समय गाँव में पहुँचा और डाक-चौकी वाले घर के सामने रुका। उस ड्योढ़ी में (जहाँ

---

* 18वीं शताब्दी के रूसी कवि इवान द्मीत्रियेव की एक कविता में वर्णित बन्धक-दास तेरेन्तिच की ओर संकेत है। – सं.

कभी बेचारी दून्या ने मुझे चूमा था) एक मोटी-सी औरत सामने आयी और मेरे सवाल के जवाब में उसने बताया कि बूढ़े डाक-मुंशी को मरे हुए एक साल हो गया, कि उसके घर में अब एक बियर बनाने वाला रहने लगा है और वह उसी बियर बनाने वाली की बीवी है। मुझे अपनी व्यर्थ की यात्रा और व्यर्थ ख़र्च किये गये सात रूबलों के लिए अफ़सोस हुआ। "किस कारण मृत्यु हुई उसकी?" मैंने बियर बनाने वाले की बीवी से पूछा। "शराब में डूब गया था, भैया।" उसने जवाब दिया। "उसे दफ़नाया कहाँ गया है?" – "गाँव के छोर पर, उसकी बीवी की बग़ल में।" – "क्या कोई मुझे वहाँ तक पहुँचा सकता है?" – "क्यों नहीं पहुँचा सकता! ए वान्का, बिल्ली का पिण्ड छोड़। इन साहब को क़ब्रिस्तान ले जाकर डाक-मुंशी की क़ब्र दिखा दो।"

ये शब्द सुनते ही फटे-पुराने कपड़े पहने लाल बालोंवाला काना लड़का भागता हुआ मेरे पास आया और मुझे गाँव के छोर की ओर ले चला।

"क्या तुम डाक-मुंशी को जानते थे?" मैंने रास्ते में उससे पूछा।

"जानता कैसे नहीं था! उन्होंने मुझे सीटी बनानी सिखायी थी। कभी-कभी ऐसा होता था कि वे शराबख़ाने से बाहर आते (भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे!) और हम उनके पीछे-पीछे शोर मचाने लगते, 'दादा, दादा! अखरोट दो!' और वे हमें सारे अखरोट दे डालते। वे हमारे साथ खेलते रहते थे।"

"राहगीर उन्हें याद करते हैं या नहीं?"

"राहगीर तो अब यहाँ आते ही बहुत कम हैं। कोई अदालती अफ़सर आ जाये, तो बात दूसरी है और वह मुर्दों के बारे में पूछताछ नहीं करता। हाँ, गर्मियों में एक कुलीन महिला आयी थीं, उन्होंने बूढ़े डाक-मुंशी के बारे में पूछताछ की और उनकी क़ब्र पर गयी थी।"

"कैसी थी वह महिला?" मैंने जिज्ञासावश पूछा।

"बहुत ही सुन्दर थीं," लड़के ने जवाब दिया, "वे छह घोड़ों वाली बग्घी में यहाँ आयीं, उनके साथ तीन बच्चे, आया और एक छोटा-सा काला कुत्ता भी था। जैसे ही उन्हें यह बताया गया कि डाक-चौकी वाला बूढ़ा इस दुनिया में नहीं रहा, वे रो पड़ीं और बच्चों से बोलीं, 'यहाँ चैन से बैठे रहना, मैं क़ब्रिस्तान हो आती हूँ।' मैंने उनके साथ चलना चाहा, किन्तु वे बोलीं, 'मैं ख़ुद रास्ता जानती हूँ।' और उन्होंने मुझे चाँदी का पाँच कोपेक का एक सिक्का दिया – इतनी अच्छी थीं वे!..."

हम क़ब्रिस्तान में पहुँच गये, एकदम उजाड़-सुनसान जगह, जिसके गिर्द बाड़ नहीं थी, सभी जगह लकड़ी की सलीबें लगी हुई थीं और छाया देने वाला एक भी वृक्ष नहीं था। ज़िन्दगी में कभी ऐसा मनहूस क़ब्रिस्तान मैंने नहीं देखा।

"यह है डाक-चौकी वाले बूढ़े की क़ब्र," लड़के ने बालू के ढूह पर

उछलकर चढ़ते हुए कहा, जिसमें ताँबे की देव–प्रतिमा वाली काली सलीब धँसी थी।

"वह महिला यहाँ आयी थी?" मैंने पूछा।

"हाँ, आयी थीं," वान्का ने जवाब दिया। "मैं उन्हें दूर से देखता रहा था। वे यहाँ आकर गिर गयीं और देर तक ऐसे ही पड़ी रहीं। इसके बाद वे गाँव में गयीं, उन्होंने पादरी को बुलवाया, उसे पैसे दिये और चल दीं। मुझे चाँदी का पाँच कोपेक का सिक्का दिया – बहुत अच्छी थीं वे महिला।"

मैंने भी लड़के को पाँच कोपेक का सिक्का दिया और अब मुझे न तो यहाँ तक की यात्रा करने और न ही उन सात रूबलों का अफ़सोस था जो मैंने ख़र्च किये थे।

1831

अनु. – मदनलाल 'मधु'



मिख़ाईल उरिएविच लर्मन्तोव

(1818–1841)

मिख़ाईल उरिएविच लर्मन्तोव का जन्म भी, पुश्किन के ही समान एक कुलीन और धनी परिवार में हुआ था, और पुश्किन के ही समान एक द्वन्द्व–युद्ध में उनकी मृत्यु हुई। लर्मन्तोव की मृत्यु यद्यपि 27 वर्ष की तरुण अवस्था में ही हो गयी, फिर भी रूसी साहित्य में उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

1834 में एक सैनिक शिक्षालय से उत्तीर्ण होने के बाद अन्त तक लर्मन्तोव का जीवन सेना में ही बीता था। 1837 में पुश्किन की हत्या पर उन्होंने एक कविता लिखी। इसकी एक प्रति दुर्भाग्य से निकोलस प्रथम के हाथों में भी पहुँच गयी। फिर क्या था! लर्मन्तोव गिरफ़्तार कर लिये गये और उन्हें निर्वासित कर दिया गया। 14 माह बाद उन्हें पीटर्सबर्ग लौटने की अनुमति दे दी गयी। किन्तु 1840 में फ़्रांसीसी राजदूत के पुत्र के साथ वह द्वन्द्व युद्ध में उलझ गये और उन्हें कारागृह में डाल दिया गया।

कारागृह में महान रूसी आलोचक बेलेन्स्की ने लर्मन्तोव से मुलाक़ात की। मुलाक़ात के बाद बेलेन्स्की ने अपने उद्गार इन शब्दों में प्रकट किये :

"ओह! यह तो महान ईवान बुर्ज के समान ही ऊँचा कवि होगा।"

कविताओं के अतिरिक्त लर्मन्तोव ने सुप्रसिद्ध उपन्यास "हमारे युग का एक नायक" और अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं। वे एक अच्छे

चित्रकार भी थे।

लर्मन्तोव की मृत्यु जिस द्वन्द्व–युद्ध में हुई, उसकी शर्तें विचित्र थीं। एक शर्त यह भी थी कि वह लड़ाई एक ऊँची चट्टान के सिरे पर लड़ी जायेगी। लर्मन्तोव ज़ख़्मी हो गये, और चट्टान के सिरे से खड्ड में गिरकर मर गये।

आशिक़-ग़रीब

बहुत-बहुत दिन पहले की बात है। तिफ़लिस नगर में कोई एक धनी तुरुक रहता था। अल्लाह ने उसका घर ख़ूब सोने से पाट दिया था। लेकिन इस ढेर सारे सोने से भी ज़्यादा प्यारी एक चीज़ उसके पास थी। वह चीज़ थी उसकी अपनी लड़की मग़ुल-माग़री। आकाश में तारों की छवि का क्या कहना, लेकिन इन तारों की ओट में बसते हैं फ़रिश्ते, और ये फ़रिश्ते उनसे भी ज़्यादा सुन्दर होते हैं। यही बात मग़ुल-माग़री के बारे में थी। तिफ़लिस की सारी सुन्दरियाँ उसके आगे पानी भरती थीं।

तिफ़लिस नगर में ही एक लड़का भी रहता था। उसका नाम था आशिक़-ग़रीब। नंगा-बूचा ही अल्लाह ने उसे इस दुनिया में भेजा था, और नंगा-बूचा ही उसे रखा। उदात्त हृदय और गीत बनाने की प्रतिभा, इनके सिवा अल्लाह ने उसे और कुछ नहीं दिया था। वह अपना साज़, अपना रुबाब उठाता, उसकी झंकार पर तुर्किस्तान के प्राचीन वीरों के तराने गाता, ब्याह-शादियों में जाकर धनी लोगों की ख़ुशी के मौक़ों पर उनका जी बहलाता। ब्याह-शादी के ऐसे ही एक मौक़े पर मग़ुल-माग़री को पहली बार उसने देखा था। तभी से दोनों एक-दूसरे को चाहने लगे। लेकिन मग़ुल-माग़री आशिक़-ग़रीब के लिए निर्धन का सपना थी, और उसका हृदय उतना ही उदास हो गया जितनी कि जाड़ों की रात होती है।

सो एक दिन बाग़ में अंगूर की बेल तले घास पर पड़े-पड़े उसकी आँखें झपक गयीं। संयोग की बात कि उसी समय अपनी सखी-सहेलियों के साथ मग़ुल-माग़री उधर से गुज़री। सखी-सहेलियों में एक ने देखा कि आशिक़-ग़रीब, अथवा रुबाब-वादक सो रहा है। वह ठिठककर पीछे रह गयी और उसके पास पहुँची। वह गुनगुना उठी :

"दीवाने, ओ दीवाने!
अंगूरी लता-वितान तले लम्बी ताने
क्यों पड़ा यहाँ! - उठ दीवाने!

उठ जाग देख तेरी हिरनी
तेरे समीप से गुज़र रही है अनजाने!
ओ दीवाने!"

वह चेता। नन्ही चिड़िया की भाँति लड़की फुर्र से भाग गयी। मगुल-मागरी ने उसे गुनगुनाते हुए सुन लिया था। वह उसे झिड़कने लगी।

लड़की ने जवाब दिया :

"ऐ काश कि तुझे पता होता, किसको वह गीत सुना आयी, तो मुझे झिड़कने के बजाय तू लाख शुक्रिया ही देती। वह और कोई न था सजनी, वह था तेरा आशिक़-ग़रीब।"

"मुझे ले चल उसके पास।" मगुल-मागरी ने कहा, और वे चल दीं।

आशिक़-ग़रीब का चेहरा उदासी में डूबा था। यह देखकर मगुल-मागरी उसका हाल-चाल पूछने और उसे ढाढस बँधाने लगी।

"दुख का घूँट पीने के सिवा मैं और कर भी क्या सकता हूँ," आशिक़-ग़रीब ने उससे कहा। "मैं तुझसे प्यार करता हूँ, फिर भी तू कभी मेरी नहीं हो सकती।"

"विवाह के लिए मेरे पिता से बात करो न!" मगुल-मागरी ने कहा। "अपने ही ख़र्च से वह शादी कर देंगे और मुझे इतना धन देंगे जो हम दोनों की गुज़र-बसर के लिए काफ़ी होगा।"

"कहती तो तू ठीक है," उसने जबाव दिया। "अपनी लड़की की ख़ुशहाली के लिए अयाक-आग़ा कोई कोताही नहीं करेंगे। लेकिन कौन जाने आगे चलकर कहीं तेरे मन में यह गुमान पैदा न हो जाये कि मेरे पास निज का कुछ नहीं था, और जो कुछ भी है वह सब तेरी बदौलत है। नहीं, मेरी प्यारी मगुल-मागरी, मैंने तो अपनी रूह को एक फ़र्ज़ सौंप दिया है : मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सात साल तक मैं दुनिया की ख़ाक छानूँगा, या तो धन-दौलत जमा करूँगा या दूर किसी जंगल में ख़त्म हो जाऊँगा। अगर तुझे यह मंजूर हो तो इस अवधि के बीत जाने पर तू मेरी हो जायेगी।"

वह राजी हो गयी, लेकिन उसने यह ज़रूर कहा कि अगर वह नियत तिथि को नहीं लौटा तो वह कुरदूश-बे की बीवी हो जायेगी जो कि एक मुद्दत से उसकी मुहब्बत तलब कर रहा है।

आशिक़-ग़रीब अपनी माँ के पास पहुँचा। माँ से उसने आशीर्वाद लिया। अपनी छोटी बहन का उसने मुँह चूमा। कन्धे पर एक थैला डाला, हाथ में दरवेशों वाली लाठी सँभाली और तिफ़लिस नगर से चल पड़ा।

और तभी एक घुड़सवार लपकता हुआ आया। आशिक़-ग़रीब ने उस पर नज़र डाली। देखा, यह तो कुरदूश-बे है।

"दुआ है कि तुम्हारी यात्रा मज़े से बीते," 'बे' ने दूर से ही चिल्लाकर कहा। "चाहे जो भी तेरी मंज़िल हो मुसाफ़िर, मैं तुम्हारा साथ दूँगा।"

आशिक़ ऐसा साथी पाकर कोई ज़्यादा ख़ुश नहीं हुआ, लेकिन वह करता भी क्या, लाचार था। बहुत समय तक दोनों साथ-साथ चलते रहे, अन्त में ऐसी जगह पहुँचे जहाँ एक नदी उनका रास्ता काटती थी। नदी के उस पार जाने के लिए न तो वहाँ कोई पुल था, और न नदी की धार ही कहीं इतनी छिछली थी जहाँ उसे पैदल पार किया जा सके।

"तैरकर पहले तुम इसे पार करो," कुरदूश-बे ने कहा, "और पीछे-पीछे मैं भी आता हूँ।"

आशिक़-ग़रीब ने अपने कपड़े उतारकर अलग फेंक दिये और तैर चला। पार पहुँचने पर उसने मुड़कर जो देखा तो चिल्ला उठा, "ऐ अल्लाह, यह कैसी मुसीबत है!"

उसने देखा कि कुरदूश-बे उसके कपड़ों को समेटकर तिफ़लिस की ओर लपका जा रहा है। उड़ती धूल की एक हवाई लीक के सिवा उसके पीछे और कुछ नज़र नहीं आता था। ऐसा मालूम होता था मानो कोई साँप समतल भूमि पर सरसराता हुआ भागा जा रहा हो।

कुरदूश-बे ने तिफ़लिस पहुँचकर ही अपना घोड़ा रोका, और आशिक़-ग़रीब के कपड़े लिये उसकी माँ के पास पहुँचा। बोला :

"तेरा बेटा एक गहरी नदी में डूबकर मर गया है। ये रहे उसके कपड़े।"

माँ पर दुख का ऐसा पहाड़ टूटा कि कहा नहीं जाता। वह अपने बेटे के कपड़ों पर गिर पड़ी और फफोले डालने वाले गरम-गरम आँसू बहाने लगी। इसके बाद आशिक़ के कपड़ों को लेकर वह अपनी भावी पुत्र-वधू के पास पहुँची।

"मेरा लड़का डूबकर मर गया," उसने कहा। "उसके ये कपड़े कुरदूश-बे लौटा लाया है। तुझे अब पूरी छूट है।"

मग़ुल-माग़री मुस्कुरायी।

"तुम भी कैसी बात पर यक़ीन करती हो?" उसने जवाब दिया। "यह सब कुरदूश-बे की मनगढ़न्त है। जब तक सात साल पूरे नहीं हो जाते, मैं किसी को भी अपना पति नहीं बना सकती।"

यह कहकर दीवार पर लटकी बाँसुरी उतार, कोमल स्वरों में आशिक़-ग़रीब के प्रिय गीत की धुन बजाने लगी।

इधर हमारा मुसाफ़िर, नंगे पाँव और नंगे बदन, एक गाँव में पहुँचा। गाँव के भले लोगों ने उसे कपड़े दिये, खाना दिया। बदले में, उनकी मेहरबानी का ऋण चुकाने के लिए, उसने उन्हें कुछ जादू भरे गीत सुनाये। इस प्रकार वह एक गाँव

से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर, आगे बढ़ता गया, और दूर-दूर तक उसका नाम फैल गया।

अन्त में, घूमते-घूमते, वह ख़लाफ़ नगर में पहुँचा। सदा की भाँति एक कहवाख़ाने में उसने पैर रखा, और साज़ माँगकर गाना शुरू कर दिया।

संयोग की बात, ख़लाफ़ नगर में उन दिनों कोई पाशा राज करता था। वह गायकों का बहुत शौक़ीन था। उसके पहले कितने ही गायक उसके सामने आये, लेकिन उसके मन कोई न चढ़ा। उसके नौकर गायकों की खोज में सारे नगर की धूल छानते-छानते थक चुके थे। तभी अचानक कहवाख़ाने के पास से गुज़रते समय उनके कानों में एक जादू-भरी आवाज़ सुनायी दी। लपककर वे भीतर पहुँचे।

"चल हमारे साथ हमारे पाशा के पास," उन्होंने चिल्लाकर कहा। "नहीं तो, इंकार करने पर तुझे अपने सिर से हाथ धोना पड़ेगा।"

"मैं ठहरा आज़ाद आदमी। तिफ़लिस मेरा घर है और मुसाफ़िरी मेरा रोज़मर्रा," उसने उन्हें बताया। "जी करेगा तो जाऊँगा, नहीं तो नहीं। गाता ज़रूर हूँ, पर तभी जब जी में आता है। और तुम्हारा पाशा मेरा कोई मालिक नहीं होता।"

लेकिन, इस सबके बावजूद, उन्होंने ज़बरदस्ती उसे पकड़ लिया और पाशा के सामने ले गये। पाशा ने माँग की :

"गाओ!"

आशिक़-ग़रीब ने गाना शुरू किया। और उसका यह गीत क्या था, मग़ुल-माग़री के रूप का तराना था। गर्वीले पाशा को गीत इतना पसन्द आया कि उसने आशिक़-ग़रीब को अपने दरबार में रख लिया। सोने और चाँदी की उस पर वर्षा हुई, एक-से-एक बढ़िया और लक़दक़ कपड़ों से वह सज गया। ख़ुशी से भरा और रंगीन जीवन अब वह बिताता, ऐशो-इशरत में गोते लगाता। मग़ुल-माग़री को वह भूल गया था या नहीं, यह तो बन्दे को नहीं मालूम, लेकिन इन्तज़ार की नियत अवधि खिसकी जा रही थी। सात में से आख़िरी साल जल्द ही ख़त्म होने वाला था, लेकिन यहाँ से विदा होने की अभी तक उसे कोई सुध नहीं थी।

इसी समय चालीस ऊँटों और अस्सी ग़ुलामों का कारवाँ लेकर कोई सौदागर तिफ़लिस से रवाना होने वाला था। सो मग़ुल-माग़री ने उसे अपने पास बुलाया। उसे सोने का तश्त दिया और कहा :

"इस तश्त को अपने साथ लेते जाओ। जिस नगर में भी पहुँचो, अपने सामान के साथ इसे अच्छी जगह पर सजाकर रखना। और यह बात अच्छी तरह फैला देना कि जो कोई अपने-आपको इस तश्त का मालिक साबित करेगा, उसे

यह तश्त ही नहीं बल्कि साथ में उसके वज़न के बराबर सोना और दिया जायेगा।"

सौदागर चल दिया। जिस जगह भी पड़ाव डालता, मगुल-मागरी ने जो काम सौंपा था, उसे करता। लेकिन ऐसा कोई न मिला जो सोने के तश्त का मालिक होना मंजूर करता और अपने इस दावे को साबित करता। सो न तो किसी ने वह तश्त हासिल किया, न ही उसके वज़न के बराबर सोना। सौदागर का सब सामान क़रीब-क़रीब बिक चुका था। बचे-खुचे सामान के साथ वह ख़लाफ़ नगर में पहुँचा और मगुल-मागरी की शर्तों को समूचे नगर में फैला दिया। आशिक़-ग़रीब ने भी इस बारे में सुना, भागकर उस कारवाँ सराय में पहुँचा जहाँ तिफ़लिस का सौदागर टिका था, और सौदागर की दुकान पर सजे सोने के तश्त को देखा।

"यह मेरा है," उसने कहा और तश्त को अपने हाथों में दबोच लिया।

"बेशक, तेरा ही है," सौदागर ने कहा। "कारण कि मैंने तुझे पहचान लिया है, आशिक़-ग़रीब। अब जल्दी-से-जल्दी तिफ़लिस पहुँचो। मगुल-मागरी ने तुझे यह कहा था कि नियत अवधि ख़त्म हो रही है, और अगर तुम ठीक समय पर वहाँ मौजूद न हुए तो वह दूसरे से शादी कर लेगी।"

आशिक़-ग़रीब ने निराशा से अपना सिर पकड़ लिया। उसके भाग्य का फ़ैसला करने वाली घड़ी में ले-देकर अब तीन दिन रह गये थे। फिर भी एक घोड़े पर वह सवार हुआ, साथ में एक थैली ली जिसमें सोने के सिक्के भरे थे, और घोड़े की जान की परवाह न कर भरपूर तेज़ी से उसे दौड़ा दिया। आख़िर वही हुआ जो होना था। उसके घोड़े ने ठोकर खायी और बदहवास होकर अर्ज़नीन और अर्ज़रूम के बीच अर्ज़ईगन के पहाड़ों में ढेर हो गया। अब वह क्या करे? अर्ज़नीन से तिफ़लिस तक घोड़े पर तीस दिन का रास्ता है, लेकिन वह था कि उसके पास कुल मिलाकर दो दिन से ज़्यादा समय नहीं था।

"अल्लाहो क़ादिर-मुतलक़!*" वह चीख़ उठा। "अगर तूने इस समय मेरी सहायता न की तो इस दुनिया में सिवा अन्धकार के मेरे लिए और कुछ नहीं रह जायेगा।"

और वह एक चट्टान से कूदने के लिए आगे बढ़ा। तभी, अकस्मात उसकी नज़र नीचे सफ़ेद घोड़े पर सवार एक आदमी पर पड़ी, और उसने सुना :

"ऐ उग़लान (युवक), यह क्या करता है तू?"

"मैं मरना चाहता हूँ," आशिक़ ने जवाब दिया।

"अगर ऐसा ही है तो नीचे आ। मैं खुद तेरा काम तमाम कर दूँगा।"

---

* हे सर्वशक्तिमान परमात्मा!

आशिक़-ग़रीब, जैसे-तैसे, ढलुवान पर से रेंगता हुआ नीचे पहुँचा।

"मेरे पीछे-पीछे चला आ," घुड़सवार ने भयावनी आवाज़ में कहा।

"लेकिन मैं तेरे पीछे-पीछे कैसे चल सकता हूँ," आशिक़ ने कहा। "तेरा घोड़ा हवा की रफ़्तार से चलता है, और मैं थैले के बोझ से दबा हूँ।"

"सच कहता है तू! अपना थैला मेरी काठी से लटका दे और ख़ुद पीछे-पीछे चला आ।"

लेकिन आशिक़-ग़रीब पूरे कस-बल के साथ दौड़ लगाने पर भी पिछड़ा ही रहा।

"अरे यह क्या, तू पिछड़ क्यों रहा है?" घुड़सवार ने पूछा ।

"लेकिन मैं तेरा साथ दे भी कैसे सकता हूँ? तेरे घोड़े की चाल मन के वेग से भी ज़्यादा तेज़ है, और मैं थककर चूर-चूर हो गया हूँ।"

"सच कहता है तू! ऐसा कर, मेरे पीछे घोड़े पर सवार हो जा, और एकदम सच-सच बता कि तुझे जाना कहाँ है?"

"ओह, किसी तरह अर्ज़रूम पहुँच जाऊँ यही मेरे लिए बहुत बड़ी बात होगी," आशिक़-ग़रीब ने जवाब दिया।

"अच्छा तो अपनी आँखें बन्द कर ले।"

आशिक़-ग़रीब ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

"अब आँखें खोल ले," घुड़सवार ने कहा।

आशिक़-ग़रीब ने आँखें खोलीं और देखा : सामने अर्ज़रूम की सफ़ेद दीवारें नज़र आ रही थीं, और उसकी मीनारें चमचमा रही थीं।

"मुझसे कसूर हुआ आग़ा*," आशिक़ ने कहा। "मैंने ग़लती की। असल में मुझे कार्स जाना था।"

"निकली न वही बात," घुड़सवार ने कहा। "मैंने तुझे पहले ही चेता दिया था कि एकदम सच-सच बताना। जो हो, अपनी आँखें बन्द कर ले... हाँ, अब खोल ले।"

आशिक़-ग़रीब को ख़ुद अपनी चेतना पर, और इस बात पर कि वह अपनी आँखों के सामने कार्स को ही देख रहा है, यक़ीन नहीं हुआ। घुटनों के बल गिरकर बोला :

"कसूर हुआ आग़ा, तेरे इस आशिक़-ग़रीब से तिहरा गुनाह हुआ। लेकिन तू तो जानता ही है कि जो आदमी सुबह-सवेरे झूठ बोलने का मन्सूबा बाँधता है, उसे साँझ को भी झूठ बोलना पड़ता है। सच तो यह है कि मुझे तिफ़लिस पहुँचना है।"

---

* बड़े भाई साहब

"तू भी कैसा झूठा है!" घुड़सवार ने झुँझलाकर कहा। "लेकिन किया भी क्या जाये, सो मैं तुझे माफ़ करता हूँ। हाँ तो अपनी आँखें बन्द कर ले... अब खोल," एक मिनट रुककर उसने कहा।

आशिक़ ख़ुशी के मारे चीख़ उठा। वे अब तिफ़सिल के दरवाज़े पर खड़े थे।

सच्चे दिल से आशिक़ ने शुक्रिया अदा किया, और काठी पर से अपना थैला उतारते हुए घुड़सवार से बोला :

"तेरा करतब महान है, आग़ा। लेकिन मेरे लिए उससे भी महान एक काम और कर दे। अगर मैं किसी से यह कहूँगा कि अर्ज़नीन से तिफ़लिस तक का रास्ता एक दिन में मैंने पार किया है तो कोई मेरा यक़ीन नहीं करेगा। सो मुझे कोई ऐसी चीज़ दे जिससे मैं यह साबित कर सकूँ।"

घुड़सवार ने मुस्कुराकर कहा :

"झुककर मेरे घोड़े के खुर तले की मिट्टी मुट्ठी-भर उठा ले, और उसे अपने लबादे तले दामन में छिपा रख। अगर कोई तेरे शब्दों की सच्चाई पर शक करे तो उससे कहकर ऐसी अन्धी को बुलवा ले जिसे सात साल से कुछ भी सूझता न हो, उसकी आँखों पर इस मिट्टी का लेप कर दे, और वह देखने लगेगी।"

आशिक़-ग़रीब ने सफ़ेद घोड़े के खुर तले की मिट्टी एक मुट्ठी उठा ली। लेकिन जैसे ही उसने सिर उठाया तो देखा कि घुड़सवार और उसका घोड़ा दोनों ही ग़ायब हैं। तब उसे पक्का यक़ीन हो गया कि उसका रक्षक हैदरइलियास या जौरों (काफ़िरों) के शब्दों में सन्त जार्ज के सिवा और कोई न था।

काफ़ी रात बीतने के बाद ही आशिक़-ग़रीब अपने घर पहुँच सका। काँपते हाथों से उसने दरवाज़ा खटखटाया। साथ ही अपनी अन्ना को, माँ को, आवाज़ दी :

"अन्ना, अन्ना, दरवाज़ा खोल। मैं एक पाहुना हूँ। ख़ुदा ने तेरे दरवाज़े पर मुझे भेजा है। भूख और पाले के मारे बेहाल हूँ। रहम कर, अपने मुसाफ़िर बेटे के नाम पर मुझे अन्दर आने दे।"

जवाब में बुढ़िया की कमज़ोर आवाज़ आयी :

"राहगीरों को शरण देने के लिए अमीरों और क़दीरों* के घर मौजूद हैं। सारे नगर में ब्याह-शादियाँ हो रही हैं। तू वहीं जा। वहाँ तेरी रात मज़े में गुज़र जायेगी।"

"अन्ना," उसने जवाब में कहा, "यहाँ मैं किसी को नहीं जानता, इसलिए

---

* शक्तिवानों

तुझी से फिर विनती करता हूँ। अपने मुसाफ़िर बेटे के नाम पर मुझे अन्दर आने दे।"

इस पर उसकी बहन ने माँ से कहा :

"मैं उठती हूँ, माँ, और उसके लिए दरवाज़ा खोल देती हूँ।"

"नाकारा लड़की," माँ ने कहा, "युवक लोगों को देखते ही तेरी लार टपकने लगती है और तू ख़ूब उनकी आवभगत करती है। मुझे तो कुछ दिखायी देता नहीं। इतने आँसू मैंने बहाये हैं कि सात साल से मुझे कुछ दिखायी नहीं देता।"

माँ झिड़कियाँ देती ही रही और लड़की ने उठकर आशिक़-ग़रीब के लिए दरवाज़ा खोल दिया। रस्मी दुआ-सलाम के बाद वह बैठ गया और हृदय में भावनाओं का अम्बार छिपाये अपने चारों ओर देखने लगा। मधुर आवाज़ देने वाले अपने साज़ पर उसकी नज़र पड़ी जो दीवार पर लटका था। साज़ के ऊपर धूल की तह-पर-तह चढ़ी थी। उसने अब अपनी माँ को कुरेदना शुरू किया :

"वह दीवार पर क्या लटका है?"

"तू भी कैसा मीनमेखी मेहमान है!" उसने जवाब दिया। "बस इतना ही ग़नीमत समझ कि तुझे एकाध रोटी मिल जायेगी और अल्लाह का नाम लेकर सुबह ही तुझे यहाँ से विदा कर दिया जायेगा।"

उसने जवाब में कहा :

"मैं तुझे पहले ही बता चुका हूँ कि तू मेरी अपनी माँ है और यह मेरी बहन है, और इसीलिए मैं तुझसे यह जानना चाहता हूँ कि दीवार पर वह क्या लटका हुआ है।"

"यह साज़ है, साज़!" उसकी बात का यक़ीन न करके बुढ़िया ने झुँझलाकर जवाब दिया।

"साज़? - साज़ से तेरा क्या मतलब है?"

"गाना गाते समय इसे बजाया जाता है।"

इस पर आशिक़-ग़रीब बुढ़िया के पीछे पड़ गया और कहने लगा कि बहन उसे साज़ उतारकर दिखा दे। बुढ़िया ने जवाब दिया :

"भला यह कैसे हो सकता है? यह साज़ मेरे दुखियारे बेटे का है, और लम्बे-लम्बे सात साल से यहीं दीवार पर लटका है। किसी भी जीवित आदमी ने इसे अपने हाथ से नहीं छुआ।"

लेकिन उसकी बहन उठी, और दीवार से साज़ को उतारकर उसे दे दिया। इसके बाद आकाश की ओर उसने अपनी आँखें उठायीं और दुआ के ये शब्द उसके मुँह से निकले :

"अल्लाहो-क़ादिर-मुतलक़, अगर मेरे भाग्य में अपने मन की इच्छा पूरी

करना बदा है तो तू ऐसा कर कि मेरा यह सात तारों वाला साज़ ठीक उन्हीं स्वरों में झंकार उठे जिन स्वरों में कि सात साल पहले आख़िरी बार मैंने इसे बजाया था।"

और उसने ताँबे के तारों को छेड़ा। तारों से संवादी स्वरों में झंकार प्रकट हुई और उसने गाना शुरू किया :

"मैं आशिक़-ग़रीब हूँ – 'ग़रीब' यानी मुसाफ़िर, और पाँवों में मेरे सनीचर है, और निर्बल हैं मेरे बोल। फिर भी हैदरइलियास ने ऊँची और गहरी चोटी पर से उतरने में मुझे मदद दी। माना कि मैं ग़रीब हूँ, और निर्बल हैं मेरे बोल, फिर भी मुझे – घर से निकले अपने बेटे को – पहचानो मेरी माँ!"

उस पर माँ की आँखों से आँसू फूट पड़े और वह बोली :

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"रशीद,*" उसने जवाब दिया।

"तू तो अपनी कह चुका, अब मेरी भी सुन, रशीद!" बुढ़िया ने कहा। "अपनी बातों से तूने मेरे हृदय को छलनी-छलनी कर दिया है। इसी रात मैंने सपने में देखा – मेरी आँखें अब सपनों में ही देख पाती हैं – कि मेरे बाल एकदम सफ़ेद हो गये हैं। आँसुओं ने सात साल से मुझे अन्धी बना दिया है। तेरी आवाज़ उसकी आवाज़ से मिलती है, सो तू ही बता कि मेरा बेटा कब लौटेगा?"

और आँसू बहाते हुए, उसने यह बात एक बार फिर दोहरायी। आशिक़ ने बहुतेरा बताया कि वही उसका बेटा है, लेकिन बेकार। बुढ़िया ने यक़ीन नहीं किया। कुछ मिनट तक रुकने के बाद, उसने विनती की :

"मेरी अच्छी माँ, कम से कम इतना तो कर कि यह साज़ मुझे दे दे कि इसे लेकर ज़रा मैं अपना नसीब आज़मा सकूँ। पास ही मैंने सुना है, एक शादी हो रही है। मेरी बहन मुझे वहाँ का रास्ता दिखा देगी। वहाँ मैं गाऊँगा-बजाऊँगा, और जो कुछ मिलेगा, उसमें तुम दोनों का भी साझा रहेगा।"

"नहीं, यह मैं नहीं मान सकती," बुढ़िया ने जवाब दिया। "जब से मेरा लड़का गया है, यह साज़ कभी घर से बाहर नहीं हुआ।"

लेकिन उसने क़समें खानी शुरू कीं कि वह साज़ का एक भी तार इधर-उधर नहीं होने देगा।

"अगर एक भी तार टूट गया," उसने ज़ोर देकर कहा, "तो मैं अपने सारे माल-मता के साथ इसके लिए ज़िम्मेदार होऊँगा।"

सो बुढ़िया ने उसकी थैली को टटोला और यह जानकर कि वह सिक्कों

---

* सरल हृदय

से भरी है, उसे साज़ ले जाने की इजाज़त दे दी। बहन ने उसे रास्ता दिखाया और उस धनी घर में, जहाँ धूमधाम से शादी की दावत हो रही थी, उसे छोड़कर खुद बाहर दरवाज़े पर खड़ी हो गयी। वह देखना चाहती थी कि अब आगे क्या होता है।

मगुल-मागरी इसी घर में रहती थी और ठीक इसी रात वह कुरदूश-बे की पत्नी बनने वाली थी। कुरदूश-बे अपने सगे-सम्बन्धियों और संगी-साथियों के साथ खान-पान में मस्त था और मगुल-मागरी बढ़िया कामदार चतरे (पर्दे) के पीछे अपनी सखी-सहेलियों के साथ बैठी थी। उसके एक हाथ में ज़हर भरा प्याला था और दूसरे में तेज़ खंजर : उसने क़सम खायी थी कि कुरदूश-बे के पलंग पर पाँव रखने से पहले ही वह अपना काम-तमाम कर लेगी।

तभी चतरे की ओट में उसने सुना कि कोई अजनबी आया है। वह कह रहा था :

"सलाम अलैकुम। ख़ुदा तुम्हें राहत दे। तुम यहाँ दावत उड़ा रहे हो और खुशियाँ मना रहे हो। मैं एक ग़रीब (परदेशी) राहगीर हूँ। मुझे भी यहाँ बैठने की इजाज़त दो। मैं तुम्हें गीत सुनाकर खुश कर दूँगा।"

"क्यों नहीं," कुरदूश-बे ने कहा। "यह शादी का मौक़ा है। गाने और नाचने वालों को भला कौन मना करेगा। सो तू भी कुछ सुना, आशिक़, मैं तुझे अंजली-भर सोना देकर विदा करूँगा।"

इसके बाद कुरदूश-बे ने आशिक़-ग़रीब से पूछा :

"तेरा नाम क्या है, राहगीर?"

"शिन्दी ग़रूरसज़!"

"वल्लाह, क्या नाम है!" बे हँसी का फ़व्वारा छोड़ते हुए चिल्ला उठा। "ऐसा नाम तो मैंने पहली बार ही सुना है।"

"जन्म से पहले जब मेरी माँ के पेट में पीड़ा शुरू हुई तो पड़ोसी दरवाज़े पर आते और पूछते – अल्लाह ने क्या दिया है, लड़का या लड़की? और उन सबको एक ही जवाब मिलता – 'शिन्दी ग़रूरसज़' (तुम्हें जल्दी ही पता चल जायेगा)।"

इसके बाद उसने अपना साज़ उठाया और गाना शुरू कर दिया :

"ख़लाफ़ नगर में मैंने मिसरी मदिरा का जाम पिया, पर ख़ुदा ने मुझे पर दिये और तीन दिन में उड़कर मैं यहाँ आ गया।"

कुरदूश-बे के भाई के दिमाग़ में बुद्धि की जगह गोबर भरा था। उसने अपना खंजर निकाल लिया और चिल्लाकर बोला :

"तू झूठ बोलता है! ख़लाफ़ से यहाँ तक कोई तीन दिन में कैसे आ सकता है?"

"लेकिन तूने यह खंजर क्यों निकाल लिया है?" आशिक़-ग़रीब ने कहा। "गायकों के लिए यह एक आम बात है कि वे दुनिया के चारों कोनों से एक ही जगह पर जमा होते हैं। फिर मैं अपने गीत के लिए तुझसे कुछ वसूल भी नहीं कर रहा हूँ। चाहे यक़ीन कर चाहे न कर। यह तो तेरी मर्ज़ी है।"

"गाने में बाधा न दे," दूसरे ने कहा और आशिक़-ग़रीब ने फिर से गाना शुरू कर दिया :

"अर्ज़नीन घाटी में मैंने नमाज़े-पेशी (सुबह की पहली नमाज़) पढ़ी, दोपहर की अर्ज़रूम नगर में, मग़रिब की (सूर्यास्त की) कार्स नगर और साँझ की तिफ़लिस में। अल्लाह ने मुझे पर दिये, और मैं उड़कर यहाँ आ पहुँचा। अगर मैं झूठ बोलता हूँ तो ख़ुदा करे कि मैं सफ़ेद घोड़े तले ग़ारत हो जाऊँ। वह चलता क्या था, तेज़ छलाँगें मारता था, तने हुए रस्से पर नृत्य करने वाले नट की भाँति पहाड़ से घाटी में, घाटी से पहाड़ पर। मिवलैन ने, हम सबके परवरदिगार ने, आशिक़ को पर बख़्शे, और वह उड़कर मगुल-माग़री की शादी में आ पहुँचा।"

इस पर मगुल-माग़री ने, उसकी आवाज़ पहचानकर, ज़हर के प्याले को एक ओर फेंक दिया, और खंजर को दूसरी ओर।

"अच्छा तो क्या इसी तरह तू अपनी क़सम रखती है?" उसकी एक सहेली ने कहा। "इसका मतलब यह कि तूने आज की रात कुरदूश-बे की बनना तय कर लिया है!"

"तू नहीं पहचान सकी, लेकिन मैंने उस आवाज़ को पहचान लिया जो मुझे इतनी प्यारी है," मगुल-माग़री ने जवाब दिया और कैंची से चतरा को काटकर एक झरोखा-सा बना दिया। और जब उसने आशिक़-ग़रीब के चेहरे पर नज़र डाली और उसे पक्की तौर पर पहचान लिया तो उसके मुँह से एक चीख़ निकली। भागी-भागी वह उसके पास पहुँची और उसकी गरदन में अपनी बाँहें डाल दीं। इसके बाद दोनों बेसुध होकर गिर पड़े। कुरदूश-बे का भाई खंजर ताने उन पर टूट पड़ा। वह दोनों को मार डालना चाहता था। लेकिन कुरदूश-बे ने उसे रोकते हुए कहा :

"गुस्सा ठण्डा कर और याद रख कि जन्म के समय इन्सान के भाग्य में जो कुछ लिख दिया जाता है, उससे कभी छुटकारा नहीं मिलता।"

होश आने पर मगुल-माग़री लाज के मारे लाल हो गयी, हाथों से उसने अपना मुँह छिपा लिया और पर्दे के पीछे ओझल हो गयी।

"अब, बिला शक, हर कोई देख सकता है कि तू आशिक़-ग़रीब है," दूल्हे ने कहा, "लेकिन यह तो बता कि इतने थोड़े समय में इतने बड़े रास्ते को तूने पार कैसे किया?"

"सच्चाई के सबूत में," आशिक़-ग़रीब ने कहा, "मेरी तलवार चट्टान को

भी काट डालेगी। और अगर मैं झूठा हूँ तो ख़ुदा करे मेरी गरदन बाल से भी ज़्यादा पतली हो जाये। लेकिन, सबसे अच्छा तो यह है कि मेरे सामने किसी ऐसी अन्धी को ला जिसने सात साल से सूरज की रोशनी न देखी हो, और मैं उसकी आँखों की जोत लौटा दूँगा।"

आशिक़-ग़रीब की बहन, जो बाहर दरवाज़े के पास खड़ी थी, यह सुनते ही भागी हुई अपनी माँ के पास गयी।

"माँ," उसने चिल्लाकर कहा, "वह सचमुच मेरा भाई और दरअसल तेरा बेटा आशिक़-ग़रीब है।"

इसके बाद वह अपनी माँ का हाथ पकड़कर उसे वहाँ ले आयी जहाँ दावत हो रही थी। आशिक़-ग़रीब ने अपने लबादे के भीतर से वह मिट्टी निकाली, उसे पानी में घोलकर अपनी माँ की आँखों पर लेप दिया और लेपते हुए बोला :

"तुम सब लोगों के सामने अब यह ज़ाहिर हो जायेगा कि हैदरइलियास कितना महान है और क़ादिर है।"

मिट्टी लेपते ही उसकी माँ ने आँखें खोलीं और देखा कि उसकी आँखों की जोत लौट आयी है। इसके बाद किसी के हृदय में उसके सच्चा होने में सन्देह नहीं रहा, और कुरदूश-बे ने मग़ुल-माग़री को, जिसके सौन्दर्य का बखान करना मुश्किल है, अपने दावे से मुक्त कर दिया।

इस पर ख़ुशी से छलछलाते आशिक़-ग़रीब ने उससे कहा :

"सुनो कुरदूश-बे, मैं तेरी भी तसल्ली करूँगा। मेरी बहन उस दुल्हन से किसी तरह भी घटकर नहीं है जिससे कि तेरा ब्याह होने वाला था। मैं अब अमीर हूँ, सो वह भी चाँदी-सोने से उतनी ही लदी होगी जितनी कि मग़ुल-माग़री। सो तू उसे स्वीकार कर – और ख़ुदा तुम दोनों को भी उतनी ही ख़ुशी दे जितनी कि मुझे अपनी मग़ुल-माग़री को पाकर हुई है।"

अनु. – नरोत्तम नागर



निकोलाई गोगोल

(1809–1852)

"बहुत समय से दुनिया में ऐसा लेखक नहीं हुआ था जो अपनी जनता के लिए इतना महत्त्व रखता हो जितना गोगोल रूस के लिए," गोगोल के सम्बन्ध में उनके समकालीन, क्रान्तिकारी समालोचक निकोलाई चेर्निशेव्स्की ने लिखा है। हास्य–रचना 'इंस्पेक्टर जनरल' और 'मृत प्राणी' उपन्यास गोगोल के सृजन–शिखर थे। इन रचनाओं में उन्होंने कर्मचारियों–नौकरशाहों और ज़मींदारों के रूस की खिल्ली उड़ाई है। 'गरमकोट' कहानी (1841) 'पीटर्सबर्ग की कहानियाँ' संग्रह से ली गयी है और इसमें गोगोल का प्रसिद्ध "आँसुओं के बीच ठहाका" बहुत ज़ोर से गूँजता है।

गोगोल रूसी साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद के प्रवर्तक थे। मानव–व्यक्तित्व को अपमानित करने और कुरूप बनाने वाली हर चीज़ पर उनका क्रोधपूर्ण और रौद्र ठहाका, "छोटे मानव" के साथ उनकी दिली हमदर्दी तथा नेकी और इन्साफ़ की जीत में उनका विश्वास – इन्हीं तत्त्वों ने भावी पीढ़ियों के लिए उनके चिरन्तन महत्त्व तथा विश्व ख्याति को सुनिश्चित किया।

शैतान

तोमस ग्रिगोरियेविच में एक ऐसी विचित्रता थी जो भूत की तरह उसके पीछे लगी हुई थी। वह सब कुछ कर सकता था, लेकिन यह नहीं कि किसी कहानी को दोबारा फिर उसी रूप में दोहराकर सुनाये। संयोगवश अगर हम उससे अपनी किसी कहानी को फिर से सुनाने के लिए कहते तो वह हमेशा उसमें नये रंग भरकर सुनाता, या इस हद तक उसकी कायापलट कर देता कि उसे पहचानना मुश्किल हो जाता।

एक बार उन भलेमानसों में से एक ने – समझ में नहीं आता कि किस नाम से उनका परिचय दिया जाये – उन लोगों में से एक ने जिनका धन्धा दूसरों की चीज़ों पर भरसक हाथ साफ़ करना और चोरी के इस माल को टुकड़हे साप्ताहिक पत्रों में छपाना होता है – इन भड़ैंत लेखकों में से एक ने हमारे तोमस ग्रिगोरियेविच की एक कहानी, जो गिरजा के हमारे इस बूढ़े भण्डारी के दिमाग़ से एकदम उतर गयी थी, धोखाधड़ी करके उड़ा ली।

अब ऐसा हुआ कि एक दिन वह चोर लेखक पोल्ताना से दिकान्का आया। वह कच्ची मटर जैसे हरे रंग की टोपी पहने था। शायद आप उसकी कहानियाँ पढ़ भी चुके हों। उसके पास एक छोटी–सी किताब थी। हमें दिखाने के लिए उसने अपनी इस किताब को बीच में से खोला। तोमस ग्रिगोरियेविच अपना चश्मा निकालकर नाक पर चढ़ाने की तैयारी कर रहा था कि तभी उसे याद आया कि अरे, अपने चश्मे पर मोम से बटी डोरी बाँधना तो वह भूल ही गया, नाक पर वह टिकेगा कैसे। सो उसने पुस्तक मुझे पकड़ा दी। और चूँकि मैं अक्षर पहचानना जानता हूँ और बिना चश्मे के देख सकता हूँ, सो मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। एक या दो पन्ना ही पढ़ा होगा कि उसने मेरी बाँह पकड़ ली।

"बस, रहने दो," उसने ललकारकर टोका, "पहले यह बताओ कि इस कहानी में है क्या?"

सच मानो, उसकी इस बात ने एक तरह से मुझे अचम्भे में डाल दिया।

"क्या तुम इतना भी नहीं जानते, तोमस ग्रिगोरियेविच? यह तुम्हारी अपनी

कहानी ही तो है – और ठीक तुम्हारे ही शब्दों में यहाँ मौजूद है, बिल्कुल जैसी की तैसी।"

"मेरे अपने शब्दों में? कौन कहता है?"

"यह देखो छापे में लिखा है। ठहरो अभी बताता हूँ। इसे पढ़ो – 'दिकान्का के भण्डारी के मुँह से सुनी।'"

"थू है इस प्रकाशक के मुँह पर!" बूढ़े भण्डारी ने चिल्लाकर कहा। "मास्को की गलियों का कुत्ता! झूठा, एकदम झूठा! सुनो, मैं ख़ुद तुम्हें यह कहानी सुनाता हूँ।"

हम मेज़ के चारों ओर सिमट आये और उसने सुनाना शुरू किया :

मेरे नाना – स्वर्ग में उन्हें ख़ुदा का ख़ूब आतिथ्य नसीब हो और शहद से सराबोर मालपुए उन्हें खाने को मिलें – मेरे नाना कहानियाँ कहने में कमाल करते थे। जैसे ही वह कहानी शुरू करते हिलने को जी न चाहता, चाहे सारा दिन उसी जगह बैठे-बैठे क्यों न बीत जाये। उनकी भला आज के इन दुमदार लिखाड़ियों से क्या तुलना जो कहानी कहते हैं तो ऐसा मालूम होता है मानो तीन दिन के भूखे हों। जी करता है कि बस, अपनी छड़ी-टोपी सँभालो और चलते बनो।

मुझे वह सब इस तरह याद है मानो आज की ही बात हो। मेरी भली माँ तब ज़िन्दा थी। जाड़ों की लम्बी साँझों में, उस समय जबकि बाहर बर्फ़ पड़ती थी और जमकर इतनी कड़ी हो जाती थी कि पत्थर मारो तो वह भी चकनाचूर हो जाये, और हमारी छोटी-छोटी खिड़कियों के शीशों पर पाला इस तरह जम जाता था कि कुछ दिखायी नहीं देता था, मैं अपनी माँ को चरखा कातते हुए आज भी देख सकता हूँ। माँ हाथों से लम्बा सूत निकालती, एक पाँव से पालना झुलाती जाती, और मुँह से लोरी गाती जाती, जिसकी धुन आज भी मेरे रोम-रोम में समायी है।

रोशनी के लिए हम केवल मोमबत्ती के टुकड़ों से काम चलाते थे। उसकी लौ बड़ी डाँवाँडोल रहती थी और मानो किसी चीज़ से डर-डरकर बहुत ही मद्धिम रोशनी देती थी। तकुवे की एकरस ध्वनि गूँजती रहती थी और हम बच्चे, एक-दूसरे से सटे हुए, नाना की कहानियाँ सुनते रहते थे। नाना बहुत बुढ़ा गये थे, और सदा तन्दूर के पास ही चिपके रहते थे। उनके भण्डार में सभी तरह की कहानियाँ थीं – वीरों की, साहसिक यात्राओं और लड़ाइयों की। लेकिन हमें पुराने दिनों की कहानियाँ सबसे ज़्यादा पसन्द आती थीं – अद्भुत और अजीब बातों से भरी हुई, जिन्हें सुनकर बदन में चींटियाँ-सी रेंगने लगती थीं और सिर के बाल खड़े हो जाते थे।

कभी–कभी इन कहानियों को सुनने के बाद हमारे मन में इतना डर समा जाता कि रात के अँधेरे में हमें हर चीज़ भुतहा दिखायी देती। अगर हम, मिसाल के लिए, रात के समय बाहर होते तो यह ख़याल हमारा पीछा न छोड़ता कि घर लौटने पर हमें अपने बिस्तरे पर कोई भूत या जिन्न लेटा हुआ मिलेगा। सच जानो, इस कहानी को ज़ुबान पर लाने का मैं कभी साहस न करता अगर मुझे इस असलियत का पता न चलता कि भय का भूत क्या होता है। अक्सर ऐसा होता कि बिस्तर के पास खूँटी पर लटके हुए चोगे़ को देखकर मुझे लगता कि यह कोई सिकुड़ा–सिमटा हुआ भूत है। लेकिन मेरे नाना की कहानियों में सबसे ख़ास बात यह थी कि वह कभी झूठ नहीं बोलते थे। सभी घटनाओं का वह ठीक उसी रूप में वर्णन करते थे जिस रूप में कि वे घटी थीं।

नाना की इन्हीं कहानियों में से एक अब मैं तुम्हें सुनाऊँगा। ख़ूब चिकने–चुपड़े और ऊँची जमातों तक पढ़े ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अदालत में जाकर निरक्षर भट्टाचार्यों के लिए दस्तख़त बनाते और अपढ़ लिखावट पढ़ने में माहिर होने का दावा करते हैं। लेकिन अगर उनके हाथों में सप्तसन्ध्या प्रार्थनाओं की कोई स्लाव पुस्तक दे दी जाये तो वे मुँह ताकते रह जायेंगे। माहिर वे एक ही चीज़ में होते हैं। वह चीज़ है दूसरों की खिल्ली उड़ाना। उनके सामने कुछ भी क्यों न कहो, बस वे ठहाका मारकर हँसने लगेंगे। और, कितनी मुसीबतें पैदा होती हैं इस विश्वासहीनता से! लेकिन, ठहरो, अगर मैं किसी डायन का ज़िक्र शुरू कर दूँ – कहूँ कि डायनें होती हैं – तो तुम ख़ुद भी मेरे शब्दों का विश्वास नहीं करोगे। हाँ तो... भला, क्या कह रहा था मैं? और फिर भी सच्चाई यह है कि विश्वासहीनता का दामन पकड़ने में ख़तरा ही ख़तरा है। जबसे कि मैं यहाँ हूँ – ख़ुदा की मेहरबानी से एक उम्र बीत गयी यहाँ रहते हुए – किसी दूसरे धर्म को मानने वाले इन लोगों को मैंने देखा है जो पापमोचन के समय धर्मपिता के सामने इतने सहज भाव से झूठ बोलते हैं मानो नास सूँघ रहे हों, लेकिन जादू–टोनों और डायनों के असर से बचने के लिए तुरन्त सलीब का चिह्न बनाने लगते हैं। लेकिन जाने दो, मैं उनका ज़िक्र तक नहीं करना चाहता। ऐसे लोगों की बातें करना बेमतलब सिर खपाना है।

सौ साल पहले – मेरे नाना हमें बताते – अगर तुम इस गाँव को देखते तो इसे पहचान तक न पाते। तब यह एक बहुत ही गयी–बीती बस्ती से अधिक नहीं था। कुल मिलाकर दस खोहनुमा घर थे। बिना छत के, और बिना पुते हुए। खेतों के बीच यों ही जहाँ–तहाँ बिखरे थे। न बाड़ों का पता था, न खलिहान और पलानी का जिसमें मवेशी या हल रख जाते। और ये घर भी केवल उन्हीं को नसीब थे जो सबसे ज़्यादा धनी थे। हमारे जैसे लोग तो उन दिनों एकदम भिखारी थे। धरती में गड्ढे खोदकर या माँद बनाकर उनमें रह लेते थे। यही

उनके घर थे। इनमें से जब कभी धुआँ उठकर हवा में चक्कर लगाता था, तभी यह पता लगता था कि यहाँ भी कोई ख़ुदा का बन्दा रहता है।

तुम पूछ सकते हो कि हमारे पुरखे इस तरह क्यों रहते थे। यह सच है कि वे ग़रीब थे, लेकिन असल में इतने ग़रीब भी नहीं थे। उन दिनों क़रीब-क़रीब सभी कस्साकों के घावों में शामिल होते थे और दूसरे देशों से लूट-खसोट का माल बटोरकर ले जाते थे। पक्का घर बनाना एक बेकार का काम था। यही वह मुख्य कारण था जिसकी वजह से हमारे पुरखे घर-बार के मामले में इतने बेफ़िक्रे थे। पोल, लिथुआनी, क्रीमियाई – दुनिया-भर के लुटेरे दलों के घाते देश में आये दिन होते थे। इनके अलावा हमारे अपने लोगों ने भी दल बना लिये थे जो अपने ही देश-भाइयों को लूटते थे। संक्षेप में यह कि थोड़ी मात्रा में ही सही, उनके पास सब चीज़ मौजूद थी।

हाँ तो उन दिनों इस गाँव में एक आदमी – बल्कि सही शब्दों में यह कि आदमी के भेष में शैतान – अक्सर आया करता था। कहाँ से वह आता था, और किस चीज़ की खोज में आता था, यह कोई नहीं जानता। वह आता और ख़ूब गुलछर्रे उड़ाता – एकदम शराब में ही लुढ़कता रहता – और इसके बाद अचानक उसी तरह ग़ायब हो जाता जैसे कि पानी में फेंका हुआ पत्थर ग़ायब हो जाता है, ढूँढ़ने पर भी उसका कोई चिह्न नहीं मिलता। और फिर उतनी ही अचानक वह दोबारा प्रकट हो जाता। ऐसा मालूम होता मानो वह आसमान से आ गिरा हो। बस, सिर झुकाये गाँव की गलियों में से गुज़रता दिखायी देता। गाँव तो वह अब नहीं रहा, लेकिन आज जिस जगह दिकान्का है, उससे कोई सौ क़दम से ज़्यादा दूर वह उन दिनों नहीं रहा होगा।

राह में जो भी कस्साक उसे मिलते, सभी को वह बटोर लेता और भारी जश्न मानता। हँसी के फ़व्वारे छूटते, गाना-बजाना होता, भरपूर धन बिखरता और वोदका की नदियाँ बहतीं। कभी-कभी वह लड़कियों को पकड़कर अपने सीने से चिपटा लेता और उन्हें ढेर सारे फ़ीतों, कान के बुन्दों और हारों से लाद देता। लड़कियों से यह सब चीज़ें सँभाले न सँभलतीं। यह सच है कि उसके तोहफ़ों को लेने से पहले लड़कियाँ दस बार सोचती थीं। कौन जाने, इन चीज़ों पर कहीं जादू-टोना न कर दिया गया हो!

मेरे नाना की चाची उन दिनों एक सराय की मालकिन थीं। यह सराय उसी सड़क पर थी जो कि आज ओपोचनियान्स्क जाती है। बसावरियोक – शैतान के अवतार उस आदमी का यही नाम था – रास-रंग और अय्याशी के लिए अक्सर इस सराय में अड्डा जमाता था, और मेरी चाची कहा करती थी कि अगर कोई सारी दुनिया का ख़ज़ाना उसे देने को कहे तब भी वह बसावरियोक के हाथ से कोई उपहार ग्रहण नहीं करेगी। यह सब तो ख़ैर ठीक था, लेकिन मुसीबत यह

थी कि उसके सामने इंकार कौन करे? सूअर के बालों ऐसी कड़ी अपनी भौंहों में बल डालकर जब वह देखता था तो सब थर–थर काँपने लगते थे। किसी में हिम्मत नहीं थी कि उसकी चालाक नज़र का सामना करता, सब दुम दबाकर भागते नज़र आते थे।

अब उन लड़कियों का हाल सुनिये जो उसके उपहार लेने से इंकार नहीं करती थीं। उपहार लेने के बाद अगली रात ही उन सींगदार प्राणियों से उनकी भेंट होती थी जो कि रात को दलदल से प्रकट होते थे। वे आते और उस लड़की का गला घोंट देते जो भेंट में मिला हार अपने गले में डाले होती, या उसकी उँगली कचाकच चबा डालते अगर वह अपनी उँगली में भेंट में मिली अँगूठी पहने होती, या उसके बालों को नोंच डालते अगर वह उनमें भेंट के फ़ीते बाँधे होती। जहन्नुम में जायें बसावरियोक के ऐसे उपहार! लेकिन मुसीबत यह थी कि उनसे छुटकारा पाना असम्भव था। अँगूठियों और हारों को जोहड़ में फेंका जा सकता था। लेकिन भेंट में मिली ये सब चीज़ें फिर उभर आतीं, पानी के सतह पर तैरने लगतीं, और उछलकर फिर आपके हाथों में लौट आतीं!

गाँव का गिरजा, अगर मैं भूलता नहीं हूँ तो, सन्त पान्तेलेई की अर्चना में बना था और पवित्र स्मृति धर्मपिता अफ़नासिउस उसके कर्ता–धर्ता थे। जब उन्होंने देखा कि बसावरियोक ईस्टर में भी गिरजा की ओर मुँह नहीं करता तो उन्होंने उसे गुनाहगार घोषित करने और उसे खुलेआम प्रायश्चित करने की सज़ा देने का निश्चय किया। वह तो कहो कि पवित्र धर्मपिता का भाग्य सीधा था, इसलिए बच गये, नहीं तो जाने उनके भौतिक शरीर का क्या हाल होता!

धर्मपिता की घोषणा सुनकर बसावरियोक आगबबूला हो गया। जवाब में बोला :

“भले आदमी, मेरी बात सुन। ख़ैर इसी में है कि दूसरों के मामलों में टाँग न अड़ाकर अपने काम से काम रख। हाँ, अगर अपने गले में उबलते हुए चावल भरवाना हो तो दूसरी बात है!”

अब तुम्हीं बताओ, ऐसे आदमी का कोई क्या करे जिसे शैतान सिद्ध हो? धर्मपिता अफ़नासिउस को केवल इस घोषणा से सन्तोष करना पड़ा कि वह हर उस व्यक्ति को गिरजा तथा ईसा मसीह का दुश्मन समझेंगे जो इस गुनाहगार की सोहबत में रहेगा।

इन्हीं दिनों गाँव में एक कस्साक रहता था। उसका नाम था कोर्य। उसने एक मज़दूर को नौकर रखा जिसे लोग पीतर अभागा कहते थे। अभागा इसलिए कि न तो उसके बाप का किसी को पता था और न ही उसकी माँ के बारे में कोई कुछ जानता था। यह सही है कि बस्ती के गिरजा का चौकीदार दावे के साथ कहता था कि लड़के के माता–पिता थे, लेकिन वे उस साल मर गये जब

प्लेग की महामारी फैली थी। जो हो, मेरे नाना की चाची इस बात पर विश्वास नहीं करती थी और बेचारे पीतर के परिवार का आविष्कार करने में कोई क़सर नहीं उठा रखती थी, हालाँकि उसे परिवार की उसी भाँति कोई ख़ास ज़रूरत नहीं थी जैसे कि हमें पिछले जाड़ों की बर्फ़ की ख़ास ज़रूरत नहीं होती। मेरे नाना की चाची जो भी आता उसे ही विश्वास दिलाने का प्रयत्न करती कि पीतर का बाप युक्रेन देश का निवासी था, बन्दी बनकर वह तुर्की पहुँचा और ऐसी–ऐसी यातनाएँ उसने सहीं जिनका बदला केवल ईश्वर ही ले सकता है, अन्त में अपनी जान हथेली पर रख उसने खोजा का भेष धारण किया और निकल भागा।

गाँव की सुन्दर लड़कियों और युवा गृहिणियों को इस बात में बहुत कम दिलचस्पी थी कि पीतर के माँ–बाप कौन और क्या थे। वे तो बस इतना ही कहती थीं कि अगर पीतर नया कोट पहने हो और उसकी कमर में लाल रंग का पटका बँधा हो, उसके सिर पर अगर भेड़ की खाल की बाँकी टोपी जँची हो और पटके से तुर्की तलवार लटकी हो, एक हाथ में उसके चाबुक और दूसरे में अगर बढ़िया कामदार पाइप हो तो गाँव में अपने समय का वह सबसे ज़्यादा सुन्दर बाँका जवान होगा। लेकिन अफ़सोस, पीतर के पास भूरे रंग की चिथड़ी फतुही के सिवा और कुछ न था, जो छेदों से उसी प्रकार भरी थी जिस प्रकार कि किसी यहूदी की जेब सोने की मुद्राओं से भरी रहती है।

बात अगर यहीं तक रहती तब भी ग़नीमत थी। अब हुआ यह कि बूढ़े कोर्य की एक युवती लड़की थी। उसका सौन्दर्य इतना दमकता था कि तुम्हारे देखने में कभी न आया होगा। तुम यह जानते ही हो कि एक स्त्री – तुम्हारे सामने की बात और है – शैतान का मुँह चूमने तक के लिए तैयार हो जायेगी, लेकिन यह कभी नहीं मंजूर करेगी कि कोई अन्य स्त्री उससे ज़्यादा सुन्दर है। मेरे नाना की चाची कहा करती कि पिदोरका के भरे–पूरे गालों में उतनी ही ताज़गी है जितनी कि गुलाबी से गुलाबी पपी के कोमलतम लाल फूल में, जो उगते हुए सूरज की किरणों में भोर की ओस से अपना मुँह पखारने के लिए अपनी पँखुरियाँ खोलता है। वह मानती थी कि पिदोरका की कमान–सी काली भौंहें विधाता की पूर्ण कारीगरी का नमूना हैं, और यह कि उसके नन्हे मुँह की झलक मात्र युवकों को पागल बनाने के लिए काफ़ी है। ऐसा मालूम होता था मानो गाने के लिए – कोयल के गीत गाने के लिए – मुँह की, उसके उस मुँह की रचना की गयी हो। मेरे नाना की चाची का यह भी कहना था कि उसके बाल काग के पंख की भाँति काले और रेशम की भाँति मुलायम थे। उन दिनों कुँवारी लड़कियाँ अपने बालों को छोटा नहीं कराती थीं। सो रंग–बिरंगे फ़ीतों से सजे उसके घुँघराले बाल उसकी सुनहरी कामदार जाकेट पर लहराते रहते थे।

आह, मुझे कीर्तन में फिर कभी शामिल होना नसीब न हो, अगर यहाँ और इसी समय मैं ख़ुद सुन्दर पिदोरका का मुँह न चूम लूँ – हालाँकि उम्र ने मेरे बालों में बर्फ़ छिड़क दी है और चाहे मेरी बूढ़ी पत्नी भी मेरी बग़ल में मौजूद हो, आँख में पड़ी हुई कंकरी की भाँति दुःख देने वाली!

अब पिदोरका और पीतर की आँखें चार होने के बाद जो कुछ हुआ, उसकी तुम सहज ही कल्पना कर सकते हो। अक्सर जैसे ही लवा पक्षी गाना शुरू करता, उसके लाल जूतों की एड़ियाँ उस जगह पर अपने निशान छोड़ जातीं जहाँ कि पिदोरका पीतर से बतियाती थी। यह सब होने पर भी बूढ़े कोर्य के दिल में कभी सन्देह तक पैदा न होता अगर एक दिन शैतान पीतर को न कुरेदता और उसे इस बात के लिए प्रेरित न करता कि वह चुपचाप गलियारे में पहुँचकर मनहर पिदोरका को अपनी बाँहों में जकड़ ले और अपने होंठों से उसके मुँह पर चुम्बन जड़ दे। और इसी शैतान ने – पवित्र सलीब सपने में भी उसे चैन न लेने दे – ठीक उसी समय बूढ़े दढ़ियल को भी दरवाज़ा खोल बाहर झाँकने के लिए उकसा दिया।

कोर्य ऐसे खड़ा था मानो लकड़ी का बुत हो – मुँह फाड़े और गिरने से बचने के लिए दरवाज़े की चौखट का सहारा लिये हुए। उस कमबख़्त चुम्बन की आवाज़ गाज की भाँति उसके हृदय पर गिरी और चक्की के पत्थर की आवाज़ से भी ज़्यादा भारी तथा स्तब्ध कर देने वाली मालूम हुई, जिससे कि किसान गोली–बारूद के अभाव में, डायनों–चुड़ैलों को भगाते हैं।

आपे में आने पर उसने दीवार पर से हण्टर उतारा जो उसके नाना की सम्पत्ति थी। हण्टर से वह पीतर की कमर की चमड़ी उधेड़ने वाला था कि ईवास, जो कि पिदोरका का छोटा भाई था, न जाने कैसे भागा–भागा बाहर आया और अपने नन्हे हाथों को फैलाकर पिता के घुटनों से लिपट गया।

"पापा, पापा!" वह चिल्लाया, "पीतर को न मारो, पापा!"

अब कोर्य क्या करता? पिता का हृदय पत्थर का तो होता नहीं, हण्टर को अलग रख कोर्य ने पीतर को बाहर धकेल दिया और बोला :

"पीतर, अगर फिर कभी तूने मेरे घर में पाँव रखा या मेरी खिड़की के नीचे दिखायी दिया, तो ख़ुदा की क़सम तेरी मूँछ काट डालूँगा और सिर के बाल उखाड़कर फेंक दूँगा। नहीं जानता, मेरा नाम तेरेन्ती कोर्य है!"

इसके बाद उसने पीतर की गर्दन पर ऐसा रद्दा मारा कि बेचारा शैतान का मारा लुढ़कियाँ खाता हुआ सिर पर पैर रखकर भागता चला गया।

जुदाई से दोनों प्रेमियों के हृदय टूक–टूक हो गये। और इस ख़बर ने तो, जो कि तुरन्त गाँव में फैलनी शुरू हो गयी थी, ख़ास तौर से क़हर बरपा किया कि कोर्य आजकल किसी पोल की ख़ूब आवभगत करता है। यह पोल धन में

लोटता था, बड़ी-बड़ी उसकी मूँछें थीं, तलवार लटकाये चलता था, घुड़सवारी का जामा पहनता था और उसकी जेबें उसी तरह खनखनाती थीं जैसे कि घण्टा बजाने वाले तारास की तालियों का गुच्छा रोज़ गिरजा जाते समय खनखनाता था। हर कोई जानता था कि इस तरह का आदमी किस इरादे से काली भौंहों वाली सुन्दर लड़की के पिता के घर धूनी रमाता है।

एक दिन पिदोरका ने, आँखों से आँसू चुआते हुए, नन्हे ईवास को अपनी बाँहों में उठा लिया और उससे कहने लगी :

"मेरे प्यारे ईवास, मेरे प्यारे छोटे भाई, तीर की तरह पीतर के पास जा और उसे खुद अपने मुँह से सारी बात सुना। उसकी भूरी आँखों पर न्यौछावर होने के लिए मैं क्या कुछ नहीं करती, उसके सोने से पीले मुखड़े को अपने चुम्बनों से रँग देती। लेकिन भाग्य साथ दे तब न। बीसियों रूमाल मैं अपने आँसुओं से तर कर चुकी हूँ। मेरा हृदय उदास है। मेरा सगा पिता मेरा दुश्मन है और उस पोल के गले मुझे मढ़ना चाहता है जिससे कि मैं घृणा करती हूँ। उसे बताना, उससे कहना ईवास कि मेरी सुहाग शैया सजायी जा रही है, लेकिन उसके साथ गाने-बजाने की आवाज़ नहीं सुनायी देगी, शहनाई की जगह गिरजा के उन लोगों की आवाज़ें सुनायी देंगी जो मृत्यु के समय आत्मा की शान्ति के लिए भजन गाते हैं। मैं अपने मंगेतर के साथ नाच में शामिल नहीं होऊँगी। मुझे उसके पास ले जाया जायेगा। लेकिन मेरे रहने की जगह अँधेरी, एकदम अँधेरी होगी, धुआँ निकलने की चिमनी की जगह सलीब उसकी छत को सुशोभित करेगा।"

पीतर को काठ मार गया जब मासूम बालक की अनपढ़ आवाज़ में उसने पिदोरका के इन शब्दों को सुना।

"और मैं!" उसने कहा, "मैं दूसरे ही सपने देख रहा था, मेरी रानी! मैं सोच रहा था कि तुर्की या क्रीमिया जाऊँगा और वहाँ से तुम्हारे लिए ख़ूब धन कमाकर लाऊँगा। वह आशा अब धूल में मिल गयी। निश्चय ही किसी बुरी नज़र का तुम पर और मुझ पर परछावाँ पड़ा है। मेरी भी सुहाग शैया सजेगी, लेकिन मेरे सिरहाने गिरजा के गायक तक न होंगे। धर्मपिता की आवाज़ की जगह काले कौवे की काँव-काँव मुझे सुनायी देगी। नंगी धरती मेरा बिछौना होगी और छत की बजाय भूरे आकाश का तनौवा मेरे सिर पर तना होगा। गिद्ध मेरी भूरी आँखों का नाश्ता करेगा, वर्षा की बौछार भाग्य की मारी मेरी इन हड्डियों को पखारेगी और गरम आँधी के थपेड़े उन्हें सुखायेंगे। लेकिन आख़िर मेरी बिसात ही क्या है? मैं होता कौन हूँ? किसके ख़िलाफ़ और किसके सामने मैं शिकायत करूँ? ख़ुदा की अगर ऐसी ही मर्ज़ी है, अगर मुझे धूल में ही मिलना है, तो ऐसा ही होगा।"

और वह सीधा सराय पहुँचा। मेरे नाना की चाची पीतर को देखकर कुछ

अचरज में पड़ गयी, ख़ास तौर से इस समय, जबकि सभी भले ईसाई सुबह की प्रार्थना में शामिल होते हैं। और उस समय उसने अपनी आँखें और भी ज़्यादा फाड़ लीं – मानो वह अभी भी उनींदी अवस्था में हो – जब उसने सुना कि पीतर ने पूरे कटोरे-भर वोदका की फ़रमाइश की है जो कि सवा सेर से कम नहीं होती। इस तरह भला कहीं ग़म ग़लत होता है? और ऐसा ही हुआ भी। वोदका क्या थी, मानो तरल आग थी। गले को जलाने और काँटों की भाँति चुभने वाली, और ज़हर से भी ज़्यादा कड़वी!

"इस पस्तहिम्मती से काम नहीं चलेगा, कस्साक!" उसके कानों में एक गहरी आवाज़ सुनायी दी।

उसने सिर उठाकर देखा और सुअर ऐसे कड़े बालोंवाले बसावरियोक के चेहरे को पहचानने में उसे देर नहीं लगी।

"मैं जानता हूँ कि तुम्हें किस चीज़ की ज़रूरत है," बसावरियोक ने कहा। "इधर... यह देखो!"

यह कहते हुए उसके चेहरे पर कुत्सित मुस्कुराहट खेल गयी और अपनी कमर से बँधी चमड़े की छोटी-सी थैली को उसने हिलाया। मुट्ठी भरकर सोने की मुद्राएँ उसने थैली में से निकालीं और उन्हें अपनी हथेली में उछालने लगा।

"क्या चमाचम चमकती और कितनी मधुर झंकार करती हैं। और ये सब तुम्हारी हो सकती हैं। इसके लिए तुम्हें बस मेरा एक छोटा-सा काम करना होगा।"

"चाहे तुम शैतान ही क्यों न हो," पीतर ने चिल्लाकर कहा, "मुझे ये मुद्राएँ दे दो। जो भी कहोगे, मैं करने के लिए तैयार हूँ।"

और उन्होंने, प्याले खनकाकर, एक-दूसरे से सौदा पक्का करने के उपलक्ष्य में शराब पी।

"अब मेरी बात सुनो, पीतर," बसावरियोक ने समझाते हुए कहा, "बहुत ही बढ़िया मौक़ा है। कल सन्त जौन का भोज होगा, और साल-भर में आज की रात ही एक ऐसी रात होती है। जबकि फ़र्न झाड़ी में फूल खिलते हैं। आधी रात के समय भालू की घाटी में मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा। देर न करना, समझे!"

जितनी उत्सुकता या बेसब्री से मुर्ग़ी के बच्चे उस क्षण की प्रतीक्षा करते हैं जबकि किसान की पत्नी उनके लिए दाना डालती है, पीतर ने उससे भी कहीं अधिक बेसब्री से रात होने की प्रतीक्षा की। सारी दोपहर-भर वह पेड़ों की परछाईयों को लम्बा होते और सूरज को गुलाबी आभा में नीचे उतरते देखता रहा। जितना ही सूरज के डूबने और साँझ के उतरने में देर होती, बेचैनी अपने नुकीले पंजों से उतना ही अधिक उसके हृदय को क्षत-विक्षत करती। आह, समय भी कितना धीरे-धीरे रेंगता है। लगता है जैसे दिन का कभी अन्त न होगा।

आख़िर सूरज ओझल हो गया। केवल आकाश का एक छोटा-सा खण्ड लाल था, सो वह अन्त में पीला पड़ गया। खेतों से ठण्डी हवा का एक झोंका आया। परछाईंयाँ गहरी हुईं और रात हो आयी। पीतर चल दिया। उसका हृदय बुरी तरह धड़क रहा था। लगता था जैसे वह छाती फोड़कर बाहर निकल आयेगा। लेकिन वह घने जंगल में सावधानी से राह खोजता, आगे बढ़ता और गहरी घाटी में, जो भालू की घाटी कहलाती थी, नीचे उतरता गया।

बसावरियोक पहले से ही वहाँ उसका इन्तज़ार कर रहा था। अँधेरा इतना गहरा था कि कुछ भी सुझायी नहीं देता था। हाथ में हाथ डालकर दोनों एक साथ दलदल को पार करने लगे, कँटीली झाड़ियों से चिपकते और क़रीब-क़रीब हर क़दम पर ठोकर खाते हुए। आख़िर वह एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ ज़मीन ठोस थी। पीतर ने घूमकर अपने दाहिनी और बायीं ओर नज़र डाली। पहले कभी इस जगह को उसने नहीं देखा था। बसावरियोक रुककर खड़ा हो गया।

"ठीक अपने सामने उन तीन पहाड़ियों को देख रहे हो न?" उसने कहा, "वहाँ तुम्हें हर तरह के फूल दिखायी देंगे। दानवी ताक़तें तुम्हारी रक्षा करें, उन्हें कभी न तोड़ना। लेकिन जैसे ही फ़र्न का फूल खिले, उसे तोड़ लेना और फिर पलटकर न देखना, चाहे तुम्हारी पीठ पीछे कुछ भी क्यों न हो!"

पीतर चाहता था कि अपने इस रहनुमा से कुछ और सवाल पूछे, लेकिन यह क्या – उसने देखा कि बसावरियोक ग़ायब हो चुका था। पीतर पहाड़ियों के पास पहुँचा, लेकिन यहाँ उसे एक भी फूल न दिखायी दिया। केवल काले तनों से निकली जंगली जड़ी-बूटियाँ और अजीबोग़रीब पौधे हर चीज़ को ढँके थे। सहसा रात के अँधेरे में एक बिजली-सी कौंध गयी और उसकी दरकदार रोशनी में पीतर ने देखा कि अजीब और सुन्दर लाल फूलों का एक कालीन बिछा है। ऐसे उसने पहले कभी नहीं देखे थे। उनके बीच उसे एक साधारण फ़र्न की दलदार पत्तियाँ दिखायी दीं। अचरज और दुविधा में डूबा, कूल्हों पर हाथ रखे, वह बुत की भाँति उनके सामने खड़ा था।

"इसमें तो ऐसी कोई ख़ास बात नहीं दिखायी देती," मन ही मन उसने अपने आप से पूछा, "इस तरह की फ़र्न झाड़ियाँ तो मैं दिन में दस बार देखता हूँ। इनमें आख़िर भेद की बात क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि बसावरियोक ने मुझे छकाकर उल्लू बनाने के लिए यह सब किया हो?"

तभी, अकस्मात, एक नन्ही कली का रंग लाल हो गया और वह इस तरह हिली मानो उसमें अचानक जान पड़ गयी हो। यह एक बहुत ही अजीब बात थी। देखते-न-देखते उस कली का आकार बड़ा और उसका रंग धधकते हुए कोयले की भाँति लाल होता गया। वह धीमी आवाज़ के साथ चटकी और

एकदम फूल के रूप में खिल गयी। उसमें शोले जैसी दमक थी और अपनी रोशनी से अन्य सभी फूलों को उसने चमका दिया था।

"ठीक यही वह मौक़ा है," अपना हाथ बढ़ाते हुए पीतर ने सोचा।

लेकिन उसी क्षण उसे अपने पीछे पदचापों की एक बाढ़ सुनायी दी और सैकड़ों बालदार बाँहें उसके कन्धों को पार कर दमकते हुए फूल की ओर बढ़ने लगीं। बसावरियोक की चेतावनी को याद कर उसने अपनी आँखें मूँद लीं और तेज़ी से तने पर झपट्टा मारा। फूल को उसने अपनी मज़बूत मुट्ठी में दबोच लिया। चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया। बसावरियोक अब फिर प्रकट हुआ। वह एक पेड़ के ठूँठ पर बैठा था। निश्चल और लाश की भाँति बेजान। काश कि वह अपनी एक उँगली ही हिलाता! लेकिन नहीं, उसकी आँखें किसी चीज़ पर, जो केवल उसे ही दिखायी देती थी, बुरी तरह जमी थीं। उसका मुँह आधा खुला था, और होंठ भूलकर भी कोई आवाज़ नहीं कर रहे थे। भयानक दृश्य था।

सहसा तेज़ सीटी की आवाज़ को सुनकर पीतर का हृदय जमकर बर्फ़ हो गया। उसे लगा मानो इस आवाज़ ने झाड़ियों को कँपा दिया हो और फूल बाँसुरी के स्वर में एक-दूसरे से बातें कर रहे हों, ठीक वैसे ही जैसे कि चाँदी की छोटी-छोटी घण्टियाँ बजती हैं। इसी के साथ पेड़ों ने भी एक स्वर से भुनभुनाना शुरू कर दिया। बसावरियोक के चेहरे में एक बार फिर हरकत पैदा हुई और उसकी आँखें चमक उठीं।

"मुझे भारी मुसीबत भुगतनी पड़ी," दाँत भींचते हुए उसने कहा, "तब कहीं जाकर यह डायन (जीगिनी) आने को राजी हुई है। सुनो पीतर, अब वह तुम्हारे सामने प्रकट होगी। जैसे वह कहे वैसे ही करना। अन्यथा तुम्हारी ख़ैर नहीं।"

इसके बाद उसने अपनी गाँठ-गँठीली छड़ी से एक कँटीली झाड़ी की टहनियों को हटाया और वहाँ एक छोटा-सा घर दिखायी दिया। फिर अपनी मुट्ठी से उसने घर को इस हद तक खटखटाया कि उसकी दीवारें हिलने लगीं। तभी काले रंग का एक बड़ा कुत्ता गुर्राता हुआ दरवाज़े से बाहर निकला। उसकी आवाज़ एक तेज़ चीख़ के रूप में बदल गयी और वह यकायक कुत्ते से गोंगियाती हुई बिल्ली बन गयी। बिल्ली ने अपनी कमर दोहरी कर ली और उछलकर उनकी आँखें नोचने के लिए एकदम तैयार दिखायी देने लगी।

"बस-बस, बहुत ताव न दिखा, नरकवासिनी बूढ़ी छछून्दर!" बसावरियोक ने उससे कहा और अपने इस आदेश के साथ एक ऐसी गाली का प्रयोग किया जिसे सुनते ही कोई भी भला आदमी कान मूँद लेगा।

और तब... बिल्ली की जगह एक बुढ़िया वहाँ दिखायी देने लगी। उसका

मुँह तन्दूर में भुने सेब की भाँति झुर्रियों से भरा था। उसकी कमर झुककर कमान हो गयी थी। उसकी नाक और ठोड़ी एक-दूसरे को इस तरह छूती थी कि उसका चेहरा सँड़सी जैसा दिखायी देता था।

"वाह, क्या परियों-सा चेहरा-मोहरा है!" पीतर ने मन ही मन सोचा। उसकी रग-रग में भय सरसरा रहा था।

बूढ़ी डायन ने तुरन्त झपटकर उसके हाथ से फूल छीन लिया और उसके ऊपर झुकते हुए न जाने क्या अण्ड-बण्ड बुदबुदाने और उस पर पानी छिड़कने लगी। उसके मुँह से चिनगारियाँ निकल रही थीं और होंठों पर झाग उफन रहे थे। इसके बाद उसने फिर वह फूल पीतर के हाथों में थमा दिया।

"इसे फेंक दो!" उसने आदेश दिया।

उसने फूल फेंक दिया। तभी एक विचित्र बात हुई। एकदम ज़मीन पर गिरने के बजाय, वह फूल अँधेरे में आग के एक छोटे गोले की भाँति, हवा में इस तरह तैरने लगा जैसे नाव पानी में तैरती है। अन्त में वह चक्कर काटता, ऊँचे से नीचे आ गया और इतनी दूर धरती पर जा गिरा कि यहाँ से पोस्त के दाने से ज़्यादा बड़ा नहीं मालूम होता था।

"उधर!" बुढ़िया ने चिल्लाकर कहा।

वे उधर पहुँचे। पीतर को फावड़ा देते हुए बसावरियोक ने कहा :

"इस जगह खोदो पीतर। यहाँ तुम्हें इतना सोना मिलेगा कि तुमने, अथवा कोर्य ने, सपने में भी नहीं देखा होगा।"

पीतर ने अपनी हथेली पर थूककर हाथ मसले, फावड़े को उठाया और खोदने लगा। उसने एक बार फावड़ा-भर मिट्टी हटायी, फिर दूसरी और तीसरी बार, और अन्त में चौथी बार। तब उसे लगा जैसे फावड़ा किसी सख़्त चीज़ से टकराया हो। बड़ी मुश्किल से पता चला कि लोहा-जड़ी सन्दूक़ है। उसे उठाने के लिए वह दोहरा हो गया, लेकिन उठने की बजाय सन्दूक़ और भी नीचे धरती में धँसने लगी। जितना ही वह कोशिश करता, उतना ही अधिक वह सन्दूक़ धरती में धँसती जाती।

तभी उसने हँसी की एक आवाज़ अपने पीछे की ओर सुनी, जो हँसी से ज़्यादा साँप के मुँह से निकली फुँकार-सी मालूम होती थी।

"बेकार जान खपा रहे हो," डायन ने सलाह दी। "सोना तब तक तुम्हारा नहीं होगा, जब तक कि तुम उस पर मानव का रक्त नहीं ढालते!"

और सहसा एक छोटे बालक को उसकी ओर धकेलते हुए उसने उसका गला काटने का इशारा किया।

पीतर का सिर चकरा गया। वह जमकर काठ हो गया। तो क्या मानव का सिर काटना होगा? और सबसे भयानक यह कि एक बालक का सिर काटना

होगा! गुस्से में उबलते हुए पीतर ने उस चादर को उतार फेंका जिसमें शिकार लिपटा था। पहचानते देर नहीं लगी... वह ईवास था। ईवास जिसका सिर झुका था और हाथ सीने पर जुड़े थे। पीतर डायन की ओर झपटा और गुस्से में अपने चाकू से उस पर वार करना ही चाहता था कि बसावरियोक ने चिल्लाकर कहा :

"तुमने मुझे वचन दिया था कि पिदोरका की ख़ातिर तुम किसी भी काम से इंकार नहीं करोगे!"

इन शब्दों ने, पीछे से किये गये गोली के वार की भाँति, युवक को घायल कर दिया। तभी बूढ़ी चुड़ैल ने धरती पर अपना पाँव पटका और धरती में से एक नीला शोला प्रकट हुआ। उसके पाँव के चारों ओर ज़मीन इतनी परदर्शी हो गयी, मानो उस पर साफ़ बिल्लौरी चादर जड़ी हो। धरती के गर्भ में छिपी हर चीज़ उसमें से इतनी साफ़ दिखायी देती थी, मानो वह तुम्हारे हाथ की हथेली पर ही रखी हो। सोने के पासे और हीरे-जवाहर घड़ों और मर्तबानों में न समा सकने के कारण बाहर धरती पर ठीक उन्हीं के पाँवों के नीचे बिखरे हुए थे। पीतर की आँखें चौंधियाँ गयीं और उसे भले-बुरे का कोई ध्यान नहीं रहा...

पागल की भाँति उसने चाकू उठा लिया और मासूम बालक के ख़ून के फ़व्वारे ने उसका चेहरा रँग दिया। भालू की घाटी नारकीय अट्टहास से गूँज उठी। हत्यारे की आँखों के सामने दल-के-दल विचित्र और भयानक जिन्न तैरते हुए निकल गये। डायन ने बालक के सिर-विहीन शरीर पर अपने नाख़ून गड़ा दिये थे और भूखे भेड़िये की भाँति उसका ख़ून डकार रही थी।

पीतर के दिमाग़ का तार टूट गया और अपनी बची-खुची शक्ति बटोरकर वह वहाँ से भागा। राह में जिस चीज़ को भी वह छूता, वही लाल हो जाती। पेड़ों से ख़ून टपकता और वे कराहते मालूम होते। लाल दमकता हुआ आसमान डगमगा और थरथरा रहा था। भगोड़े युवक की पथरायी हुई-सी आँखों के आगे आग की लपटें आँखमिचौनी खेल रही थीं। भागते-भागते आख़िर वह अपनी शरणागार में पहुँच गया और थकान से चूर धरती पर ढेर हो गया। इसके बाद उसे बोझिल नींद ने धर दबाया।

दो दिन और दो रात तक वह बराबर सोता रहा। एक बार भी उसकी नींद नहीं टूटी। तीसरे दिन जब उसने अपनी आँखें खोलीं तो आँखें फाड़े बहुत देर तक अपने रहने का एक-एक कोना देखता रहा। लेकिन बहुत ज़ोर मारने पर भी, वह याद नहीं कर सका कि उसे क्या हो गया था। तभी, बदन फैलाते समय, उसका पाँव किसी चीज़ से टकराया। उसने झुककर देखा – दो थैलियाँ हैं, सोने से भरी हुईं।

और केवल तब, सपने की बात की भाँति, उसे याद आया कि वह किसी

ख़ज़ाने की खोज में निकला था और घने जंगल में एकदम एकाकी डर ने उसे दबोच लिया था। लेकिन क्या खोकर और किस तरह ख़ज़ाना उसके हाथ लगा, बहुत कोशिश करने पर भी यह सब उसे याद नहीं आया।

"मेरे प्यारे पीतर," सोने की थैलियों को देखकर नर्म पड़ते हुए कोर्य ने कहा, "मेरे बढ़िया पीतर कौन नहीं जानता कि मैंने सदा तुम्हें प्यार की नज़र से देखा है और तुम्हारे साथ अपने बेटे की भाँति व्यवहार किया है।"

बूढ़ा दढ़ियल कुछ इतने प्यार और हार्दिकता से पेश आया कि पीतर की आँखों में आँसू तरने लगे। पिदोरका ने उसे बताया कि वे ख़ानाबदोश, जो गाँव से गुज़र रहे थे, नन्हे ईवास को चुरा ले गये। लेकिन यह सुनकर भी पीतर की स्मृति नहीं जागी, डायन ने इतना गहरा जादू उस पर कर दिया था।

कहानी के साथ अब ज़्यादा खींचतान करने की ज़रूरत नहीं। थोड़े में यह कि पोल प्रेमी को रद्द कर दिया गया और पीतर तथा पिदोरका की ख़ूब धूमधाम से शादी हुई। पकवान बनाये गये। रूमाल और तौलियों पर कसीदाकारी की गयी, वोदका का पूरा पीपा मँगाया गया और नव–दम्पति मेज़ पर बैठाये गये। तरह–तरह के बाजे बजे और ख़ूब ख़ुशियाँ मनायी गयीं।

पुराने दिनों में शादियाँ आज से बिल्कुल भिन्न चीज़ होती थीं। काश कि मेरे नाना की चाची के मुँह से उन शादियों का ज़िक्र सुन पाते! एक सिरे से सभी लड़कियाँ बढ़िया से बढ़िया साज़–सिंगार करती थीं। अपने बालों में पीले, लाल और नीले रंग के फ़ीते बाँधती थीं, जिनमें सुनहरे गोटे के फुँदने लगे होते थे। लाल रेशम से कढ़े तथा रुपहले फूल बने, बढ़िया सालटी के ब्लाउज़ पहने, पाँव में लाल रंग की ऊँची एड़ी वाले लचकदार चमड़े के जूते डाटे, वे मोर की भाँति कमरे में राजसी मुद्रा में थिरकतीं या नृत्य के आवेग में तूफ़ानी किलकारियों के साथ बगूला बन जाती थीं। युवा गृहिणियाँ सिर पर हल्के रंग के ऐसे सुनहरे कामदार रूमालों से बँधे लहरिया जूड़े बाँधती थीं, जिनका पिछला भाग गरदन के पीछे बेलबूटों से युक्त रेशमी टोपी जैसा जान पड़ता था। इस टोपी में, सजावट के लिए काले मेमने की ऊन के दो सींग टँके होते थे, एक आगे की ओर निकला हुआ और दूसरा पीछे की ओर। लाल गोट लगी बढ़िया रेशम की नीली जाकेट पहने, कूल्हों पर हाथ रखे, वे गर्व के साथ खड़ी होतीं और हेपक नृत्य के गत के साथ अपने एक पाँव को लहराती। युवक लोग, अपने पाइपों को दाँतों में दाबे और सिर पर ऊँचे कस्साक टोप तथा बदन पर बढ़िया कपड़े की चुस्त फतुही पहने, और कमर में चाँदी की पेटी कसे, युवतियों के आगे बिछ जाते और उनके साथ प्रेमाभिनय करते।

इस यौवनमय वातावरण में कोर्य से भी न रहा गया। वह बुढ़ापे के बावजूद उसमें शामिल हो गया। हाथ में वह सितार लिये था, पाइप से धुआँ उड़ाते हुए

गाता भी जाता था, और सिर पर वोदका से भरे गिलास को ऐसे सन्तुलित किये था कि वह छलक नहीं पाता था। पिण्डलियों को झुकाये भले आदमी ने वह नाच दिखाया कि नशे में धुत्त मेहमानों की ख़ुशी और हल्ले-गुल्ले का वारापार न रहा।

नशे में भी ख़ूब दूर की सूझती है। जो भी मन में आ जाये वही थोड़ा। हमारे पुरखे, तरंग में आने पर, ऐसी-ऐसी अजीबोग़रीब पोशाक पहनते थे कि क्या बताऊँ। आजकल हम क्या करते हैं? ख़ानाबदोशों या मास्कोवासियों का स्वाँग भरकर समझते हैं कि बहुत बड़ी बाज़ी मार ली!

लेकिन पुराने दिनों में, मिसाल के लिए अगर कोई यहूदी का स्वाँग भरता था तो दूसरा शैतान का। दोनों चुम्बन से शुरू करते और अन्त होते न होते एक-दूसरे के बाल खींचने लगते। और तब, ख़ुदा तुम्हारा भला करे, दर्शकों में हँसी की ऐसी बाढ़ आती कि पेट में बल पड़ जाते।

अन्य लोगों में से कुछ तुरुक बनते और कुछ तातार। उनके कपड़े सिर से पाँव तक लक़दक़ करते। लेकिन जब वे उल्लू बनना या बनाना शुरू करते अथवा कोई शैतानी करने की बात सोचते तो हमेशा छकौवल पर उतर आते। ऐसे ही मेरे नाना की चाची के साथ, जो इस शादी में शामिल हुई थी, एक बहुत ही मज़ेदार चाल की गयी। वह ढीलाढाला तातारी चोग़ा पहने थी। हाथ में झारी लिये सभी पात्रों में मदिरा ढाल रही थी। मेहमानों में से एक को शैतान ने उकसाया और उसने बेचारी के चूतड़ों पर ब्राण्डी छिड़क दी। एक दूसरे हँसीबाज़ को जो मज़ाक़ सूझा तो उसने चाची के पिछले हिस्से में तुरन्त दियासलाई दिखा दी। ब्राण्डी ने आग पकड़ ली और लपटें उठने लगीं। बेचारी चाची और क्या करती, डर के मारे उसने अपने कपड़े उतार फेंके और सबके सामने नंगी हो गयी। बस, फिर क्या था, वह मज़ा आया कि कुछ न पूछो। हँसी का ऐसा दौरा, ऐसी बाढ़, पहले कभी नहीं आयी थी। लोगों ने ख़ूब फब्तियाँ कसीं, ख़ूब चुटकियाँ लीं। अच्छे-ख़ासे मेले-ठेले का समाँ बँध गया।

थोड़े शब्दों में यह कि पुराने लोगों की याद में इतना मज़ा पहले और किसी की शादी में नहीं आया था जितना कि बूढ़े कोर्य की लड़की की शादी में आया।

और जब शादी हो गयी तो पिदोरका और पीतर कुलीन लोगों की भाँति ठाठ से रहने लगे। उनके घर में किसी चीज़ का अभाव नहीं था, सभी कुछ चकाचक था। लेकिन उनके इस ठाठ-बाट को देखकर ईमानदार लोग गम्भीरता से सिर हिलाते और एक स्वर से घोषणा करते :

"शैतान की संगत का फल कभी अच्छा नहीं होता!"

और यह बात ठीक भी थी। आख़िर पीतर ने यह धन-दौलत पायी कहाँ से

थी? उसी से तो जो भले लोगों का धर्म भ्रष्ट करता है। सोने के ये ढेर यों ही आसमान से तो नहीं टपक पड़े! और फिर, ठीक उसी दिन जब पीतर ने यह औचक वैभव प्राप्त किया, बसावरियोक क्यों एकदम ग़ायब हो गया?

एक महीना बीत गया – एक ऐसा महीना जिसने पीतर में गहरा परिवर्तन कर दिया। सच तो यह है कि अब वह पहचान में भी नहीं आता था।

लेकिन क्यों? पीतर के साथ ऐसा क्यों हुआ?

ईश्वर ही इसका जवाब दे सकता था। वह एक ही जगह पर बैठा रहता, न किसी से बोलता न चालता, सदा ही सोच में डूबा रहता और किसी तरह भी न चेतता। किन्हीं भूली बातों को याद करने की कोशिशों में वह इस हद तक फँसा था। केवल पिदोरका के बोलने पर वह कभी-कभी चेत जाता और उससे बतियाते समय उसके चेहरे पर ख़ुशी भी दौड़ जाती। लेकिन किसी बुरी घड़ी में सोने की थैलियों पर जैसे ही उसकी नज़र पड़ती, वह चिल्ला उठता :

"ठहरो... ठहरो... ओह, मुझे कुछ याद नहीं पड़ता!"

और अपना सिर वह फिर अपने हाथों से दबोच लेता और याद करने की कोशिश करता।

कभी-कभी, एकाग्रचित होने पर वह सोचता कि उसका अतीत फिर लौटने वाला है, लेकिन अगले ही क्षण सब कुछ फिर घुलकर साफ़ हो जाता। वह कल्पना में देखता कि वह सराय में बैठा है, कोई उसे वोदका लाकर देता है, और वह उसके तीते स्वाद तक का अनुभव करता है। फिर कोई उसके पास आकर खड़ा हो जाता, और उसके कन्धों को थपथपाता... इसके बाद आगे क्या हुआ, यह वह नहीं देख पाता, एक धुँध-सी उसकी आँखों के सामने छा जाती और सभी कुछ ओझल हो जाता। उसके माथे से पसीना चूने लगता और शरीर इतना थक जाता कि वह उस जगह से डिग तक न पाता, वहीं जाम होकर रह जाता।

उसकी पत्नी ने कोई उपाय बाक़ी नहीं छोड़ा। वह डायनों के पास गयी। उनसे उसने पूछा कि वह क्या चीज़ है जो भूत की तरह पीतर के सिर पर सवार है, यहाँ तक कि पेट की शिकायतें दूर करने के लिए जादू-टोनों का भी उसने सहारा लिया। लेकिन कोई चीज़ कारगर सिद्ध नहीं हुई।

इस प्रकार गर्मियाँ गुज़र गयीं। अधिकांश किसानों ने अपनी फ़सलें काट और बटोर लीं। जो अधिक साहसी थे, वे दूर यात्राओं पर चले गये। स्तेपी में घास पीली पड़ गयी और खेतों में, जहाँ-तहाँ, कस्साक टोप की भाँति पूलों के ढूह लग गये। ईंधन की लकड़ियों और गट्ठों से लदी गाड़ियाँ राह में आती दिखायी देतीं। धरती कड़ी पड़ गयी और धुँध उसमें समा गयी। फिर आकाश रांगे के रंग का और बर्फ़ से बोझिल हो गया, और पेड़ों की टहनियों पर पाला

जम गया जिससे वे ख़रगोश की मूँछों की भाँति दिखायी देने लगीं। ऐसे ही बर्फ़ीले दिनों में, जब मौसम बढ़िया होता है, लाल गरदनों, सुन्दर पंखों और मज़बूत चोंचोंवाले गवैये बनचटकी पक्षी भद्र वर्ग के पोल लोगों की भाँति सजे-धजे, बर्फ़ पर फुदकते और चुग्गे के दाने की खोज में चोंच मारते नज़र आते हैं।

लम्बी लकड़ियों से लैस बच्चे बर्फ़ पर हॉकी खेलते हैं जबकि घर के बड़े लोग तन्दूर की छत पर आराम से आसन जमाते और पाइप से तम्बाकू पीते हैं। जब-तब, ताज़ी हवा सूँघने के लिए, वे तन्दूर से नीचे भी उतर आते हैं और कड़ी ठण्ड पर टिप्पणियाँ कसते हैं, या फिर घर के बाहर ओसारे में फैले अनाज को फटकते हैं। अन्त में बर्फ़ गिरना शुरू हो जाती है।

पीतर का हाल जैसा का तैसा। समय के साथ उसके मस्तिष्क का अन्धकार और भी गहरा हो गया था। ऐसा मालूम होता था, मानो उसे एक जगह पर कीलों से जड़ दिया गया हो। कमरे के बीचोबीच रखी कुर्सी से वह ज़रा भी न डिगता। सोने से भरी थैलियाँ उसके पाँव के पास पड़ी रहतीं। समाज से अब उसका कोई वास्ता नहीं, उसकी दाढ़ी के बाल बढ़ गये थे और उसका चौखटा बड़ा भयानक मालूम होता था। वह हमेशा केवल एक ही चीज़ के बारे में सोचता था – अपनी स्मृतियों के बारे में, जो सिर पटकने पर भी उसकी पकड़ में नहीं आती थीं। उसकी सारी कोशिशें बेकार जातीं और झुँझलाहट तथा गुस्से से वह उबलता-उफनता रहता। कभी-कभी वहशियों की भाँति, वह उछलकर खड़ा हो जाता, हवा में घूँसे चलाता और शून्य में किसी एक बिन्दु पर बुरी तरह अपनी धँसी हुई आँखें जमाये, पूरा ज़ोर लगाकर देखना चाहता – अपने अतीत को देखना चाहता। उसके होंठ काँपने लगते, मानो वह किसी चिर-विस्मृत नाम का उच्चारण करने की कोशिश कर रहा हो, फिर वे ख़ामोशी में जाम हो जाते। इसके बाद उसके सिर पर एक पागलपन-सा सवार हो जाता, वह कमरे में मँडराने लगता, अपने नाख़ूनों को काटता और बालों को नोंचता, और अन्त में थककर फ़र्श पर गिर पड़ता। कुछ देर वह चुपचाप, एकदम शान्त पड़ा रहता, इसके बाद फिर गरमा जाता और स्मृतियों की खोज में अपने भ्रान्त मस्तिष्क को खरोंचने लगता। लेकिन स्मृतियाँ थीं कि पकड़ में न आतीं।

कितनी भारी सज़ा दी भगवान ने उसे!

पिदोरका का जीवन भी इससे कोई ज़्यादा अच्छा नहीं था। शुरू-शुरू में उसके साथ घर में अकेले रहने में उसे डर लगता, लेकिन बाद में मुसीबत की मारी वह अपने इस दुर्भाग्य की अभ्यस्त हो गयी। उसके पहले वाले सौन्दर्य का अब कोई चिह्न तक बाक़ी नहीं बचा था। न अब गुलाब-से गालों में वह लाली थी, न अब वे उजली मुस्कुराहटें थीं। उसकी खाल मुरझा गयी थी। वह क्षीण

हो गयी थी, और आँसुओं ने उसकी आँखों की चमक को धुँधला बना दिया था।

एक दिन किसी ने तरस खाकर उसे सलाह दी कि भालू की घाटी में एक डायन रहती है जो दुनिया-भर के रोगों का इलाज करने में प्रसिद्ध है। वह उसके पास जाये। अन्त में और कुछ उपाय न देख पिदोरका ने उसके पास जाने का निश्चय किया। वह बूढ़ी डायन के पास गयी और समझा-बुझाकर उसे अपने घर ले आयी।

जब पिदोरका डायन को लिये घर लौटी, उस समय रात हो गयी थी। और संयोग की बात कि वह रात भी सन्त जौन के भोज के पहले की रात थी। पीतर अपने-आप में खोया और अचेत अपनी कुर्सी पर बैठा था। कुछ देर तक उसे यह भी पता नहीं चला कि घर में कोई आया है। उसके बाद, धीरे-धीरे, उसने अपना सिर उठाया। उसके बदन में एक कँपकँपी-सी दौड़ गयी और फाँसी पर चढ़ने के लिए तैयार व्यक्ति की भाँति उसके बाल खड़े हो गये। यकायक उसने ठहाका मारकर हँसना शुरू कर दिया। उसकी यह हँसी इतनी भयानक थी कि पिदोरका का हृदय जमकर बर्फ़ हो गया।

"याद आ गया!" वहशियाना ख़ुशी से चिल्लाकर उसने कहा। "मुझे सब याद आ गया!"

और उसने एक कुल्हाड़ी घुमाकर पूरे ज़ोर से डायन पर दे मारी।

कुल्हाड़ी का फलक एक लकड़ी के दरवाज़े में दो इंच भीतर तक घुस गया। बूढ़ी चुड़ैल ग़ायब हो गयी और उसकी जगह कमरे के बीचोबीच एक सात-वर्षीय बालक दिखायी देने लगा जो सफ़ेद कपड़े पहने था और जिसका मुँह ढँका था। मुँह का पर्दा गिर गया।

"ईवास!" पिदोरका चिल्लाकर उसकी ओर बढ़ी।

लेकिन ईवास का प्रेत-शरीर सिर से पाँव तक ख़ून से चू रहा था, और इस ख़ून की लाली से सारा कमरा लाल दमक रहा था। डर की मारी पिदोरका कमरे से भाग गयी। कुछ क्षण बाद, साहस बटोरकर, उसने फिर कमरे में अपने भाई के पास आने की कोशिश की। लेकिन कमरे का दरवाज़ा उसी समय बन्द हो गया था, जब वह बाहर निकली थी। उसने अब लाख कोशिश की, पर बुरी तरह जाम हुए दरवाज़े को खोल न सकी।

कुछ पड़ोसी भी दौड़े आये और अपने बदन का सारा ज़ोर लगाने के बाद अन्दर जाने में उन्होंने सफलता प्राप्त की। लेकिन कमरा ख़ाली था!

सारे घर में धुआँ भरा था। कमरे के बीचोबीच, जहाँ पीतर खड़ा था, अँगारों का एक ढेर था जिनसे हल्का-हल्का धुआँ उठ रहा था। वे सोने की बोरियों की ओर लपके। बोरियों में सोने के पासों के आकार के मिट्टी के बरतनों के टुकड़े

भरे थे। पड़ोसियों की आँखें फट गयीं और मुँह खुले के खुले रह गये। वे जहाँ खड़े थे, वहीं काठ के बुतों की भाँति खड़े रह गये। डर ने उनके पाँव इस हद तक बाँध दिये थे कि वे मूँछ के बाल बराबर भी इधर से उधर नहीं हिल सकते थे। प्रेत-लीला के गहरे रहस्य ने उन्हें हक्का-बक्का बना दिया था।

इसके बाद ठीक क्या हुआ, यह कुछ याद नहीं पड़ता। पिदोरका ने तीर्थ-यात्रा करने की मनौती मानी। अपने स्वर्गस्थ पिता की हर चीज़ उसने बेच डाली और उसके कुछ दिन बाद वह गाँव से चली गयी। वह कहाँ गयी, यह कोई नहीं जानता। गाँव की अधिक उदार बड़ी-बूढ़ियों के अनुसार वह अपने पीतर के पास उसी जगह चली गयी जहाँ शैतान ने उसे ले जाकर डाल दिया था। लेकिन एक दिन एक कस्साक ने, जो कीव से आया था, ख़बर दी कि उसने किसी ईसाई मठ में एक सधुनी को देखा जिसका बदन मांस की जगह हड्डियों का ढाँचा-भर रह गया था। घुटनों के बल बैठी वह सदा प्रार्थना में रत रहती थी। इस सधुनी का उसने जो वर्णन किया उससे दिकान्का के लोगों ने तुरन्त जान लिया कि वही पिदोरका है। ऐसा मालूम होता है कि किसी ने भी उसे बोलते नहीं सुना था, और यह कि पैदल ही उसने समूची यात्रा की थी और हमारी इष्ट देवी के मन्दिर के लिए देव-प्रतिमा रखने का एक चौखटा भेंट किया जो क़ीमती हीरों से जड़ा था और इस तरह जगमग करता था कि धर्मभीरु जनों की आँखें उसे देखकर चौंधिया जाती थीं।

लेकिन कहानी का, सच पूछो तो, यहीं अन्त नहीं हो जाता। ठीक उसी दिन जबकि शैतान पीतर को ले गया, बसावरियोक फिर आ मौजूद हुआ। लेकिन उसे देखकर सभी उससे दूर भागते। वे अब उसकी असलियत पहचान गये थे। वह साकार शैतान था और ख़ज़ाने की खोज में आदमी का चोला उसने धारण कर लिया था। लेकिन चूँकि शैतान खुद अपने-आप ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा नहीं कर सकता, इसलिए वह छैल-चिकनिये युवकों की टोह में रहता और उन्हें अपना सहायक बनाता है।

उसी साल हमारे पुरखों ने धरती खोदकर बनाये अपने खोहनुमा घरों को छोड़ दिया और अपने लिए गाँव में घर बनाने शुरू किये। लेकिन गाँव तक में बसावरियोक उन्हें घड़ी-भर भी चैन नहीं लेने देता था। मेरे नाना की चाची कहा करती थी कि उसके पीछे तो वह ख़ास तौर से पड़ा था। इसका कारण यह था कि ओपोचनियान्स्क सड़क वाली अपनी पुरानी सराय को उसने छोड़ दिया था। यह उसे बुरा मालूम हुआ और चाची को सताने में उसने अपनी ओर से कोई क़सर नहीं छोड़ी।

एक बार ऐसा हुआ कि गाँव के बड़े लोग उसके यहाँ जमा थे। वे मेज़ के चारों ओर, अपने-अपने पद तथा मान-मर्यादा के अनुसार, बैठे बातें कर रहे थे।

मेज़ पर तन्दूर की पकी एक सालिम भेड़ रखी थी। और सच मानो, वह कोई छोटी भेड़ भी नहीं थी। बातचीत का सिलसिला घूमघुमाकर जादू–टोनों और प्रेत–लीलाओं की ओर मुड़ चला।

इसी समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ – किसी एक को नहीं, अगर ऐसा होता कोई परवाह न करता, बल्कि सबको, ध्यान देने की बात है कि एक सिरे से सबको – ऐसा मालूम हुआ मानो भेड़ ने अपना सिर उठाया। उसकी पथरायी हुई आँखें जीवन की चिनगारी से चमकती मालूम हुईं। उसने अपनी मूँछें, जो ऊपर के होंठ पर यकायक उग आयी थीं, फड़कायीं। पलक झपकते सबने – उनमें से हरेक ने – पहचाना कि अरे, यह तो भेड़ की नहीं, बसावरियोक की शक्ल है। और मेरे नाना की चाची को तो ऐसा मालूम हुआ मानो वह वोदका की फ़रमाइश करने ही वाला है। जहाँ तक बड़े लोगों का सम्बन्ध है, वे फिर नहीं टिके, आपाधापी में अपने–अपने टोप उठाकर भाग खड़े हुए।

एक अन्य घटना ख़ुद गिरजा के अधिकारी जी के साथ घटी। वह रात ढल चुकने तक बातें करने और बढ़िया ब्राण्डी की चुस्कियाँ लेने के प्रेमी थे। यह ब्राण्डी उन्हें पुरखों से विरासत में मिली थी। सो अपनी आदत के अनुसार वह चुस्कियाँ ले रहे थे और अभी दूसरा गिलास भी ख़ाली नहीं कर पाये थे कि गिलास, पूरी श्रद्धा के साथ झुककर, उनका अभिवादन करने लगा।

"तुझे शैतान उठा ले जाये!" सलीब का चिह्न बनाते हुए अधिकारी जी चिल्ला उठे।

और उसी साँझ उनकी पत्नी के साथ भी एक अद्‌भुत घटना घटी। एक काफ़ी बड़े बरतन में अभी उसने खमीर को फेंटना शुरू किया ही था कि यकायक बरतन सीधा खड़ा हो गया।

"अरे शान्त रह, शान्त रह!" बेचारी ने चिल्लाकर कहा।

लेकिन बरतन था कि ठसके के साथ चलकर कमरे के बीच में पहुँच गया और दरबारी पावाडन नृत्य करने लगा। सुनकर तुम भले ही हँसो, लेकिन हमारे पुरखों के लिए निश्चय ही यह कोई हँसने की बात नहीं थी। धर्मपिता अफ़नासिउस ने समूचे गाँव में पवित्र जल छिड़का और पवित्र जल का पात्र हाथ में लिये गाँव के कोने–कोने से शैतान को मार भगाया। लेकिन इसके बाद भी शैतान बहुत दिनों तक मेरे नाना की चाची को सताता रहा। वह शिकायत किया करती कि रात होते ही न जाने कौन उसकी छत पर चढ़कर रेंगता और उसकी दीवारों को खरोंचता रहता था।

लेकिन इतनी पुरानी बात को छोड़ो। आज इस जगह जहाँ हमारा गाँव बसा है, हर चीज़ शान्त और स्थिर मालूम होती है। लेकिन कुछ ही समय पहले जब मेरे पिता जीवित थे, मुझे अच्छी तरह याद है कि कोई भी नेक आदमी उस

सराय के खण्डहर के पास से गुज़रने का साहस नहीं कर सकता था। उस सराय को अब यहूदियों ने अपने पैसों से बनवा लिया है। लेकिन उस समय जबकि उसमें कोई नहीं था और वह खण्डहर हुई पड़ी थी, कालिख-पुती उसकी चिमनी से धुएँ के काले बादलों के इतने ऊँचे भभके निकलते थे कि उन्हें देखने के प्रयत्न में टोपी सिर से नीचे आ रहती थी। धुएँ के उन बादलों से चिनगारियाँ निकलती थीं जो स्तेपी के समूचे ओर-छोर में फैल जाती थीं और शैतान, अपने बिल के अन्दर से, इतनी भयानक आवाज़ करता था कि पहाड़ी काग डर के मारे आसपास के ओक वृक्षों से निकलकर आकाश में मँडराने और बुरी तरह काँव-काँव करने लगते थे।

अनु. - नरोत्तम नागर

गरम कोट

किसी विभाग में, लेकिन मैं समझता हूँ कि सही-सही यह न बताना ही बेहतर होगा कि किस विभाग में। क्योंकि ये सभी विभाग, रेजिमेण्टें और चांसलरियाँ - मतलब यह कि सरकारी नौकरों की सभी कोटियाँ - बेहद बदमिज़ाज होती हैं। आजकल तो किसी साधारण नागरिक का भी अगर अपमान कर दिया जाये तो वह उसे पूरे समाज का अपमान समझता है। एक क़िस्सा बयान किया जाता है कि हाल ही में किसी शहर के, जिसका नाम हमें याद नहीं है, पुलिस के दरोगा ने शिकायत भेजी, जिसमें उसने बिल्कुल साफ़-साफ़ शब्दों में कहा था कि सरकारी व्यवस्था का सत्यानाश होता जा रहा था और उसका अपना पवित्र नाम बिल्कुल बेकार में लिया जा रहा था। इसके सबूत में उसने अपनी अर्ज़ी के साथ एक मोटी-सी किताब भेजी थी, जो कोई रोमाण्टिक कृति थी, जिसमें हर दस पृष्ठ के बाद पुलिस के किसी दरोगा की चर्चा की गयी थी, जो कभी-कभी तो बिल्कुल ही नशे में चूर होता था। इसलिए, इस तरह की किसी भी बदमज़गी से बचने के लिए सबसे अच्छा यही होगा कि जिस विभाग की हम चर्चा कर रहे हैं उसे हम कोई विभाग ही कहें।

इस तरह, किसी विभाग में कोई अफ़सर काम करता था; उस अफ़सर को किसी भी तरह बहुत उल्लेखनीय नहीं कहा जा सकता; उसका क़द कुछ नाटा था, मुँह पर कुछ-कुछ चेचक के दाग़ थे, बाल कुछ लाल रंग के थे, उसकी नज़र देखने में कुछ कमज़ोर ही थी, उसकी खोपड़ी भी सामने से कुछ गंजी हो चली थी, उसके दोनों गालों पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं और उसके चेहरे का रंग पीला था। ख़ैर, किया भी क्या जा सकता है! यह तो सेण्ट पीटर्सबर्ग की जलवायु का दोष है। जहाँ तक उसके पद का सवाल है (क्योंकि बात यह है कि हमारे यहाँ सबसे पहले पद की ही घोषणा की जानी चाहिए), वह उस जाति के लोगों में से था जिन्हें चिरन्तन टाइटुलर काउंसिलर कहते हैं, जिनका, जैसा कि पाठक को मालूम होगा, उन अनेक लेखकों ने मज़ाक़ उड़ाया है जिनकी कमाल की आदत यह होती है कि वे उन लोगों पर हमला करते हैं जो

पलटकर हमला नहीं कर सकते। इस अफ़सर का कुल–नाम बश्माचकिन था, जिससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि यह नाम बश्माक* से निकला है; लेकिन कब, किस समय और किस तरह बश्माक से यह नाम बनाया गया, यह हम नहीं कह सकते। उसके बाप और दादा दोनों ही, और उसके बहनोई भी, और सच तो यह है कि सभी बश्माचकिन, बूट पहनते थे, उन्हें कभी बदलते नहीं थे और साल में सिर्फ़ तीन बार उनमें नया तला लगवा लेते थे। उसका नाम था अकाकी अकाकियेविच। यह नाम पाठक को कुछ विचित्र और बनावटी लग सकता है, लेकिन हम विश्वास दिला सकते हैं कि यह नाम कहीं से खोजकर नहीं निकाला गया था, और यह कि उसके नामकरण की परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि कोई दूसरा नाम सम्भव ही नहीं था। यह सारा मामला हुआ इस तरह। अकाकी अकाकियेविच का जन्म, अगर हमारी याद हमें धोखा नहीं देती, 22 मार्च को शाम के वक़्त हुआ था। उसकी स्वर्गीया माँ ने, जो ख़ुद एक अफ़सर की पत्नी थीं और बहुत अच्छी औरत थीं, विधिवत बच्चे का नामकरण करने का फ़ैसला किया था। माँ अभी तक दरवाज़े के सामने पलंग पर लेटी हुई थीं, उनके बायीं ओर थे बच्चे के धर्मपिता इवान इवानोविच येरोश्किन, जो बहुत ही अच्छे सज्जन थे और सीनेट में हेडक्लर्क थे, और बच्चे की धर्ममाता अरीना सेम्योनोव्ना बेलोब्र्यूश्कोवा, जो एक पुलिस अफ़सर की पत्नी थीं और बहुत ही अनुपम गुणों की महिला थीं। नयी माँ से तीन नामों में से कोई एक – जो उन्हें सबसे अच्छा लगे – चुन लेने को कहा गया : मोक्की, सोस्सी या शहीद ख़ोज़्दाज़ात के नाम पर बच्चे का नाम रखना। "नहीं," स्वर्गीया ने सोचा, "ये नाम तो कुछ ऐसे–वैसे ही हैं।" उन्हें ख़ुश करने के लिए पत्रा फिर एक नये पृष्ठ पर खोला गया, और एक बार फिर तीन नामों का सुझाव दिया गया : त्रिफ़ीली, दुला और वराख़ासी। "यह तो मुझे कोई दण्ड दिया जा रहा है," वृद्ध महिला बोलीं, "ऐसे–ऐसे नाम, मैंने तो ऐसे नाम पहले कभी सुने ही नहीं। वरादात या वरुख़ भी होता तो कोई बात थी, लेकिन त्रिफ़ीली और वराख़ासी तो..." उन लोगों ने एक और पृष्ठ खोला और उस पर पवसिकाख़ी और वख़्तीसी के नाम सामने आये। "अच्छा, अब मैं समझ गयी," वृद्ध महिला ने कहा, "कि इसमें कुछ तक़दीर का हाथ है। अगर यही बात है, तो इससे बेहतर है कि जो नाम बाप का है वही उसका भी रख दिया जाये। बाप का नाम अकाकी था, इसलिए बेटे का नाम भी अकाकी ही रहने दो।" इस तरह अकाकी अकाकियेविच नाम की उत्पत्ति हुई। बच्चे का नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ; उसके दौरान वह रोने लगा और उसने ऐसा मुँह बनाया जैसे उसे इस बात का पूर्वाभास हो रहा हो कि एक दिन वह टाइटुलर काउंसिलर बनेगा।

* रूसी भाषा में – जूता। – सं.

तो यह है जैसे यह सब कुछ हुआ। हमने यह चर्चा इसलिए उठायी कि पाठक स्वयं समझ ले कि यह केवल आवश्यक था और बच्चे का कोई दूसरा नाम रखा जाना बिल्कुल असम्भव था। कब और किस उम्र में वह उस विभाग में भर्ती हुआ और किसने उसे मदद दी, यह अब कोई नहीं बता सकेगा। डायरेक्टर आये और चले गये, एक के बाद एक कितने ही सुपरिण्टेण्डेण्ट आये, लेकिन वह उसी जगह बना रहा, उसी एक स्थिति में, उसी एक ओहदे पर, उसी एक मामूली नक़लनवीस के रूप में; इसीलिए बाद में सबको विश्वास हो गया कि वह माँ के पेट से इसी हालत में वर्दी पहने और सामने से थोड़ी-थोड़ी गंजी होती हुई खोपड़ी लेकर पैदा हुआ होगा। विभाग में कोई उसकी ज़रा-सी भी इज़्ज़त नहीं करता था। जब वह गुज़रता था तो चपरासी न सिर्फ़ यह कि उठकर खड़े नहीं होते थे, बल्कि वे उसकी ओर देखते तक नहीं थे – कि जैसे वह कोई मक्खी हो जो स्वागत-कक्ष में से उड़ती हुई निकल गयी हो। उससे ऊपर के लोग उसके साथ बड़े रूखेपन और निरंकुशता का व्यवहार करते थे। कोई मामूली असिस्टेण्ट हेडक्लर्क भी उसकी नाक के नीचे काग़ज़ बढ़ा देता था और यह तक कहने की तकलीफ़ नहीं करता था कि "भाई, ज़रा इसे नक़ल कर दो," या "यह बहुत ही बढ़िया, दिलचस्प काम है," या कोई और भली लगने वाली बात जैसा कि शिष्ट प्रतिष्ठानों में आमतौर पर होता है। वह उन्हें ले लेता था और सिर्फ़ काग़ज़ों को देखता था; वह न यह देखता था कि उसे काग़ज़ किसने दिये हैं और न इस बात की ओर ध्यान देता था कि उसे ऐसा करने का अधिकार भी था या नहीं। वह बस काग़ज़ लेकर फ़ौरन उन्हें नक़ल करने लगता था। नौजवान अफ़सर अपनी क्लर्कों वाली अकल की हद तक उसे चिढ़ाते थे और उसका मज़ाक़ उड़ाते थे, उसी के सामने उसके बारे में तरह-तरह के मनगढ़न्त क़िस्से सुनाते थे; उसकी मकान मालकिन के बारे में, जो सत्तर साल से ज़्यादा उम्र की औरत थी, कहते थे कि वह उसे मारती थी और उससे पूछते थे कि उनकी शादी कब होने वाली है; वे काग़ज़ की छोटी-छोटी चिन्दियाँ फाड़कर उसके सिर पर बर्फ़ की तरह बरसाते थे। अकाकी अकाकियेविच इसके जवाब में एक शब्द भी नहीं कहता था जैसे उसके सामने कोई हो ही नहीं; इसका उसके काम पर भी कोई असर नहीं पड़ता था : इन तमाम शरारतों के बीच उसके नक़ल करने में एक भी ग़लती नहीं होती थी। सिर्फ़ जब मज़ाक़ हद से बढ़ जाता था, जब कोई उसकी बाँह पकड़कर झटका देता था, जिसकी वजह से वह अपना काम जारी नहीं रख पाता था, तब वह कहता था, "रहने भी दो, तुम लोग क्यों मेरे पीछे पड़े रहते हो?" और उसके इन शब्दों में और इन्हें कहने के उसके स्वर में कुछ विचित्र भाव होता था। उसमें कोई ऐसी बात होती थी जो करुणा की सीमाओं को छू

लेती थी, जिसका नतीजा यह हुआ कि एक बार नौकरी पर नये-नये लगे हुए किसी नौजवान ने जब दूसरों की देखादेखी उसका मज़ाक़ उड़ाने की कोशिश की तो उसकी यह बात सुनकर वह बीच में ठिठक गया और उसके बाद से अपने चारों ओर की हर चीज़ को दूसरी ही रोशनी में देखने लगा। किसी अप्राकृतिक शक्ति ने उसे अपने उन नये मित्रों से दूर हटा दिया, जिन्हें वह शरीफ़ और सभ्य लोग समझता था। और उसके बाद बहुत अरसे तक जब बहुत हँसी-मज़ाक़ भी होता था तो उसे वह नाटा क्लर्क, उसकी सामने से गंजी होती हुई खोपड़ी और उसके वे चुभते हुए शब्द याद आते थे : "रहने भी दो, तुम लोग क्यों मेरे पीछे पड़े रहते हो?" और इन शब्दों में उसे एक दूसरे ही सन्देश की गूँज सुनायी देती थी : "मैं तुम्हारा भाई हूँ।" ऐसे मौक़ों पर वह बेचारा नौजवान दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लेता था। अपने जीवन में कितनी ही बार वह मनुष्य के प्रति मनुष्य की क्रूरता को देखकर, सुसंस्कृत, सुशिक्षित और सुसभ्य बाहरी चमक-दमक के पीछे छिपे हुए द्वेषपूर्ण फूहड़पन को देखकर काँप उठा था। और, हे भगवान, यह बात उन लोगों में भी पायी जाती थी जिन्हें दुनिया नेक और ईमानदार मानती थी।

आपको कोई दूसरा आदमी शायद ही मिल पाता, जिसके लिए काम इस हद तक जीवन का सुख बन गया हो। केवल इतनी ही बात नहीं थी कि वह बड़ी लगन से नौकरी करता था, बल्कि वह बड़े प्यार से नौकरी करता था। इसमें, इस नक़लनवीसी में, उसे एक दुनिया दिखायी देती थी जो रंगीन थी और आकर्षक थी। उसके चेहरे पर उल्लास का भाव आ जाता था; वर्णमाला के कुछ अक्षरों से उसे विशेष लगाव था और जब भी इनमें से कोई अक्षर उसके सामने आ जाता था तो वह ख़ुशी से फूला न समाता था : वह चहक उठता था और आँख मारता था और तरह-तरह के मुँह बनाता था, जिसकी वजह से उसके क़लम से लिखे जाने वाले हर अक्षर को उसके चेहरे पर पढ़ा जा सकता था। अगर उसे उचित पुरस्कार मिलता तो अपने अपार उत्साह की वजह से उसे स्टेट काउंसिलर बना दिया गया होता – जिस पर उसे स्वयं भी बहुत आश्चर्य होता; लेकिन, जैसा कि उसके चुटकुलेबाज़ साथी कहा करते थे, इस सारे काम के बदले उसे बस यही पुरस्कार मिला था कि सामने एक बिल्ला और पीछे बवासीर। फिर भी यह कहना पूरी तरह सच न होगा कि उसकी ओर कोई ध्यान दिया ही नहीं जाता था। एक डायरेक्टर ने, जो स्वभाव से नेकदिल आदमी था और उसकी लम्बी सेवा के लिए उसे पुरस्कार देना चाहता था, आदेश दिया कि उसे आम नक़लनवीसी के काम के बजाय कोई अधिक महत्त्वपूर्ण काम दिया जाये; अर्थात, उसे किसी दूसरे दफ़्तर के लिए एक ऐसे मामले की रिपोर्ट तैयार करने का काम सौंपा गया जिसकी कार्रवाई पूरी हो चुकी थी; इसमें करना बस

इतना था कि शीर्षक बदल दिया जाये और इक्का-दुक्का क्रियाओं को प्रथम पुरुष से अन्य पुरुष में बदल दिया जाये। यह उसके लिए इतना कठिन काम था कि उसके पसीना छूटने लगा, उसने अपना माथा पोंछकर अन्त में कहा, "नहीं, मुझे नक़ल करने का ही कोई काम दे दीजिये।" उसके बाद से उसे सीधा-सादा नक़लनवीस ही रहने दिया गया। लगता था कि इस नक़लनवीसी के बाहर उसके लिए कोई दुनिया थी ही नहीं। वह अपने कपड़ों की ओर कोई ध्यान नहीं देता था : उसकी वर्दी अब हरे रंग की नहीं रह गयी थी, बल्कि कुछ चितकबरे ख़ाकी रंग की हो गयी थी। उसका कॉलर बहुत नीचा और पतला था जिसकी वजह से उसकी गर्दन बहुत लम्बी न होने पर भी बाहर को निकलकर ज़रूरत से ज़्यादा लम्बी दिखायी देती थी, हिलते हुए सिरों वाले पेरिस-प्लास्टर के बने उन बिल्ली के बच्चों की गर्दन की तरह जिन्हें फेरी वाले दर्जनों की संख्या में टोकरियों में भरकर अपने सिर पर लादे घूमते थे। और उसकी वर्दी पर हमेशा कोई न कोई चीज़ चिपकी रहती थी : कोई तिनका या धागे का कोई टुकड़ा; इसके अलावा उसे इसमें विशेष निपुणता प्राप्त थी कि सड़क पर चलते हुए वह खिड़कियों के नीचे से होकर उस समय गुज़रता था जब उनमें से कूड़ा-करकट बाहर फेंका जा रहा होता था, और इस तरह वह अपनी हैट पर हमेशा छीलन के टुकड़े और ख़रबूज़े के छिलके और इसी तरह का दूसरा कचरा लेकर चलता था। अपने जीवन में एक बार भी उसने सड़क पर रोज़मर्रा होने वाली घटनाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था जिन्हें, जैसा कि सभी जानते हैं, उसकी तरह नौकरी करने वाला कोई भी दूसरा नौजवान हमेशा बड़े ध्यान से देखता है जो अपनी फ़ुर्तीली नज़र को इतना पैना कर लेता है कि वह यह भी देख ले कि सड़क की दूसरी पटरी पर चलने वाले किस आदमी के पतलून का तलुवे में अटकाने का फ़ीता ढीला हो गया है - इस बात से उसके चेहरे पर हमेशा एक चुलबुली मुस्कुराहट दौड़ जाती थी।

लेकिन अकाकी अकाकियेविच जब किसी चीज़ को देखता भी था तो उसे उसकी जगह अपनी सुन्दर लिखाई में अंकित सिजल रेखाएँ ही दिखायी देती थीं, और सिर्फ़ जब कोई गुज़रता हुआ घोड़ा अपनी थूथनी उसके कन्धे पर रखकर अपने नथुनों से फुफकारकर उसके गालों पर साँस छोड़ता था तब उसे यह ध्यान में आता था कि वह किसी पंक्ति को नक़ल करने के बीच में नहीं बल्कि सड़क के बीच में है। घर पहुँचकर वह फ़ौरन मेज़ पर बैठ जाता था, खाने के स्वाद की परवाह किये बिना मक्खियों समेत और भगवान की दया से जो कुछ भी और उस वक़्त मिल जाये उसके साथ एक साँस में अपना सूप पी जाता था और मांस का एक टुकड़ा प्याज़ के साथ खा लेता था। जब वह महसूस करता कि उसका पेट भरने लगा है तो वह मेज़ पर से उठ जाता, और

दवात लेकर दफ़्तर से लाये हुए काग़ज़ नक़ल करने बैठ जाता। अगर इस तरह का कोई काग़ज़ न होता तो वह बस जी बहलाने के लिए अपनी तरफ़ से कोई चीज़ नक़ल करने लगता, ख़ास तौर पर अगर वह दस्तावेज़ उल्लेखनीय होता – अपनी शैली की वजह से नहीं, बल्कि इसलिए कि वह जिसे सम्बोधित करके लिखा गया था वह कोई अनोखा या महत्त्वपूर्ण आदमी था।

उस समय भी जब सेण्ट पीटर्सबर्ग के धुँधले भूरे आसमान पर बिल्कुल अँधेरा छा जाता है और अफ़सरों की पूरी नस्ल अपने-अपने ढंग से और अपनी-अपनी हैसियत और खाने-पीने के मामले में अपनी पसन्द के हिसाब से छककर खा चुकती है, जब दफ़्तरों में काम करने वाले सभी लोग अपनी रोज़-रोज़ की क़लम-घिसाई से, ख़ुद अपने और दूसरे विभागों की आवश्यक हलचल और झँझटों से, और बेचैन तबीयत वाले अपनी मर्ज़ी से जो फ़ालतू और ग़ैर-ज़रूरी काम अपने ज़िम्मे ले लेते हैं उससे छुटकारा पाकर आराम कर चुके होते हैं, जब अफ़सर लोग अपना बचा-खुचा फ़ुरसत का वक़्त अधिक आनन्ददायक कामों में बिताने की जल्दी में होते हैं : जो ज़्यादा तेज़ होते हैं वे हड़बड़ाकर थियेटर की ओर भागते हैं; कुछ सड़क पर टहलते हुए औरतों की हैटों के नीचे झाँकने में समय बिताते हैं; कुछ पार्टियों में जाते हैं – अफ़सरों के छोटे-से झुरमुट में सितारे जैसी चमकती हुई किसी परी की प्रशंसा करने में पूरी शाम बिता देते हैं; कुछ – और यह सबसे ज़्यादा होता है – बस अपने जैसे किसी अफ़सर के यहाँ तीसरी या चौथी मंज़िल वाले फ़्लैट में जाकर, जहाँ उसके पास दो कमरे और एक ड्योढ़ी या रसोई होती है जिसमें वह कई रातों के खाने की क़ुर्बानी देकर या कई शामों की तफ़रीह हराम करके हासिल की गयी कुछ फ़ैशनेबुल दिखाऊ चीज़ें, कोई लैम्प या कोई और छोटी-मोटी चीज़ें, सजाकर सामने रखता है; दूसरे शब्दों में, जब सारे अफ़सर स्टार्म ह्विस्ट खेलने के लिए अपने दोस्तों के छोटे फ़्लैटों में बिखर जाते थे, वहाँ गिलासों से चाय की चुस्कियाँ लेते थे और सस्ती क़िस्म के कुरकुरे बिस्कुट खाते थे, अपने लम्बे-लम्बे पाइपों से धुआँ उड़ाते थे और ताश बाँटने के दौरान ऊँचे समाज के लोगों के बारे में कोई सुना-सुनाया चटपटा क़िस्सा एक-दूसरे को सुनाते थे, जिसके बिना कोई भी रूसी किसी भी समय और किसी भी हालत में रह नहीं सकता, या बातचीत करने के लिए कोई भी विषय न बच जाने पर उस कमाण्डेण्ट का युगों पुराना घिसा-पिटा क़िस्सा भी सुनाने से नहीं चूकते थे, जिसे यह बताया गया था कि फ़ाल्कोने के बनाये हुए स्मारक* में घोड़े की दुम कुछ काट दी गयी है – कहने का मतलब यह कि उस वक़्त भी जब बाक़ी

---

* पीटर्सबर्ग में ए.म. फ़ाल्कोने (1716–1791) द्वारा बनाया गया घोड़े पर बैठे पीटर प्रथम का स्मारक। – सं.

दुनिया मनोरंजन के फेर में होती थी, अकाकी अकाकियेविच कभी किसी ऐसी हल्की–फुल्की हरकत में हिस्सा नहीं लेता था। यह कहना सम्भव नहीं था कि कभी किसी ने उसे किसी पार्टी में देखा था। नक़लनवीसी के आनन्द से थक जाने के बाद वह बिस्तर पर लेट जाता था, और आने वाले कल के बारे में सोच–सोचकर मुस्कुराता रहता था, इस बात के बारे में कि भगवान उसे नक़ल करने के लिए कल क्या भेजेगा। ऐसा था उस आदमी का शान्तिपूर्ण जीवन, जो चार सौ रूबल के वेतन में अपनी नियति से सन्तुष्ट रहता था, और शायद बुढ़ापे तक ऐसे ही चलता रहता, अगर कुछ ऐसी विनाशकारी घटनाएँ न हो जातीं, जो न केवल टाइटुलर काउंसिलरों के भाग्य में, बल्कि प्रिवी, स्टेट, ऑलिक और दूसरे काउंसिलरों तथा उन सभी सलाहकारों तक के भाग्य में भी लिखी होती हैं जो न किसी तरह की सलाह देते हैं और न किसी तरह की सलाह स्वयं लेते हैं।

जिन लोगों को चार सौ रूबल या इसके लगभग वेतन मिलता है उनका सेण्ट पीटर्सबर्ग में एक भयानक दुश्मन होता है। यह दुश्मन कोई और नहीं बल्कि हमारा उत्तर का पाला होता है, हालाँकि लोगों को यह कहते भी सुना जाता है कि यह स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है। सवेरे आठ बजे, ठीक उस घड़ी जब भागमभाग अपने विभागों की ओर जाते हुए क्लर्कों से सड़कें भरी होती हैं, वह सबकी नाकों पर ऐसे ज़ोरदार और डंक की तरह बेधने वाले थपेड़े मारता है कि मुसीबत के मारे क्लर्क उन्हें छिपाने का कोई रास्ता खोजने लगते हैं। ऐसे मौक़ों पर जब ऊँचे पदों वाले लोग भी महसूस करते हैं कि उनके माथे की खाल सर्दी से कसती जा रही है और उनकी आँखों में आँसू उमड़े आ रहे हैं, बेचारे टाइटुलर काउंसिलर तो बिल्कुल लाचार हो जाते हैं। उनके सामने ज़िन्दा बचने का बस यही रास्ता होता है कि वे अपने पतले, तार–तार ओवरकोट पहने सरपट भागते हुए चार–पाँच सड़कें पार करके लॉबी तक पहुँच जायें, जहाँ वे तब तक अपने पाँव पटकते रहें जब तक कि उनकी सारी जमी हुई प्रतिभाएँ और क्लर्कों वाली योग्यताएँ पिघल न जायें। एक वक़्त ऐसा आया जब अकाकी अकाकियेविच को आवश्यक दूरी जल्दी से भागकर पार कर जाने की कोशिश के बावजूद अपनी पीठ और कन्धों पर सर्दी की तेज़ चुभन ख़ास तौर पर महसूस होने लगी। आख़िरकार वह सोचने लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि उसके ओवरकोट में कोई ख़राबियाँ हों। घर पर उसे अच्छी तरह उलट–पलट कर देखने के बाद उसे पता चला कि दो–तीन जगहों पर, यानी पीठ पर और कन्धों पर, वह घिसकर बिल्कुल टाट जैसा पतला हो गया है और बिल्कुल पारदर्शी हो गया है, जबकि उसके नीचे अस्तर फटकर बिल्कुल धज्जी–धज्जी हो गया है।

पाठक के लिए यह जानना भी ज़रूरी है कि अकाकी अकाकियेविच का कोट उसके साथ के क्लर्कों के मज़ाक़ का भी निशाना था; उन्होंने उससे उसका ओवरकोट का नाम भी छीन लिया था और वे उसे लबादा कहने लगे थे। सच बात तो यह है कि वह देखने में लगता भी कुछ अजीब था : उसका कॉलर हर साल कुछ छोटा होता जाता था क्योंकि उसका कुछ हिस्सा कोट की नयी गोट बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। मरम्मत के ये नमूने दर्ज़ी की कला के लिए कोई श्रेय की बात नहीं थे और ओवरकोट में बहुत झोल पड़े रहते थे जो अच्छा नहीं लगता था। इस तरह समस्या की जड़ का पता लगा लेने के बाद अकाकी अकाकियेविच ने फ़ैसला किया कि ओवरकोट पेत्रोविच दर्ज़ी के पास ले जाना होगा, जो पीछे वाली सीढ़ी से जाकर कहीं चौथी मंज़िल पर रहता था, और जो काना और चेचकरू होने के बावजूद अफ़सरों और दूसरे ग्राहकों के पतलूनों और उनके दोपाखे कोटों की मरम्मत करने में काफ़ी सफल था, लेकिन तभी जब वह नशे में नहीं होता था और उसका ध्यान भटकता नहीं होता था। हमारे लिए सचमुच इस दर्ज़ी के बारे में बहुत कुछ कहने की ज़रूरत तो नहीं है, लेकिन अब चूँकि यह चलन हो गया है कि कहानियों में हर पात्र के चरित्र का पूरा ब्योरा दिया जाये, इसलिए पेत्रोविच को भी ग़ौर से देखने के अलावा कोई चारा नहीं है।

शुरू में वह सिर्फ़ ग्रिगोरी कहलाता था और किसी ज़मींदार का भू-दास था; जब वह वहाँ से मुक्त हुआ तो लोग उसे उसके पैतृक नाम पेत्रोविच से पुकारने लगे थे और तभी से वह सन्तों की याद में मनाये जाने वाले दिवसों को ज़रा ज़्यादा ही पीने लगा था, पहले तो सिर्फ़ बड़े-बड़े त्योहारों को, फिर बिना किसी भेदभाव के हर उस दिन जिस पर कैलेण्डर में क्रास लगा होता था। इस मामले में वह अपने पूर्वजों की परम्पराओं पर चलता था और अपनी बीवी से झगड़े के समय उसे विधर्मी औरत और जर्मन कहता था। और चूँकि अब हम उसकी बीवी को भी बीच में घसीट लाये हैं इसलिए हमें उसके बारे में भी कुछ शब्द कहने होंगे; दुर्भाग्यवश उसके बारे में कुछ ज़्यादा नहीं मालूम है। बस इतना मालूम है कि पेत्रोविच की एक बीवी थी, जो सिर पर रूमाल बाँधने के बजाय लैस की टोपी भी पहनती थी; लेकिन ऐसा लगता है कि वह बहुत रूपवती होने का गर्व नहीं कर सकती थी; बहरहाल, जो मर्द उसके पास से होकर गुज़रते थे उनमें से बस गारद के सिपाही ही उसकी टोपी के कगर के नीचे झाँककर देखते थे, और अपनी मूँछें ऐंठकर एक अजीब-सी आवाज़ निकालते थे।

जब वह पेत्रोविच के फ़्लैट को जाने वाली सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, वे सीढ़ियाँ, जो बिल्कुल सच-सच कहा जाये, तो पूरी तरह गन्दे पानी और जूठन

से लिसी हुई थीं और हर क़दम पर उनसे वह तीखी दुर्गन्ध आती थी जिससे आँखों में बहुत जलन होती है, और जो, जैसा कि पाठक को मालूम होगा, सेण्ट पीटर्सबर्ग की सभी पीछे वाली सीढ़ियों का एक अनिवार्य लक्षण होती है – उन सीढ़ियों पर चढ़ते समय ही अकाकी अकाकियेविच ने यह अटकल लगाना शुरू कर दिया था कि पेत्रोविच कितना माँगेगा और उसने मन ही मन फ़ैसला कर लिया था कि वह दो रूबल से ज़्यादा नहीं देगा। दरवाज़ा खुला हुआ था, क्योंकि दर्ज़ी की बीवी ने मछली पकाने के सिलसिले में रसोई में इतना धुआँ पैदा कर दिया था कि काक्रोच भी दिखायी नहीं देते थे। अकाकी अकाकियेविच ने दर्ज़ी की बीवी तक की नज़रों से बचकर रसोई पार की और आख़िरकार कमरे में पहुँच गया जहाँ उसने पेत्रोविच को लकड़ी की एक चौड़ी-सी मेज़ पर, जिस पर रंग-रोग़न नहीं था, घुटने मोड़े तुर्की पाशा की तरह बैठे देखा। वह नंगे पाँव था, जैसा कि दर्ज़ी काम करते वक़्त आमतौर पर होते हैं। पाँवों में सबसे पहले अकाकी अकाकियेविच की नज़र उसके अँगूठे पर पड़ी, जिससे वह भली भाँति परिचित था, जिसका टेढ़ा-मेढ़ा नाख़ून कछुए की खपड़ी जैसा मोटा और कड़ा था। पेत्रोविच ने अपनी गर्दन में रेशमी और सूती धागे की एक-एक लच्छी डाल रखी थी और उसके घुटने पर कपड़े की कुछ कतरनें चिपकी थीं। पिछले तीन मिनट से वह सुई में धागा पिरोने का असफल प्रयत्न कर रहा था और इसलिए वह कमरे के अँधेरे से और उस धागे से बेहद नाराज़ था, और बुदबुदा रहा था, "अरे कमबख़्त, चला भी जा! पागल बना रखा है, बदमाश ने!" अकाकी अकाकियेविच के लिए यह परेशानी की बात थी कि वह ऐसे वक़्त आया था जब पेत्रोविच नाराज़ था : वह पेत्रोविच से कोई काम करने को उस वक़्त कहना ज़्यादा पसन्द करता था जब वह कुछ तरंग में हो, या जैसा कि उसकी बीवी कहा करती थी, जब वह "बोतल चढ़ाये हुए नशे में धुत्त हो, वह काना शैतान।" इस हालत में पेत्रोविच हमेशा अपने ग्राहकों की बात मानकर सिलाई में काफ़ी आसानी से रिआयत कर देता था, और बहुत झुक-झुककर और साथ ही आभार मानते हुए अपनी स्वीकृति प्रकट करता था। यह भी सच है कि बाद में उसकी बीवी शिकायत करती हुई आती थी कि उसका शौहर नशे में था और इसीलिए वह बहुत सस्ते में काम कर देने को राजी हो गया था; लेकिन आमतौर पर उसमें दस कोपेक और बढ़ाने पड़ते थे और सौदा पट जाता था। लेकिन इस वक़्त पेत्रोविच काफ़ी संजीदा दिखायी दे रहा था, और इसलिए कुछ रूखा और अड़ियल भी लग रहा था और इस बात का ख़तरा था कि वह बेहद ज़्यादा पैसे माँगे। अकाकी अकाकियेविच ने जल्दी से परिस्थिति का लेखा-जोखा किया और उसका जी तो यही चाह रहा था कि उल्टे पाँव वहाँ से वापस चला जाये लेकिन इसके लिए बहुत देर हो चुकी थी। पेत्रोविच ने अपनी अकेली आँख

उस पर जमाकर उसे घूरा और अकाकी अकाकियेविच अपने आप ही बोला –

"सलाम, पेत्रोविच!"

"सलाम, साहब!" पेत्रोविच ने जवाब में कहा और अकाकी अकाकियेविच के हाथ पर नज़र गड़ाकर देखने लगा कि उसके लिए किस तरह का लूट का माल लाया गया है।

"मैं... मैं... बस इसलिए आया था, पेत्रोविच, कि यह..."

बात तो यह है कि अकाकी अकाकियेविच अपने विचारों को ज़्यादातर परसर्गों, क्रिया-विशेषणों और भाँति-भाँति के निपातों के माध्यम से व्यक्त कर रहा था जिनका एकदम कोई अर्थ नहीं होता। अगर हालत ख़ास तौर पर अटपटी हो जाती तो वह अपने वाक्य भी पूरे नहीं करता था और अक्सर कुछ इस तरह की बात शुरू करके : "हाँ तो, बात यह है... कि दरअसल..." वह बाक़ी बात कहना गोल कर जाता और अन्त में सब कुछ भूल जाता, यह समझ बैठकर कि जो कुछ उसे कहना था वह उसने कह दिया है।

"क्या, है क्या?" पेत्रोविच ने अपनी अकेली आँख से उसकी वर्दी को बड़े ग़ौर से देखते हुए पूछा; उसने शुरुआत कॉलर से की, फिर आस्तीन, पीठ, दामन और काजों पर आया; हर चीज़ अच्छी तरह उसकी जानी-पहचानी थी, क्योंकि यह सब कुछ उसी का किया हुआ तो था।

दर्ज़ियों का यही दस्तूर होता है, और किसी ग्राहक का सामना होने पर सबसे पहले वे यही करते हैं।

"हाँ तो, बात यह है, पेत्रोविच... मेरा यह कोट, इसका कपड़ा... तुम जानो, बाक़ी हर जगह से तो यह काफ़ी मज़बूत है, इस पर ज़रा गर्द जम गयी है और यह कुछ पुराना-सा लगने लगा है, लेकिन दरअसल यह है नया, बस, यहाँ एक जगह पर यह कुछ... यहाँ पीठ पर, और एक कन्धे पर भी यह कुछ घिस गया है, और यहाँ, इस कन्धे पर भी थोड़ा सा... यहाँ देखो, बस इतना ही। काम ज़्यादा बिल्कुल नहीं..."

पेत्रोविच ने लबादा ले लिया, पहले उसे मेज़ पर फैलाया, उसे बड़े ग़ौर से देखता रहा, अपना सिर हिलाया और खिड़की की ओर नसवार की गोल डिबिया उठाने के लिए हाथ बढ़ाया जिस पर किसी जनरल की तस्वीर बनी थी, यह तो ठीक से नहीं मालूम कि किस जनरल की, क्योंकि जहाँ पर उसका मुँह बना था वहाँ उँगली घुसेड़कर छेद कर दिया गया था और उस छेद को काग़ज़ का एक चौकोर टुकड़ा चिपकाकर बन्द कर दिया गया था। एक चुटकी नसवार चढ़ाने के बाद पेत्रोविच ने कोट को अपने हाथों पर फैलाया और उसे रोशनी के सामने करके देखा। एक बार फिर उसने अपना सिर हिलाया। इसके बाद उसने उसका अस्तर ध्यान से देखा और फिर अपना सिर हिलाया, फिर

जनरल वाली डिबिया का ढक्कन खोला जिसके मुँह पर काग़ज़ चिपका हुआ था और एक चुटकी नसवार अपने नथुने में चढ़ाकर ढक्कन बन्द किया, डिबिया वापस रख दी और आख़िर में बोला –

"नहीं, यह ठीक नहीं हो सकता : यह तो बिल्कुल घिस गया है!"

ये शब्द सुनते ही अकाकी अकाकियेविच का दिल बैठ गया।

"लेकिन क्यों नहीं हो सकता, पेत्रोविच?" उसने बिल्कुल बच्चों की-सी आवाज़ में गिड़गिड़ाकर कहा। "मेरा मतलब है कि यह तो बस कन्धों पर थोड़ा घिस गया है, और तुम्हारे पास कपड़े के किसी तरह के टुकड़े तो होंगे ही..."

"मेरे पास कपड़े के टुकड़े तो हैं, उनकी कोई कमी नहीं है," पेत्रोविच ने कहा। "लेकिन मैं उन्हें इसके ऊपर टाँक नहीं सकता – यह तो बिल्कुल गल गया है, सुई लगाते ही बस तार-तार हो जायेगा।"

"जब तार-तार हो जाये तो उसी वक़्त ऊपर से सीधे पैबन्द लगा देना।"

"लेकिन कुछ हो भी तो जिस पर पैबन्द लगाया जाये, कुछ है ही नहीं जिस पर पैबन्द टिक सके; पहन-पहनकर बिल्कुल झीना तो कर दिया है। अब तो इसे कपड़ा भी मुश्किल से ही कहा जा सकता है : इसे तेज़ हवा में लेकर चलो तो टुकड़े-टुकड़े होकर झड़ जायेगा।"

"मगर किसी तरह टाँक दो। यह कैसे हो सकता है, कि सचमुच... एक तरह से!"

"नहीं," पेत्रोविच ने अन्तिम निर्णय के स्वर में कहा। "अब इसका कुछ हो ही नहीं सकता। इसके दिन पूरे हो चुके। बेहतर यह होगा कि जब कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगे तब इसे काटकर पाँव पर लपेटने की पट्टियाँ बना लीजियेगा, क्योंकि मोज़ों से पाँव गरम नहीं रहते हैं। इनकी ईजाद तो जर्मनों ने लोगों से पैसा ऐंठने के लिए की थी," (पेत्रोविच जर्मनों पर चोट करने का कोई मौक़ा नहीं चूकता था); "और लगता तो यही है कि आपको नया कोट बनवाना पड़ेगा।"

"नया" शब्द सुनते ही अकाकी अकाकियेविच को चक्कर आ गया और कमरे की सारी चीज़ें उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। बस एक चीज़ जो उसे थोड़ी बहुत साफ़ दिखायी दे रही थी वह थी पेत्रोविच की नसवार की डिबिया पर बनी हुई जनरल की तस्वीर जिसके चेहरे पर काग़ज़ चिपका हुआ था।

"नया बनवाने से क्या मतलब तुम्हारा?" उसने इस तरह पूछा जैसे पूरी तरह होश में न हो, "मेरे पास तो उसके लिए पैसा नहीं है।"

"हाँ, नया," पेत्रोविच ने असह्य भावशून्यता से कहा।

"अच्छा, अगर मुझे नया सिलवाना ही पड़े, तो उसमें एक तरह से कितना, तुम जानो..."

"आपका मतलब है, कितना पैसा लगेगा?"

"हाँ।"

"मैं समझता हूँ डेढ़ सौ से ऊपर तो लग ही जाना चाहिए," पेत्रोविच ने बड़े अर्थपूर्ण ढंग से अपने होंठों को भींचकर कहा।

उसे बात में घातक प्रभाव पैदा करने का बेहद शौक़ था, उसे ऐसी बात कहना बहुत अच्छा लगता था कि सुनकर आदमी स्तब्ध रह जाये और तब वह कनखियों से उसके चेहरे पर अपने शब्दों का करिश्मा देखे।

"एक कोट के डेढ़ सौ रूबल!" बेचारे अकाकी अकाकियेविच ने तड़पकर कहा; अपने जीवन में शायद पहली बार वह ऊँची आवाज़ में बोला था, क्योंकि वह स्वभाव से ही बेहद नरमी से बोलने वाला आदमी था।

"जी हाँ," पेत्रोविच बोला, "कोट में तो इससे भी बहुत ज़्यादा लग सकता है। उसमें चितराले का समूर और रेशमी अस्तर वाला कनटोप लगवा लीजिये तो क़ीमत दो सौ के पार पहुँच जायेगी।"

"बस-बस, पेत्रोविच," अकाकी अकाकियेविच ने गिड़गिड़ाकर कहा और अपने कान पेत्रोविच के शब्दों और उनके तमाम प्रभावों की ओर से बन्द कर लिये। "किसी न किसी तरह इसी को ठीक कर दो, कर दोगे न, ताकि कम से कम कुछ दिन तो और चल जाये।"

"क्या फ़ायदा : इसमें मेहनत भी बेकार जायेगी और पैसा भी," पेत्रोविच ने कहा, और उसकी यह बात सुनकर अकाकी अकाकियेविच वहाँ से चला आया; उसका दिल टूट गया था।

अपने ग्राहक के चले जाने के बाद पेत्रोविच बड़ी देर तक निश्चल खड़ा रहा, उसने अपने होंठों को बड़े अर्थपूर्ण ढंग से भींचा और अपने काम को बड़ी देर तक हाथ नहीं लगाया; वह इस बात पर बेहद ख़ुश था कि उसने न अपने साथ विश्वासघात किया था और न दर्ज़ी की कला के साथ।

बाहर सड़क पर निकलकर अकाकी अकाकियेविच को ऐसा महसूस हुआ जैसे वह सो रहा हो।

"तो, यह बात है," उसने मन ही मन कहा, "और ज़्यादा सोचने की बात है कि उसकी यह शक्ल निकले।" फिर कुछ देर चुप रहने के बाद उसने जोड़ा, "ख़ैर, ऐसा ही सही! आख़िरकार यह शक्ल निकली और मैं अनुमान भी लगा नहीं सकता था कि ऐसा हो सकता है..." इसके बाद फिर चुप हो गया, बड़ी देर तक चुप रहा, और फिर बोला, "देखो तो! भला यह कौन... कैसा... एक तरह से... मतलब है... तक़दीर का फेर है!"

यह कहकर वह घर की ओर नहीं लौटा बल्कि, ख़ुद यह जाने बिना कि वह क्या कर रहा है, बिल्कुल ही दूसरी दिशा में चल पड़ा। रास्ते में एक

मैला-कुचैला चिमनी साफ़ करने वाला उससे टकरा गया और उसका कन्धा बिल्कुल काला कर गया; एक अधबनी इमारत की सबसे ऊपर वाली मंज़िल से उस पर टोकरी भरकर चूना फेंक दिया गया। वह इन सब बातों से बेख़बर था, और जब वह एक सन्तरी से जा टकराया, जिसने चुनौटी में से थोड़ी-सी नसवार अपनी खुरदुरी हथेली पर निकालने के लिए अपना फरसा पास ही रख दिया था, तब जाकर उसे कुछ होश आया और सो भी इसलिए कि सन्तरी ने उससे कहा, "कुछ होश है किधर जाने का है, चलने को और ठिकाना कोई नहीं होता? पटरी पर जाओ!" इस पर उसने चारों ओर नज़र डालकर देखा और घर की ओर लौट पड़ा। घर पहुँचकर वह अपने बिखरे हुए विचारों को समेटने लगा और उसने अपनी हालत को सही तरीक़े से देखा; वह अपने आपसे उखड़े-उखड़े ढंग से बिल्कुल झटकों के साथ नहीं, बल्कि बड़े सुलझे हुए ढंग से खुलकर बात कर रहा था, जैसे किसी ऐसे समझदार दोस्त से बातें कर रहा हो जिससे आदमी सबसे अन्तरंग और नाज़ुक से नाज़ुक मामलों के बारे में चर्चा कर सकता है।

"नहीं, नहीं," अकाकी अकाकियेविच ने कहा। "इस वक़्त पेत्रोविच से बात करने से कोई फ़ायदा नहीं है : वह एक तरह से... उसकी बीवी ने उसे धप जमायी होगी। अच्छा यही होगा कि मैं इतवार को सुबह उसके पास जाऊँ : बीते सनीचर के बाद जब वह अपनी आँख भेंगी करके देख रहा होगा, जब वह ऊँघ रहा होगा और उसे अपने हवास ठीक करने के लिए एक घूँट चढ़ाने की ज़रूरत होगी, लेकिन उसकी बीवी उसे एक दमड़ी भी न दे रही होगी, और तब मैं उसे दस कोपेक... एक तरह से... और वह मेरी बात ज़्यादा आसानी से मान लेगा और कोट एक तरह से..."

इस दलील का सहारा लेकर अकाकी अकाकियेविच ने अपना हौसला बढ़ाया और अगले इतवार तक इन्तज़ार करता रहा; जब उसने दूर से देख लिया कि पेत्रोविच की बीवी किसी काम से बाहर निकल गयी है वह फ़ौरन पेत्रोविच के पास जा पहुँचा। सनीचर के बाद पेत्रोविच सचमुच भेंगी आँख से देख रहा था, उसका सिर नीचे को लटका हुआ था और आँखें नींद से बोझिल थीं, लेकिन जैसे ही उसकी समझ में आया कि अकाकी अकाकियेविच क्या बात कर रहा है वह हत्थे से उखड़ गया।

"नहीं," वह बोला, "कोट तो नया ही लेना पड़ेगा।"

इस पर अकाकी अकाकियेविच ने दस कोपेक का एक सिक्का उसके हाथ में सरका दिया।

"बहुत शुक्रिया, मेहरबान, मैं ज़रा ताज़ादम हो लूँ और आपकी सेहत का जाम पी लूँ," पेत्रोविच बोला, "लेकिन कोट की कोई फ़िक्र न कीजिये, पुराना

किसी काम का नहीं रहा, मैं नया बढ़िया कोट बना दूँगा, विश्वास कीजिये।"

अकाकी अकाकियेविच ने मरम्मत का सवाल छेड़ने की कोशिश की लेकिन पेत्रोविच उसकी बात सुन नहीं पाया और बोला –

"मैं आपको बेशक नया बना दूँगा, आप पूरा भरोसा रखिये, मैं अपनी तरफ़ से सचमुच पूरी कोशिश करूँगा। हम उसे बिल्कुल नये फ़ैशन का भी बना सकते हैं : कॉलर बन्द करने के लिए चाँदी की कँटियाँ भी लगा सकते हैं।"

अब अकाकी अकाकियेविच की समझ में आ गया कि कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं – उसे नया कोट ही बनवाना पड़ेगा। वह बिल्कुल निराश हो गया। वह उसके पैसे कहाँ से जुटायेगा – पैसा आयेगा कहाँ से? अलबत्ता, कुछ पैसे का सहारा तो त्योहार के बोनस से हो सकता था जो उसे मिलने वाला था, लेकिन उस पैसे का तो हिसाब पहले ही लगा लिया गया था और वह दूसरे कामों के लिए रख दिया गया था। उसे नये पतलून की ज़रूरत थी, और जूते वाले को बूट में ऊपरी हिस्सा लगाने का बहुत पुराना बिल चुकाना था, दर्ज़िन से तीन नयी क़मीज़ें और नीचे पहनने के लिए कोई दो चीज़ें सिलवानी थीं, जिनका छपाई में उल्लेख करना भी अभद्रता समझी जाती है। दूसरे शब्दों में, उस पैसे में से तो कुछ भी नहीं बचेगा, और अगर डायरेक्टर ने उदारता के जोश में आकर उसे चालीस रूबल के बजाय पैंतालीस या पचास रूबल दे दिये तब भी उसके पास बहुत ही छोटी-सी रक़म बचेगी, जो ओवरकोट की क़ीमत के समुद्र में केवल एक बूँद के बराबर होगी। हालाँकि वह जानता था कि पेत्रोविच की आदत थी कि वह भगवान जाने कितनी ऊँची क़ीमत बता देता था। कभी-कभी तो इतनी ऊँची कि उसकी बीवी भी आपे से बाहर होकर कहती थी, "क्या, तुम्हारी मत तो नहीं मारी गयी है, दीवाने कहीं के! कभी तो फोकट में ही काम कर दोगे, और अब तुम्हारे जी में न जाने क्या पागलपन समाया है कि इतने दाम माँग रहे हो जितने में कोई ख़ुद तुम्हें भी नहीं ख़रीदेगा!" यह तो वह जानता था कि पेत्रोविच अस्सी रूबल में भी ओवरकोट बनाने को राजी हो जायेगा, लेकिन वे अस्सी रूबल भी वह कहाँ से लायेगा? उसकी आधी रक़म तो शायद वह जुटा भी लेता; मुमकिन है उससे कुछ ज़्यादा भी जुटा ले; लेकिन बाक़ी आधी रक़म कहाँ से आयेगी?... पर पहले तो पाठक को यह समझ लेना चाहिए कि आधी रक़म कहाँ से आने वाली थी। अकाकी अकाकियेविच की आदत थी कि हर रूबल जो वह ख़र्च करता था उसमें से वह एक कोपेक बचा लेता था और उसे एक छोटी-सी बन्द सन्दूक़ची में जमा करता जाता था, जिसमें ऊपर सिक्के डालने के लिए एक झरी कटी हुई थी। हर छह महीने बाद वह जमा किये हुए ताँबे के सिक्के गिनता था और उन्हें निकालकर उनकी जगह उतनी ही रक़म के चाँदी के सिक्के डाल देता था। उसने यह सिलसिला कई साल से

अपना रखा था, और अब तक चालीस रूबल से ज़्यादा की रक़म वह जमा कर चुका था। इस तरह आधी रक़म तो उसके हाथ में थी, लेकिन बाक़ी आधी रक़म वह कहाँ से लाये? चालीस रूबल और कहाँ से आयें? अकाकी अकाकियेविच ने अपने दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डाला और फ़ैसला किया कि उसे कम से कम पूरे एक साल के लिए अपना रोज़मर्रा का ख़र्च कम करना होगा : शाम को जो एक प्याली चाय वह पीता था उसे बन्द कर देगा, रात को मोमबत्ती नहीं जलायेगा और अगर कोई काम करने को हुआ करेगा तो मकान मालकिन के कमरे में चला जाये करेगा और उसकी मोमबत्ती की रोशनी में काम कर लिया करेगा। चलते वक़्त सड़क के पत्थरों और रोड़ियों पर ज़्यादा हौले से और सावधानी से क़दम रखा करेगा, लगभग बिल्कुल पंजों के बल चला करेगा, ताकि जूते का तला कम घिसे; जहाँ तक मुमकिन होगा वह अपने कपड़े कम से कम धुलवाया करेगा, और उन्हें घिसने से बचाने के लिए घर पहुँचते ही उन्हें उतार दिया करेगा और अपना सस्ता सूती ड्रेसिंग गाउन पहन लिया करेगा, जो बेहद पुराना हो गया था लेकिन काल के क्रूर हाथों से बच गया था। सच पूछिये तो शुरू में उसे इन पाबन्दियों की आदत डालने में कुछ कठिनाई ज़रूर हुई, लेकिन धीरे-धीरे वह उनका आदी हो गया और सहज ही वे उसकी दिनचर्या का हिस्सा बन गयीं; वह शाम को बिना खाये ही रह जाने का बिल्कुल आदी हो गया; लेकिन अपने नये कोट के सपनों से उसे आत्मिक पोषण तो मिलता ही रहता था। इसके बाद से उसका समूचा अस्तित्व जैसे अधिक परितुष्ट हो गया था, मानो उसका विवाह हो गया हो, जैसे उसके साथ कोई दूसरा आदमी हो, जैसे वह अकेला न रह गया हो बल्कि कोई प्यारा साथी जीवन का शेष मार्ग उसके साथ चलते रहने पर राजी हो गया हो – और यह साथी कोई और नहीं बल्कि उसका भारी रुई-भरा गरम कोट था, जिसमें टिकाऊ और मज़बूत अस्तर लगने वाला था। न जाने कैसे उसमें ज़्यादा जान आ गयी, और उसका चरित्र अधिक दृढ़ हो गया, उस आदमी की तरह जिसने अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लिया हो। उसके चेहरे और उसके आचरण से सारा अनिश्चय और सारा ढुलमुलपन, यानी उनके सारे डाँवाँडोल और गोलमोल लक्षण ग़ायब हो गये थे। कभी-कभी उसकी आँखें अचानक चमक उठती थीं और उसके दिमाग़ से अत्यन्त साहसपूर्ण और बहादुरी के विचार होकर गुज़र जाते थे : शायद चितराले का कॉलर भी वह आख़िरकार लगवा ही लेगा। इसके बारे में मन ही मन सोचते हुए वह बिल्कुल खो जाता था और एक दिन नक़ल करने के दौरान वह ग़लती भी करते-करते बचा, उसके मुँह से लगभग ज़ोर से "उफ़!" निकल गया और उसने उँगलियों से सीने पर सलीब का निशान बनाया। हर महीने कम से कम एक बार वह ज़रूर पेत्रोविच के यहाँ

कोट की चर्चा करने जाता, पूछता कि कपड़ा ख़रीदने के लिए सबसे अच्छी जगह कौन-सी होगी, किस रंग का कपड़ा ख़रीदे, कितनी क़ीमत चुकाये और यह सब कुछ पूछकर वह हमेशा ख़ुश-ख़ुश घर लौट आता, हालाँकि थोड़ा-सा चिन्तित भी रहता, लेकिन इस विचार से उसे सन्तोष मिलता कि जल्दी ही वह वक़्त आयेगा जब वह सचमुच कपड़ा ख़रीद सकेगा और कोट बनकर तैयार हो जायेगा। उसकी आशा से जल्दी ही वह क्षण आ गया। तमाम आशाओं के विपरीत, डायरेक्टर ने अकाकी अकाकियेविच को चालीस नहीं, पैंतालीस नहीं, बल्कि पूरे साठ रूबल का बोनस देना तय किया। उन्हें शायद इस बात का पूर्वाभास हो गया था कि अकाकी अकाकियेविच को कोट की सख़्त ज़रूरत है, या शायद यह केवल संयोग की बात रही हो, लेकिन नतीजा यह हुआ कि अकाकी अकाकियेविच को बीस रूबल ज़्यादा मिल गये। घटनाक्रम में अचानक यह मोड़ आ जाने से पूरे सिलसिले की रफ़्तार तेज़ हो गयी। दो-तीन महीने और भूख सहने के बाद अकाकी अकाकियेविच के पास ठीक अस्सी रूबल की रक़म तैयार थी। उसका दिल, जो आमतौर पर शान्त रहता था, ज़ोर से धड़कने लगा। अगले ही दिन वह पेत्रोविच के साथ दुकानों का चक्कर लगाने निकल गया। उन्होंने कोट के लिए बहुत बढ़िया कपड़ा ख़रीद लिया – और इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी, क्योंकि पिछले छह महीनों से वे इस ख़रीदारी के बारे में सोचते रहे थे और कोई महीना ऐसा नहीं बीता था जब क़ीमतें जानने के लिए उन्होंने दुकानों का चक्कर न लगाया हो। ख़ुद पेत्रोविच तक ने कहा था कि उससे अच्छा कपड़ा कहीं मिल नहीं सकता था। उन लोगों ने अस्तर के लिए सूती कपड़ा पसन्द किया था लेकिन इतनी बढ़िया क्वालिटी का और इतना मज़बूत कि, पेत्रोविच के शब्दों में, वह रेशम को भी मात करता था और देखने में ज़्यादा चमकीला और ज़्यादा रोबदार भी लगता था। उन्होंने चितराले का समूर न लगवाने का फ़ैसला किया था क्योंकि वह सचमुच बहुत महँगा था, लेकिन उसकी जगह उन्होंने दुकान में जो बेहतरीन बिल्ली की खाल मिल सकी थी उसको चुना था, बिल्ली की ऐसी खाल, जो दूर से देखने पर आसानी से चितराले का समूर मालूम होती थी। पेत्रोविच ने पूरे दो हफ़्ते मेहनत करके उस कोट को तैयार किया क्योंकि उसमें रुई भरने और निगन्दे डालने का बहुत काम था; वरना तो वह बहुत जल्दी तैयार हो जाता। पेत्रोविच ने उस काम के बारह रूबल लिये थे – इससे एक भी कोपेक कम में वह काम हो ही नहीं सकता था: हर चीज़ रेशम के धागे से छोटे-छोटे टाँकों की दोहरी बख़िया से सिली गयी थी, और बाद में पेत्रोविच ने ख़ुद अपने दाँतों से हर सीवन को दबा-दबाकर तरह-तरह के सजावटी बेल-बूटे बनाये थे।

आख़िरकार, जिस दिन पेत्रोविच ओवरकोट लेकर आया था... ठीक-ठीक

यह बताना तो मुश्किल है कि वह कौन-सा दिन था, लेकिन शायद वह अकाकी अकाकियेविच की ज़िन्दगी का सबसे यादगार दिन था। वह सुबह कोट लेकर आया था, ठीक उस समय से पहले जब अकाकी अकाकियेविच को दफ़्तर जाना था। कोट के तैयार होने के लिए इससे ज़्यादा अच्छा वक़्त हो ही नहीं सकता था, क्योंकि बर्फ़ पड़ना अभी शुरू ही हुई थी और इस बात का ख़तरा दिखायी पड़ रहा था कि सर्दी अभी और बढ़ेगी। पेत्रोविच हर अच्छे दर्ज़ी की तरह कोट लेकर आया था। उसके चेहरे पर गम्भीरता का ऐसा भाव था जैसा अकाकी अकाकियेविच ने इससे पहले कभी नहीं देखा था। साफ़ ज़ाहिर था कि पेत्रोविच को अपने कारनामे की महानता का पूरा आभास था और वह महसूस करता था कि उसने अपने काम से सिद्ध कर दिया था कि उन दर्ज़ियों में जो सिर्फ़ अस्तर टाँकते हैं और मरम्मत करते हैं और उन दर्ज़ियों में जो नये वस्त्रों का सृजन करते हैं कितना ज़मीन-आसमान का अन्तर होता है। उसने कोट को उस बड़े से रूमाल में से खोलकर निकाला जिसमें वह उसे लपेटकर लाया था; रूमाल ताज़ा-ताज़ा धोया गया लगता था; इसके बाद ही उसने रूमाल को तह किया और इस्तेमाल करने के लिए उसे अपनी जेब में रख लिया। कोट को ऊपर उठाकर उसने बड़े गर्व से देखा और बड़ी दक्षता से दोनों हाथ से उसे अकाकी अकाकियेविच के कन्धों पर डाल दिया; फिर उसे ठीक से सीधा किया; पीछे से उसे खींचकर बराबर किया; और उसके बाद बटन लगाये बिना ही उसे अकाकी अकाकियेविच के शरीर पर लपेट दिया। अधेड़ उम्र का आदमी होने की वजह से अकाकी अकाकियेविच उसे ठीक से पहनने को उत्सुक था; पेत्रोविच ने बाँहें आस्तीनों में डालने में उसकी मदद की – और उस तरह पहनने पर भी वह बिल्कुल ठीक बैठा। कहने का मतलब यह कि कोट हर तरह से बिल्कुल फिट था। पेत्रोविच ने यह कहने का मौक़ा हाथ से नहीं जाने दिया कि महज़ इसलिए कि वह एक छोटी-सी गली में रहता था और उसकी दुकान पर कोई साइनबोर्ड नहीं था, और इसके अलावा वह अकाकी अकाकियेविच को इतने दिन से जानता था, उसने उससे इतने कम पैसे लिये थे; जबकि नेव्स्की प्रोस्पेक्ट पर सिर्फ़ सिलाई के उसे पचहत्तर रूबल देने पड़ते। अकाकी अकाकियेविच इस बात के बारे में पेत्रोविच से बहस नहीं करना चाहता था क्योंकि पेत्रोविच अपने ग्राहकों को चौंकाने के लिए जिन बड़ी-बड़ी रक़मों का ज़िक्र करता था उनको सुनकर ही उसे डर लगता था। उसने उसका हिसाब चुकता किया, शुक्रिया अदा किया और नया ओवरकोट पहनकर दफ़्तर की ओर चल दिया। पेत्रोविच भी उसके साथ ही निकला और बड़ी देर तक सड़क पर खड़ा आँखों से दूर जाते हुए कोट को देखता रहा, और फिर जान-बूझकर वह एक टेढ़ी-मेढ़ी गली में से चक्कर काटकर दोबारा उसी

सड़क पर कुछ आगे ऐसी जगह आ निकला जहाँ से वह अपने कोट को एक बार फिर देख सकता था, लेकिन इस बार एक दूसरे पहलू से, यानी सामने से। इसी बीच अकाकी अकाकियेविच भरपूर मस्ती में क़दम बढ़ाता चला जा रहा था। हर मिनट और हर सेकण्ड उसे इस बात का आभास था कि उसके कन्धों पर उसका नया ओवरकोट है, और एक–दो बार तो वह ख़ुशी के मारे मुँह ही मुँह में हँस भी दिया। दरअसल, उस कोट में दो ख़ूबियाँ थीं : एक तो वह गरम था और दूसरे वह देखने में अच्छा लगता था। रास्ते का उसे बिल्कुल पता ही नहीं चला और अचानक उसने देखा कि वह अपने दफ़्तर पहुँच गया है; लॉबी में पहुँचकर उसने कोट उतारा, उसे हर तरफ़ से अच्छी तरह देखा और फिर दरबान की ख़ास निगरानी में सौंप दिया। न जाने विभाग में हर आदमी को यह पता कैसे लग गया कि अकाकी अकाकियेविच नया कोट पहनकर आया है और उसका पुराना लबादा अब नहीं रह गया है। उसी क्षण वे सब लोग अकाकी अकाकियेविच के नये कोट को देखने भागकर लॉबी में पहुँच गये। वे उसे बधाइयाँ देने लगे और शुभकामनाएँ प्रकट करने लगे, जिसका नतीजा यह हुआ कि शुरू में तो अकाकी अकाकियेविच सिर्फ़ मुस्कुराता रहा, और फिर वह कुछ अटपटा महसूस करने लगा। जब वे सब लोग उसके पीछे पड़ गये और उससे माँग करने लगे कि इस ख़ुशी के मौक़े पर तो जश्न मनाया जाना चाहिए और उसे कम से कम उन्हें पार्टी तो देनी ही चाहिए, तो अकाकी अकाकियेविच की सिट्टी गुम हो गयी और उसकी समझ में नहीं आया कि इस झंझट से छुटकारा कैसे पाये। इसके कई मिनट बाद शर्म से लाल होते हुए वह बड़े भोलेपन से उन लोगों को यक़ीन दिलाने लगा कि वह नया कोट बिल्कुल नहीं था, बल्कि उसका वही पुराना कोट था। आख़िरकार, एक अफ़सर ने, जो किसी हेडक्लर्क के असिस्टेण्ट के ऊँचे ओहदे पर था, शायद यह जताने के लिए कि उसमें अकड़ बिल्कुल नहीं थी और वह अपने से नीचे के लोगों के साथ भी उठने–बैठने को तैयार था, कहा –

"अच्छा, अकाकी अकाकियेविच के बजाय मैं पार्टी दूँगा और मैं तुम सब लोगों को आज मेरे यहाँ चाय पीने के लिए आने का न्योता देता हूँ : इसके अलावा आज मेरा जन्मदिन भी है।"

अफ़सरों ने असिस्टेण्ट हेडक्लर्क को फ़ौरन बधाई दी और बड़े उत्साह से उसके न्योते को स्वीकार कर लिया। अकाकी अकाकियेविच ने न आ सकने के लिए बहाने पेश करने की कोशिश की, लेकिन सभी ने कहा कि ऐसा करना सरासर बदतमीज़ी है, कि यह बड़ी शर्म की बात है और उसे न्योता स्वीकार करना पड़ा। बाद में जब उसकी समझ में यह बात आयी कि उसे अपना ओवरकोट पहनकर टहलने का एक और मौक़ा मिलेगा, इस बार शाम को, तो

वह ख़ुशी से फूल उठा। यह पूरा दिन अकाकियेविच के लिए उल्लास भरे त्योहार का दिन था। वह घर लौटा तो बहुत ख़ुश था, उसने अपना कोट उतार कर बड़ी सावधानी से हुक पर टाँग दिया, एक बार फिर उसके कपड़े और अस्तर को मन ही मन सराहा और फिर दोनों की तुलना करने के लिए उसने अपना पुराना लबादा निकाला, जो बिल्कुल तार-तार हो चुका था। उसे देखकर वह ज़ोर से हँस भी पड़ा : कितना ज़मीन-आसमान का अन्तर था! और इसके बाद बड़ी देर तक खाना खाते वक़्त जब भी वह अपने पुराने लबादे की दुर्दशा के बारे में सोचता था तो मन ही मन हँस देता था। उसने बहुत ख़ुश होकर खाना खाया और उसके बाद नक़ल करने का काम नहीं किया, ज़रा-सा भी नहीं, बल्कि उसके बजाय वह अँधेरा हो जाने तक बिस्तर पर लेटा ऐंडता रहा। फिर जल्दी से उसने कपड़े बदले, अपना नया कोट पहना और सड़क पर निकल गया। जिस अफ़सर ने पार्टी दी थी वह कहाँ रहता था यह तो दुर्भाग्यवश हम ठीक-ठीक नहीं बता सकते : मेरी याददाश्त बुरी तरह धोखा देने लगी है और सेण्ट पीटर्सबर्ग की हर चीज़, उसकी सारी सड़कें और इमारतें मेरे दिमाग़ में इतनी बुरी तरह गड्डमड्ड हो गयी हैं कि उसमें से किसी भी चीज़ को सही-सलामत निकाल पाना कठिन है। बस इतना पूरे यक़ीन के साथ कहा जा सकता है कि यह अफ़सर शहर के किसी बेहतर हिस्से में रहता था, यानी उसका घर अकाकी अकाकियेविच के घर के कहीं आस-पास भी नहीं था। शुरू में तो अकाकी अकाकियेविच को कुछ सुनसान और धुँधली-धुँधली रोशनी वाली सड़कों से होकर जाना पड़ा, लेकिन जैसे-जैसे वह उस अफ़सर के फ़्लैट के पास पहुँचता गया वैसे-वैसे रास्तों पर ज़्यादा चहल-पहल दिखायी देने लगी, वे ज़्यादा आबाद दिखायी देने लगे और उन पर रोशनी भी बेहतर थी। पैदल चलने वालों की संख्या अधिकाधिक बढ़ती गयी, सजीली पोशाकें पहने हुए महिलाएँ और ऊदबिलाव की खाल के कॉलर वाले कोट पहने हुए मर्द भी दिखायी देने लगे; सस्ती क़िस्म की किराये की उन लकड़ी की बनी हुई जंगलेदार बर्फ़-गाड़ियों के कोचवान की संख्या कम होती गयी जिन पर पीतल की कीलें ठुँकी होती हैं – उनकी जगह वार्निश की हुई उन चमचमाती बर्फ़-गाड़ियों ने ले ली थी, जिनके कोचवानों ने लाल मख़मल की टोपियाँ पहन रखी थीं और अपने मुसाफ़िरों की सुविधा के लिए गाड़ियों में भालू की खाल के ओढ़ने रख छोड़े थे; और सज-धज वाली घोड़ागाड़ियाँ भी जिनके पहिये बर्फ़ पर चर्र-चर्र की आवाज़ कर रहे थे, सड़क पर आ-जा रही थीं। अकाकी अकाकियेविच विस्मय से इन सब चीज़ों को देखता रहा। बरसों से वह शाम को सड़क पर नहीं निकला था। वह रुककर एक दुकान की जगमगाती हुई खिड़की में लगी तस्वीर को बड़ी दिलचस्पी के साथ देखने लगा, जिसमें एक ख़ूबसूरत

औरत को जूता उतारते हुए दिखाया गया था, और ऐसा करने में उसकी बेहद सुडौल टाँग पूरी की पूरी नंगी हो गयी थी; उसके पीछे गलमुच्छों और निचले होंठ के नीचे छोटी-सी नुकीली सुन्दर दाढ़ी वाला एक आदमी दूसरे कमरे के दरवाज़े में से झाँककर उसे देख रहा था। अकाकी अकाकियेविच सिर हिलाकर मन ही मन हँस दिया और अपने रास्ते पर आगे चल पड़ा। वह मन ही मन क्यों हँसा था? शायद इसलिए कि उसने एक बिल्कुल ही अपरिचित चीज़ देखी थी, लेकिन जो ऐसी चीज़ थी जिसे हर आदमी अपने सहज-ज्ञान से अनुभव करता है, या शायद वह यह सोच रहा हो, जैसा कि उसकी जगह बहुत-से दूसरे अफ़सर सोचते : "अरे ये फ़्रांसीसी!... बस कुछ पूछिये नहीं! अगर कोई बात उनके मन में एक तरह से... तो वे यक़ीनन एक तरह से..." लेकिन, दूसरी ओर, यह भी हो सकता है कि वह यह बात भी बिल्कुल ही न सोच रहा हो – बहरहाल, आप दूसरे आदमी के दिमाग़ में तो झाँककर देख नहीं सकते और यह पता नहीं लगा सकते कि वह क्या सोच रहा है। आख़िरकार, वह उस मकान तक पहुँच गया जिसमें वह असिस्टेण्ट हेडक्लर्क रहता था। असिस्टेण्ट हेडक्लर्क बड़े ठाठ से रहता था : उसका फ़्लैट दूसरी मंज़िल पर था, उस तक जाने वाली सीढ़ियों पर लैम्प जल रहा था। हॉल में घुसने पर अकाकी अकाकियेविच को फ़र्श पर जूतों के ऊपर पहनने के रबड़ के जूतों की कई क़तारें दिखायी दीं। उनके बीच कमरे के बीचोबीच एक समोवार रखा था जिसकी आवाज़ सुनायी दे रही थी और जिसमें से धुएँ के बादल निकल रहे थे। दीवारों पर बहुत-से ओवरकोट टँगे हुए थे, जिनमें से कुछ पर ऊदबिलाव की खाल के कॉलर भी लगे हुए थे या कॉलर के पल्लों पर मख़मल मढ़ा हुआ था। दीवार के पार उसे आवाज़ों का एक मिला-जुला शोर सुनायी दे रहा था जो जब दरवाज़ा खुला और एक नौकर ख़ाली प्यालियों, क्रीम के जग और बिस्कुटों की टोकरी से लदी हुई ट्रे लेकर बाहर निकला बिल्कुल साफ़ और तेज़ सुनायी देने लगा। साफ़ ज़ाहिर था कि ये अफ़सर वहाँ काफ़ी देर से जमा थे और चाय की पहली प्याली पी चुके थे। अकाकी अकाकियेविच अपना कोट ख़ुद टाँगकर कमरे में घुसा और मोमबत्तियों, अफ़सरों, पाइपों और ताश की मेज़ों की भरमार देखकर वह चौंधिया गया, और हर तरफ़ लोगों के बातें करने के मिले-जुले शोर और कुर्सियाँ खिसकाये जाने के तेज़ आवाज़ से उसके कान गूँजने लगे। वह कमरे के बीच में सिटपिटाया हुआ खड़ा था और चारों ओर नज़रें डालकर यह फ़ैसला करने की कोशिश कर रहा था कि उसे क्या करना चाहिए। लेकिन लोगों ने उसे देख लिया था; एक हुल्लड़ के साथ उन्होंने उसका स्वागत किया, और उसी क्षण उसके नये कोट को एक बार फिर देखने के लिए वे हॉल में टूट पड़े। अकाकी अकाकियेविच शायद कुछ शर्मा रहा था, लेकिन वह इतना भोला-भाला आदमी

था कि अपने कोट की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर वह ख़ुश हुए बिना न रह सका। इसके बाद अलबत्ता सब लोगों ने उसे और उसके कोट को जहाँ का तहाँ छोड़ दिया और जैसा कि हमेशा होता है ह्विस्ट खेलने के लिए सजायी गयी मेज़ों की ओर वापस चले गये। यह सब कुछ - शोर, लगातार बातें और इतने बहुत-से लोग - अकाकी अकाकियेविच के लिए बिल्कुल अनोखी चीज़ थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे, अपने हाथ, अपने पाँव और अपना पूरा शरीर कहाँ रखे; आख़िरकार, वह ताश खेलने वालों के पास जाकर बैठ गया, उनके ताश के पत्तों को देखने लगा, उनके चेहरों को घूरने लगा और कुछ देर बाद जम्हाई लेने लगा; वह महसूस कर रहा था कि यह सब कुछ बहुत उबाने वाला सिलसिला है और फिर उसके सोने का वक़्त भी तो बहुत देर हुए हो चुका था। उसने अपने मेज़बान से विदा लेने की कोशिश की, लेकिन सभी लोगों ने उसे किसी तरह जाने ही नहीं दिया, उन्होंने कहा कि उसके नये कोट की ख़ुशी मनाने के लिए वे सब शेम्पेन का एक-एक गिलास तो पियेंगे ही। घण्टे-भर बाद मेज़ पर खाना लगाया गया, जिसमें सलाद, ठण्डा बछड़े का गोश्त, पैटिस, पेस्ट्रियाँ और शेम्पेन थी। अकाकी अकाकियेविच को दो गिलास पीने पर मजबूर किया गया, जिसके बाद उसे कमरे का वातावरण पहले से बहुत ज़्यादा मस्ती-भरा लगने लगा, लेकिन वह इस बात को नहीं भुला पा रहा था कि बारह बज चुके थे और उसे बहुत पहले ही घर चला जाना चाहिए था। इस डर से कि उसका मेज़बान उसे और ज़्यादा देर न रोक ले, वह चुपके से दबे पाँव कमरे के बाहर निकला, अपना कोट ढूँढ़ निकाला, जिसे नीचे फ़र्श पर पड़ा देखकर वह बहुत दुखी हुआ, उसे झटका, उस पर चिपका हुआ सारा कचरा चुन-चुनकर साफ़ किया, उसे अपने कन्धों पर डाला और सीढ़ियाँ उतरकर सड़क पर आ निकला।

बाहर अभी तक रोशनी थी। कुछ छोटी-छोटी दुकानें, जिन्हें नौकरों-चाकरों के तबक़े के लोग अड्डेबाज़ी के लिए इस्तेमाल करते हैं, अभी तक खुली हुई थी; कुछ दूसरी दुकानें बन्द हो चुकी थीं, पर उनके दरवाज़ों की दरारों में से रोशनी की लम्बी-लम्बी सलाइयाँ बाहर निकल रही थीं, जिसका मतलब यह था कि वे अभी तक उजाड़ नहीं हुई थीं और शायद उनमें नौकरानियाँ और नौकर अभी तक बैठे अपनी रात की गप-शप पूरी कर रहे थे, जबकि उनके मालिकों और उनकी मालकिनों को कुछ भी पता नहीं था कि वे कहाँ चले गये थे। अकाकी अकाकियेविच ख़ुश-ख़ुश चला जा रहा था; एक बार तो यहाँ तक हुआ कि वह किसी प्रकट कारण के बिना ही एक महिला के पीछे लगभग भागने लगा, जो उसके पास से बिजली के कौंधे की तरह लपकती हुई गुज़र गयी थी, और अपने शरीर के हर अंग में असाधारण गतिशीलता का परिचय दे

रही थी। लेकिन वह फ़ौरन ही थम गया और अपनी पहले वाली धीमी रफ़्तार से चलने लगा; उसे ख़ुद इस बात पर हैरत हो रही थी कि वह अचानक इस तरह सरपट भाग क्यों पड़ा था। जल्दी ही वह उन सुनसान गलियों में पहुँच गया, जहाँ, रात की तो बात ही जाने दीजिये, दिन में भी दिल बैठने लगता है। इस वक़्त तो वे और भी उदास और सूनी लग रही थीं : सड़क के किनारे की बत्तियों के बीच की दूरी बढ़ती जा रही थी – साफ़ मालूम हो रहा था कि यहाँ तेल की ज़्यादा तंगी थी; लकड़ी के मकान और लकड़ी की चाहरदीवारियाँ मिलने लगी थीं; दूर-दूर तक कोई आदमी-आदमज़ाद दिखायी नहीं देता था; सिर्फ़ सड़क पर पड़ी हुई बर्फ़ की दमक दिखायी पड़ रही थी और नीची छतों वाली झोपड़ियाँ अपने अँधेरे किवाड़ों के पीछे उदास भाव से सो रही थीं। अब वह उस जगह के पास पहुँच गया था जहाँ सड़क एक बड़े से चौक में जाकर निकलती थी, जो एक भयानक ख़ाली निर्जन विस्तार था, जिसके उस पार की इमारतें भी मुश्किल से दिखायी देती थीं।

दूर छोर पर उसे पुलिस के सन्तरी की चौकी की टिमटिमाती हुई रोशनी दिखायी दे रही थी; ऐसा लग रहा था कि यह चौकी दुनिया के छोर पर बनी हुई है। यहाँ पहुँचकर अकाकी अकाकियेविच की सारी मस्ती स्पष्टतः मन्द पड़ती दिखायी दी। अपने मन में एक अज्ञात भय लेकर उसने चौक को पार करना शुरू किया, मानो अन्दर ही अन्दर उसे कोई अशुभ बात होने का पूर्वाभास हो गया हो। उसने अपने पीछे और इधर-उधर देखा : ऐसा लग रहा था कि वह खुले समुद्र में चला जा रहा है। “नहीं, किसी तरफ़ न देखना ही बेहतर होगा,” उसने सोचा और आँखें मूँदे चलता रहा, और जब यह देखने के लिए कि वह चौक के छोर से कितनी दूर रह गया है उसने अपनी आँखें खोलीं तो अचानक उसने देखा कि ठीक उसकी नाक के सामने बड़ी-बड़ी मूँछोंवाले कुछ लोग खड़े हैं, हालाँकि वह ठीक से समझ नहीं पाया कि वे कौन हैं। उसकी आँखों के सामने धुँधलका छा गया और उसका दिल धड़कने लगा।

“अरे, यह कोट तो मेरा है!” उनमें से एक ने उसकी गर्दन पकड़कर धमकी-भरे स्वर में कहा।

अकाकी अकाकियेविच मदद के लिए किसी को पुकारने ही जा रहा था कि दूसरे आदमी ने अपना घूँसा – जो किसी भी सरकारी नौकर की खोपड़ी के बराबर था – उसके मुँह की ओर बढ़ाया और बोला, “चिल्लाकर तो देख!” अकाकी अकाकियेविच ने सिर्फ़ यह महसूस किया कि उन लोगों ने उसका कोट उतार लिया, फिर किसी ने उसको ठोकर मारी और वह पीठ के बल बर्फ़ पर गिर पड़ा; उसके बाद उसने कुछ भी महसूस नहीं किया। कुछ मिनट बाद उसे होश आया और वह उठकर अपने पाँवों पर खड़ा हो गया, लेकिन तब वहाँ

कोई भी दिखायी नहीं दे रहा था। खुले मैदान में उसे सर्दी लग रही थी, और यह समझ में आने पर कि उसका कोट जा चुका था उसने पुकारना शुरू किया, लेकिन उसकी आवाज़ चौक के उस पार तक पहुँच ही नहीं सकी। बिल्कुल निराश होकर और लगातार चिल्लाते हुए वह चौक के पार सीधे सन्तरी की चौकी की ओर भागा। सन्तरी अपने फरसे पर झुका हुआ चौकी से सटा खड़ा था और लगता था कि वह बड़े कौतूहल से देख रहा था इस बात में दिलचस्पी लेते हुए कि क्यों कोई आदमी दूर से उसकी ओर भागा चला आ रहा है और चिल्ला-चिल्लाकर आवाज़ दे रहा है। उसके पास पहुँचकर अकाकी अकाकियेविच ने हाँफते हुए उसे लताड़ना शुरू किया कि वह अपनी ड्यूटी पर चैन से सो रहा था और उसकी आँखों के सामने लोगों को लूटा जा रहा था। सिपाही ने जवाब दिया कि उसने कुछ भी नहीं देखा था, कि उसने तो बस इतना देखा था कि दो आदमियों ने चौक में उसे रोका था और उसने समझा था कि वे उसके दोस्त होंगे; और उसने यह भी कहा कि बेकार गला फाड़ने और गाली देने में अपना वक़्त ख़राब करने के बजाय उसे अगले दिन जाकर सार्जेण्ट से मिलना चाहिए और सार्जेण्ट पता लगा देगा कि उसे किसने लूटा था। अकाकी अकाकियेविच अस्त-व्यस्त हालत में भागा-भागा अपने घर पहुँचा : उसके बाल, जिनके कुछ छोटे-छोटे गुच्छे अभी तक उसकी कनपटियों पर और उसकी गुद्दी पर बाक़ी बच गये थे, बुरी तरह बिखरे हुए थे, उसके शरीर का बग़लवाला हिस्सा, उसका सीना और उसका पतलून बर्फ़ में लिथड़े हुए थे। उसकी बुढ़िया मकान मालकिन किसी को ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा भड़भड़ाते सुनकर जल्दी से अपने बिस्तर से उठी और सिर्फ़ एक जूता पहने बड़े संकोच से रात को पहनने की क़मीज़ को सीने पर हाथ से पकड़े दरवाज़ा खोलने के लिए भागी। दरवाज़ा खोलते ही अकाकी अकाकियेविच को इस हालत में देखकर वह चौंककर पीछे हट गयी। लेकिन सारा क़िस्सा सुनने के बाद उसने विस्मय से हथेली पीटते हुए कहा कि उसे सीधे इंस्पेक्टर के पास जाना चाहिए, कि सार्जेण्ट दुनिया-भर के झूठ बोलेगा, वादे करेगा और टालमटोल करके उसको बेवक़ूफ़ बनायेगा; और सबसे अच्छा यही होगा कि वह सीधा इंस्पेक्टर के पास चला जाये, कि उससे उसकी जान-पहचान भी थी, क्योंकि वह फ़ीनी लड़की आन्ना, जो पहले उसके यहाँ खाना पकाने का काम करती थी, अब उसी इंस्पेक्टर के यहाँ आया का काम करती थी, कि वह ख़ुद अक्सर उस इंस्पेक्टर को अपने घर के सामने से गुज़रता हुआ देखा करती थी, और यह कि वह इंस्पेक्टर हर इतवार को गिरजाघर जाता था और प्रार्थना करते समय बहुत प्रसन्न होकर चारों ओर देखता था और इसलिए वह बहुत नेक आदमी होगा। यह सलाह सुनकर अकाकी अकाकियेविच बहुत निराश होकर अपने कमरे में चला

गया, और जहाँ तक इस बात का सवाल है कि वहाँ उसने वह रात कैसे काटी, तो इसे हम उस पाठक की कल्पना पर छोड़ देते हैं, जो अपने आपको किसी दूसरे की स्थिति में रखकर सोच सकता है।

अगले दिन बहुत सबेरे वह इंस्पेक्टर से मिलने के लिए चल पड़ा; लेकिन वहाँ पहुँचकर उसे बताया गया कि इंस्पेक्टर साहब अभी सो रहे हैं; वह दस बजे फिर लौटकर आया और एक बार फिर उसे बताया गया कि वह अभी तक सो रहे हैं; वह ग्यारह बजे आया तो उसे बताया गया कि इंस्पेक्टर साहब घर पर नहीं हैं; वह दोपहर के खाने के वक़्त आया तो सामने वाले कमरे में बैठे हुए क्लर्कों ने बिना यह जाने उसे अन्दर जाने देने से इंकार कर दिया कि उसे काम क्या था, कि वह इंस्पेक्टर साहब से क्यों मिलना चाहता था और मामला क्या था। जीवन में पहली बार अकाकी अकाकियेविच ने चरित्र की कुछ दृढ़ता का परिचय दिया और सीधे कहा कि उसे इंस्पेक्टर साहब से ही मिलना है, कि उन लोगों को उसे अन्दर जाने से रोकने का कोई अधिकार नहीं है, कि वह अपने विभाग से सरकारी काम से आया है और यह कि जब वह उनकी शिकायत कर देगा तब उनकी ख़बर ली जायेगी। अब आपत्ति करने की क्लर्कों की हिम्मत नहीं हुई, और उनमें से एक क्लर्क इंस्पेक्टर साहब को बुला लाने के लिए चला गया। लेकिन इंस्पेक्टर की प्रतिक्रिया बेहद अजीब थी। समस्या की मुख्य बात की ओर ध्यान देने के बजाय उसने अकाकी अकाकियेविच से पूछना शुरू किया कि वह इतनी देर से घर क्यों लौट रहा था, कहीं वह किसी ऐसे-वैसे घर में तो नहीं गया था, जिसका नतीजा यह हुआ कि अकाकी अकाकियेविच अपना धीरज बिल्कुल खो बैठा और यह जाने बिना ही वहाँ से चला आया कि ओवरकोट के मामले की जाँच-पड़ताल होगी भी कि नहीं। उस पूरे दिन वह जीवन में पहली बार दफ़्तर से ग़ैर-हाज़िर रहा।

अगले दिन उतरा हुआ चेहरा लिये और अपना पुराना लबादा पहने, जो अब पहले से भी ज़्यादा दयनीय लगने लगा था, वह काम पर पहुँचा। कोट लुटने का क़िस्सा सुनकर अफ़सरों को बहुत रंज हुआ, हालाँकि उनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन्हें इस मुसीबत के वक़्त में भी अकाकी अकाकियेविच की हँसी उड़ाने में कोई संकोच नहीं हुआ। अफ़सरों ने फ़ौरन उसके लिए चन्दा जमा करने का फ़ैसला किया, लेकिन बहुत ही छोटी-सी रक़म जमा हो सकी क्योंकि विभाग के कर्मचारी पहले ही चन्दों में बहुत-सी रक़म दे चुके थे, पहले तो डायरेक्टर की एक तस्वीर बनवाने के लिए, फिर किसी नयी किताब के लिए, जिसकी सिफ़ारिश उनके सेक्शन के बड़े अफ़सर ने की थी, क्योंकि वह उस किताब के लेखक का मित्र था। नतीजा यह हुआ कि वे बहुत ही थोड़ा पैसा जुटा पाये। उनमें से एक ने, दया के भाव से द्रवित होकर, कम से कम एक उपयोगी

सलाह देकर अकाकी अकाकियेविच की मदद करने का फ़ैसला किया; उसने उससे कहा कि वह पुलिस सार्जेण्ट के पास न जाये, क्योंकि सार्जेण्ट अपने ऊपर के अफ़सरों की वाहवाही लूटने की उत्सुकता में कोट किसी न किसी तरह बरामद भले ही कर ले, पर जब तक उसकी मिल्कियत का क़ानूनी सबूत न दे दिया जाये तब तक वह रहेगा थाने में ही। इसके बजाय उसे जाकर एक बड़ी हस्ती से मिलना चाहिए, और वह बड़ी हस्ती सही लोगों से सम्पर्क करके और सही लोगों को चिट्ठियाँ भेजकर मामले को सही ढर्रे पर लगा देगी। अकाकी अकाकियेविच के लिए जाकर इस बड़ी हस्ती से मिलने के अलावा कोई चारा ही नहीं था।

इस बड़ी हस्ती का ओहदा सही-सही क्या था, और उसमें क्या आशय निहित था, यह तो आज तक एक रहस्य है। सिर्फ़ यही मालूम है कि इस बड़ी हस्ती को अभी हाल ही में बड़ी हस्ती बनाया गया था, और उससे पहले उनकी हस्ती बहुत मामूली थी। हालाँकि उनके पद को कुछ दूसरी उनसे भी बड़ी हस्तियों के पदों की तुलना में कोई ख़ास महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता था। लेकिन जिन आदमियों को कुछ लोग बड़ी हस्ती नहीं मानते हैं वे ही दूसरे कुछ लोगों के लिए बड़े महत्त्व के हो सकते हैं। इसके अलावा वही बड़ी हस्ती अपने महत्त्व को हर तरह से बढ़ाने की भी कोशिश करते थे : जैसे, उन्होंने यह आदेश दे रखा था कि जब वह काम पर आया करें तो उनके नीचे काम करने वाले अफ़सर उन्हें सीढ़ियों पर मिला करें; कि कोई भी सीधे उनसे मिलने की जुर्रत न करे, बल्कि इस क्रम का सख़्ती से पालन किया जाये: कालिजिएट रजिस्ट्रार अपनी रिपोर्ट गुबेर्निया सेक्रेटरी के सामने पेश किया करे, गुबेर्निया सेक्रेटरी अपनी रिपोर्ट टाइटुलर काउंसिलर को, या जो कोई भी उससे अगला ऊँचा अफ़सर हो, उसको पेश किया करे, और इस तरह मामला आख़िरकार उनके पास तक पहुँच जायेगा। क्योंकि पवित्र रूस की यही दुर्दशा हो गयी है – नक़ल का बोलबाला है और हर आदमी अपने से ऊपर वाले आदमी की नक़ल करने की कोशिश करता है। किसी टाइटुलर काउंसिलर का तो यह क़िस्सा भी सुनाया जाता है कि जब किसी छोटे-मोटे विभाग का ज़िम्मा उसे सौंपा गया तो उसने फ़ौरन आड़ लगवाकर अपने लिए अलग एक कमरा बनवा लिया, उसे "हेड ऑफ़िस" कहने लगा और उसके दरवाज़े पर लाल कॉलर और सुनहरा गोटा लगी वर्दियों वाले चपरासी तैनात कर दिये, जो किसी भी मिलने वाले के आने पर दरवाज़ा खोलते थे, हालाँकि "हेड ऑफ़िस" मुश्किल से इतना बड़ा था कि उसमें बस एक मामूली मेज़ ही आ सकती थी। तो उन बड़ी हस्ती की आदतें और तौर-तरीक़े मुनासिब हद तक शानदार और रोबदार थे, लेकिन उनमें किसी तरह की कोई पेचीदगी नहीं थी। उनकी आधारशिला थी सख़्ती। वह

कहा करते थे, "सख़्ती, सख़्ती और सख़्ती", और अन्तिम शब्द का उच्चारण करते समय वह सुनने वाले के चेहरे को बड़े अर्थपूर्ण ढंग से देखते थे। हालाँकि, दरअसल, ऐसा करने की कोई वजह नहीं थी, क्योंकि उस दफ़्तर में जो दर्जन-भर अफ़सर थे वे यों भी हमेशा डरे-सहमे रहते थे : अपने प्रधान को दूर से आता देखकर जो भी काम वे करते होते थे उसे छोड़कर वे कमरे से उनके गुज़र जाने तक सीधे तनकर सावधान की मुद्रा में खड़े रहते थे। अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ उनकी बातचीत की विशेषता थी सख़्ती और उसमें वह प्रायः केवल तीन फ़िक़रे बोलते थे, "तुम्हारी यह मज़ाल?... मालूम है किससे बात कर रहे हो? जानते हो तुम्हारे सामने कौन खड़ा है?" लेकिन इन तमाम बातों के बावजूद वह दिल के बहुत नेक, मिलनसार और परोपकारी आदमी थे; लेकिन तरक़्क़ी मिलने के बाद उनका दिमाग़ बिल्कुल फिर गया था। जनरल का दर्जा पाने के बाद वह बिल्कुल बौखला गये थे और अब उनकी समझ में नहीं आता था कि किस तरह का आचरण अपनायें। जब वह अपने बराबर वालों के साथ होते थे तब वह बहुत भले आदमी रहते थे, शिष्ट और कई मामलों में काफ़ी समझदार होने का भी परिचय देते थे, लेकिन जैसे ही वह अपने आपको ऐसी जगह पाते थे जहाँ एक भी आदमी उनसे एक दर्जा नीचे हो, तो उनका व्यवहार बिल्कुल घटिया होता था : वह बिल्कुल चुप्पी साध लेते थे, और उनकी हालत इसलिए और भी दयनीय हो जाती थी कि स्पष्टतः उन्हें स्वयं भी इस बात का आभास रहता था कि वह अपना समय अधिक दिलचस्प तरीक़े से बिता सकते थे। कभी-कभी उनकी आँखों से यह प्रबल इच्छा व्यक्त होती थी कि वह किसी दिलचस्प बातचीत में हिस्सा लें या किसी दिलचस्प सोहबत में शरीक हों, लेकिन यह विचार उन्हें रोक देता था : कहीं यह उनकी प्रतिष्ठा से निम्न स्तर की बात तो नहीं होगी, कहीं यह ज़रूरत से ज़्यादा बेतकल्लुफ़ी तो नहीं होगी और उनके महत्त्व को घटायेगी तो नहीं? इस तरह के सोच-विचार के बाद वह हमेशा अपनी चुप्पी पर क़ायम रहते थे, और बीच-बीच में बस कभी हाँ-हूँ कर देते थे, इस तरह उन्होंने बहुत ही नीरस आदमी होने की ख्याति प्राप्त कर ली थी। तो ऐसे थे वह बड़ी हस्ती जिनके पास हमारे बेचारे अकाकी अकाकियेविच को जाना पड़ा, और उसने इसके लिए बहुत ही अनुचित समय चुना, ऐसा समय जो अकाकी अकाकियेविच के लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण और उन बड़ी हस्ती के लिए बहुत ही सौभाग्यपूर्ण था। वह बड़ी हस्ती अपने कमरे में बैठे हुए थे और बहुत प्रसन्नचित्त होकर अपने एक पुराने मिलने वाले और बचपन के दोस्त के साथ बातें कर रहे थे, जो हाल ही में राजधानी से आया था, और जिससे बरसों से उनकी मुलाक़ात नहीं हुई थी। जिस समय वह इस तरह व्यस्त थे, उन्हें सूचना दी गयी कि बश्माचकिन नामक एक आदमी उनसे मिलने

आया है। उन्होंने बड़ी रुखाई से पूछा, "कौन है वह?" और उन्हें जवाब मिला, "कोई अफ़सर है।" – "तब उसे इन्तज़ार करने दो, मेरे पास अभी वक़्त नहीं है," बड़ी हस्ती बोले। यहाँ हम यह बता दें कि बड़ी हस्ती की यह बात सरासर झूठ थी : उनके पास ढेरों वक़्त था, वह और उनका दोस्त बहुत देर हुए अपनी दिलचस्पी के सारे विषयों पर बातें कर चुके थे और उनकी बातचीत का स्तर गिरते-गिरते लम्बी चुप्पियों तक सीमित रह गया था जिनके बीच-बीच में वे एक-दूसरे की जाँघ पर धप मारकर कह उठते थे, "यह हाल है, इवान अब्रामोविच!" – "हाल तो यही है, स्तेपान वर्लामोविच!" लेकिन उल्टे, उन्होंने उस अफ़सर को इन्तज़ार कराने का हुक्म दे दिया, ताकि उनके दोस्त को, जो एक ऐसा आदमी था जो बहुत पहले नौकरी से रिटायर होकर गाँव में अपने घर में रहने लगा था, यह पता चल जाये कि अफ़सरों को उनसे मिलने के लिए पास वाले छोटे कमरे में कितनी देर इन्तज़ार करना पड़ता है। आख़िरकार, जब वे जी भरकर बातें कर चुके, और उससे भी ज़्यादा उनका जी लम्बी चुप्पियों से भर गया, और वे तिरछी पीठवाली बेहद आरामदेह कुर्सियों पर बैठकर अपने सिगार पी चुके, तो उन्हें मानो अचानक कुछ याद आ गया और उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहा, जो कोई रिपोर्ट लेने के लिए दरवाज़े के अन्दर आकर रुक गया था, "हुँ, बाहर कोई अफ़सर इन्तज़ार कर रहा है न? उससे अन्दर आने को कह दो।" अकाकी अकाकियेविच की निराशा में डूबी हुई मुद्रा और उसकी मलगजी पुरानी वर्दी देखकर वह तेज़ी से उसकी ओर मुड़े और उन्होंने झटकेदार कठोर स्वर में पूछा, "क्या बात है?" उन्होंने तरक़्क़ी मिलने और अपने वर्तमान पद पर नियुक्त होने के एक हफ़्ता पहले से कमरा बन्द करके आईने के सामने अकेले खड़े होकर इस लहजे का अभ्यास किया था। अकाकी अकाकियेविच, जो पहले से ही काफ़ी रोब खा रहा था, यह सुनकर अपना सन्तुलन कुछ हद तक खो बैठा और जहाँ तक उसकी अवाक स्थिति ने इजाज़त दी, उसने बीच-बीच में हमेशा से ज़्यादा बार "एक तरह से" का पुट देकर समझाया कि उसके पास बिल्कुल नया एक ओवरकोट था, और उसे बड़ी बर्बरता से लूट लिया गया था, और अब वह महामहिम की शरण में आया था कि वह उसकी पैरवी करके आलीजनाब पुलिस के चीफ़ इंस्पेक्टर साहब से, या किसी और से, एक तरह से सम्पर्क स्थापित करने, और उसका खोया हुआ कोट वापस दिलाने में मदद करें। किसी अज्ञात कारण से जनरल साहब को अकाकी अकाकियेविच का आचरण ढिठाई का लगा।

"क्या है, भले आदमी," वह उसी कठोर स्वर में कहते रहे, "तुम्हें क़ायदा-क़ानून कुछ मालूम नहीं? जानते हो तुम कहाँ हो? या इस तरह के मामलात को पेश करने का सही तरीक़ा क्या है? तुम्हें पहले इसके बारे में इस

दफ़्तर में अर्ज़ी देनी चाहिए थी, वह हेडक्लर्क को भेजी जाती, फिर विभाग के प्रधान को, और फिर वह सेक्रेटरी के हवाले की जाती और सेक्रेटरी उसे ख़ुद मेरे पास लेकर आता..."

"लेकिन, महामहिम," अकाकी अकाकियेविच ने अपने बचे-खुचे साहस के सारे साधन जुटाने की कोशिश करते हुए और साथ ही बुरी तरह पसीने में नहाकर कहा, "मैंने, महामहिम, आपको तकलीफ़ देने की जुर्रत इसलिए की है कि, बात यह है, सेक्रेटरियों पर एक तरह से... भरोसा नहीं किया जा सकता..."

"क्या कहा?" वह बड़ी हस्ती बोले, "इस तरह के रवैये तुम्हारे मन में कहाँ से पैदा हुए हैं? इस तरह के ख़याल तुम्हारे दिमाग़ में आये कहाँ से? नौजवान पीढ़ी के लोगों का क्या हाल हो गया है कि अपने हाकिमों और बड़ों के ख़िलाफ़ ऐसा बाग़ियाना रुख़ अपनाते हैं?"

उस बड़ी हस्ती ने, ज़ाहिर है, इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया था कि अकाकी अकाकियेविच पचास की उम्र पार कर चुका था। किसी ऐसे आदमी की अपेक्षा जो सत्तर की उम्र पार कर चुका हो, उसे अलबत्ता नौजवान कहा जा सकता था।

"मालूम है किससे बात कर रहे हो? जानते हो तुम्हारे सामने कौन खड़ा है? क्या यह बात तुम्हारी समझ में आती है, कुछ आती है समझ में? मैं तुमसे कुछ सवाल पूछ रहा हूँ।"

यहाँ पहुँचकर उन्होंने ज़ोर से अपना पाँव पटका और अपनी आवाज़ इतनी ऊँची उठायी कि अकाकी अकाकियेविच ही नहीं, कोई भी आदमी डर जाता।

अकाकी अकाकियेविच को जैसे साँप सूँघ गया, वह सिर से पाँव तक काँपने लगा; उससे ठीक से खड़ा भी नहीं हुआ जा रहा था : अगर नौकरों ने उसी वक़्त लपककर उसे सहारा न दिया होता तो वह फ़र्श पर गिर पड़ता। उसे लगभग बेहोशी की हालत में बाहर ले जाया गया। बड़ी हस्ती को इस बात की बहुत ख़ुशी थी कि उनके शब्दों में इतना असर था, उनकी अपेक्षा से भी अधिक और यह सोचकर उन पर नशा-सा छा गया था कि उनकी बात से ही आदमी के होश उड़ सकते थे, उन्होंने अपने दोस्त की ओर कनखियों से देखा यह जानने के लिए कि उस पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हो रही है और यह देखकर उन्हें बहुत सन्तोष हुआ कि उनके दोस्त की हालत बेहद नाज़ुक थी और वह ख़ुद सहमा हुआ लगने लगा था।

वह सीढ़ियों से नीचे कैसे उतरा और बाहर निकलकर सड़क पर कैसे आया यह अकाकी अकाकियेविच कोशिश करने पर भी याद न कर सका। उसे न अपनी टाँगों का पता था न अपनी बाँहों का। किसी दूसरे विभाग के जनरल की बात तो दूर रही, अपनी पूरी ज़िन्दगी में उसने किसी भी जनरल से कभी

इतनी फटकार नहीं सुनी थी। मुँह खोले और सड़क की पटरी से बार-बार हटते हुए वह बर्फ़ के तूफ़ान को चीरता हुआ, जो सड़क पर सीटियाँ-सी बजाता हुआ उपद्रव मचा रहा था, किसी तरह आगे बढ़ता गया। जैसा कि सेण्ट पीटर्सबर्ग में आमतौर पर होता है, हवा सभी सड़कों और गलियों से निकलकर, एक साथ चारों ओर से उस पर हमला कर रही थी। देखते-देखते उसने महसूस किया कि उसका सीना जकड़ता जा रहा है और जब वह गिरता-पड़ता घर पहुँचा तो उसकी आवाज़ बिल्कुल बैठ चुकी थी, और अपने गले की सूजन लिये हुए वह बिस्तर पर लेट गया। अच्छी डाँट-फटकार का ऐसा भी असर हो सकता है!

अगले दिन पता चला कि उसे तेज़ बुख़ार चढ़ा हुआ है। पीटर्सबर्ग की जलवायु की उदार सहायता की बदौलत उसकी बीमारी उम्मीद से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ती गयी, और आख़िरकार जब डॉक्टर ने आकर उसकी नब्ज़ देखी तो वह उसे सिर्फ़ पुल्टिस लगाने की सलाह दे सका, सो भी महज़ इसलिए कि रोगी दवा-दारू की सुविधा से बिल्कुल ही वंचित न रह जाये; और उसके बाद उसने एलान कर दिया कि डेढ़ दिन में उसका काम तमाम हो जायेगा। इसके बाद वह मकान मालकिन की ओर मुड़ा और बोला –

"देखो, मेरी सलाह मानो, ज़्यादा वक़्त ख़राब न करो, फ़ौरन उसके लिए चीड़ की लकड़ी का ताबूत बनवा दो, क्योंकि शाहबलूत की लकड़ी का ताबूत तो उसकी बिसात के बाहर है।"

यह तो मालूम नहीं कि अकाकी अकाकियेविच ने ये जानलेवा शब्द सुने भी कि नहीं, या, अगर उसने सुने तो उनका उस पर कोई असर भी हुआ कि नहीं, कि इस मुसीबत की ज़िन्दगी से बिछुड़ने का उसे अफ़सोस था या नहीं, क्योंकि तमाम वक़्त उसे तेज़ बुख़ार चढ़ा रहा और वह सरसाम की हालत में रहा। उसके दिमाग़ में भ्रम पैदा होते रहे और हर भ्रम पिछले भ्रम से ज़्यादा अजीब होता था : कभी वह पेत्रोविच को देखता और उससे एक ऐसा कोट बना देने को कहता जिसमें चोरों को पकड़ने के लिए फन्दे लगे हों – उसे अपने पलंग के नीचे चोर दिखायी देते रहते, और वह लगातार मकान मालकिन को पुकारता कि वह एक चोर को, जो उसके बिस्तर तक में घुस गया था, वहाँ से निकालने के लिए आये; या कभी वह पूछता कि उसका पुराना लबादा उसके सामने क्यों टँगा हुआ है, जबकि उसके पास एक नया ओवरकोट है; या कभी वह कल्पना करता कि वह जनरल साहब के सामने खड़ा उनकी फटकार सुन रहा है और बुदबुदाकर कह रहा है, "माफ़ कीजियेगा, महामहिम!" और आख़िरकार उसके मुँह से ऐसी गन्दी-गन्दी और बेहूदा गालियों की झड़ी लग जाती कि उसकी बूढ़ी मकान मालकिन भी उँगलियों से सीने पर सलीब का निशान बनाने लगती, क्योंकि उसने इससे पहले कभी उसे ऐसी कोई बात कहते

नहीं सुना था, और वह इसलिए और भी ज़्यादा दंग रह जाती कि ये शब्द "महामहिम" शब्द के ठीक बाद आते थे। बाद में चलकर वह ऊटपटांग बकने लगा; एक ही बात बिल्कुल साफ़ थी कि उसकी सारी उलझी हुईं बातें और विचार उस अभागे ओवरकोट पर केन्द्रित थे। आख़िरकार, बेचारे अकाकी अकाकियेविच ने दम तोड़ दिया।

किसी ने उसके कमरे या उसकी चीज़ों को सील करने का भी कष्ट नहीं उठाया, जिसकी पहली वजह तो यह थी कि उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था, और दूसरे इसलिए कि वह गिनती की कुछ चीज़ें ही छोड़कर मरा था : हंस के परों का एक गट्ठा, एक दस्ता सफ़ेद दफ़्तर का कागज़, तीन जोड़े मोज़े, उसके पतलून में से टूटे दो-तीन बटन, और वह पुराना लबादा, जिससे पाठक भली-भाँति परिचित हो चुके हैं। यह सब कुछ किसे मिला, यह तो भगवान ही जाने : और सच पूछिये तो इस कहानी कहने वाले ने इसमें कोई दिलचस्पी भी नहीं दिखायी है। अकाकी अकाकियेविच की लाश को ले जाकर क़ब्र में लिटा दिया गया और सेण्ट पीटर्सबर्ग की ज़िन्दगी उसके बिना भी उसी तरह चलती रही जैसे उसका कभी अस्तित्व ही न रहा हो। उस जीव का कोई नाम-निशान भी बाक़ी नहीं रहा, जिसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं था, जिससे किसी को प्यार नहीं था, जिसमें किसी को कोई दिलचस्पी नहीं थी, यहाँ तक कि वह किसी ऐसे प्रकृति-विज्ञानी का भी ध्यान आकर्षित नहीं कर पाया था जो बड़ी उत्सुकता से इस अवसर की ताक में रहता है कि पिन पर मामूली मक्खी को लगाकर माइक्रोस्कोप से उसका अध्ययन करे; वह जीव जिसने बड़ी विनम्रता से अपने साथ काम करने वाले क्लर्कों के उपहास को सहन किया था और जो किसी भी बड़ी उपलब्धि का श्रेय प्राप्त किये बिना अपनी क़ब्र में चला गया था, लेकिन जिसका अभागा जीवन अन्तिम समय से कुछ ही पहले नये ओवरकोट के रूप में एक प्रदीप्त अभ्यागमन की बदौलत एक संक्षिप्त क्षण के लिए आलोकित हो उठा था, लेकिन जो उसके बाद ही प्रभुओं और महाप्रभुओं के जीवन की तरह दुर्भाग्य के एक असह्य आघात से नष्ट हो गया था... उसके मरने के कुछ दिन बाद उसके विभाग के चौकीदार को उसके फ़्लैट पर भेजा गया कि यह आदेश उस तक पहुँचा दे कि वह फ़ौरन काम पर चला आये : यही डायरेक्टर का हुक्म था; लेकिन चौकीदार को मजबूर होकर उसके बिना ही लौट आना पड़ा और उसने यह सूचना दी कि अब वह कभी काम पर नहीं आयेगा, और जब उससे पूछा गया कि "क्यों नहीं आयेगा?" तो उसने जवाब दिया, "देखिये, बात यह है कि वह मर चुका है, और तीन दिन पहले उसे दफ़ना भी दिया गया है।" इस तरह उसके विभाग के लोगों को अकाकी अकाकियेविच के मरने का पता चला और अगले ही दिन उसकी जगह पर एक

दूसरे क्लर्क को बिठा दिया गया, जो उससे कहीं अधिक लम्बा था, और जो अपने पत्र एक ओर को झुके हुए अक्षरोंवाली लिखाई में नक़ल करता था जो अकाकी अकाकियेविच के सुडौल-सुथरे अक्षरोंवाली लिखाई से बिल्कुल भिन्न थी।

लेकिन कौन सोच सकता था कि यह अकाकी अकाकियेविच की कहानी का अन्त नहीं था, उसके भाग्य में अपनी मृत्यु के बाद भी कुछ सनसनीख़ेज़ दिनों तक ज़िन्दा रहना लिखा था, मानो यह उसके नीरस जीवन का हर्जाना हो। पर ऐसा हुआ और हमारी यह सपाट कहानी बहुत ही अप्रत्याशित और कल्पनातीत ढंग से समाप्त हुई। सेण्ट पीटर्सबर्ग में अचानक हर तरफ़ ये अफ़वाहें फैलने लगीं कि कालीन्किन पुल के पास और उससे बहुत दूर परे तक रात को एक भूत दिखायी देता है। यह भूत एक अफ़सर के भेस में होता है जो किसी चोरी चले गये ओवरकोट को खोजता रहता है और, ओहदे और रुतबे की कोई परवाह किये बिना, अपना कोट वापस लेने के बहाने हर आदमी के कन्धों पर से कोट उतार लेता है : बिल्ली की खाल और ऊदबिलाव की खाल के अस्तर लगे हुए कोट, रुई-भरे कोट, वाह, लोमड़ी और रीछ की खाल के कोट, मतलब यह कि हर उस तरह के समूर और खाल के कोट जो इन्सान ने ख़ुद अपनी खाल को ढँकने के लिए कभी भी इस्तेमाल किये हैं। विभाग के एक अफ़सर ने उस भूत को ख़ुद अपनी आँखों से देखा था और फ़ौरन पहचान लिया था कि वह अकाकी अकाकियेविच है; लेकिन इस बात से उसके दिल में ऐसा डर समाया कि वह दुम दबाकर भागा और इसलिए उसे अच्छी तरह देख नहीं पाया, वह बस इतना ही देख सका कि वह दूर खड़ा उसकी ओर उँगली हिलाकर उसे धमका रहा था। इस तरह की शिकायतों का ताँता बँध गया कि नागरिकों को – टाइटुलर काउंसिलरों को ही नहीं बल्कि प्रिवी काउंसिलरों तक को – अपनी पीठ और कन्धों पर पाले के कठोर आघात सहने पड़े थे क्योंकि उनके कोट रात को चुरा लिये जाते थे। पुलिस ने हुक्म जारी कर दिया कि किसी भी क़ीमत पर उस भूत को ज़िन्दा या मुर्दा पकड़ लिया जाये और दूसरों को सबक़ सिखाने के लिए उसे कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाये, और वे अपनी इस हिदायत को अमल में पूरा करने में लगभग कामयाब भी हो गये थे। किर्यूश्किन स्ट्रीट पर गश्त करने वाले एक सन्तरी ने अपराध के घटनास्थल पर ही इस मुर्दे की गर्दन उस वक़्त दबोच भी ली थी जब वह किसी बूढ़े रिटायर्ड संगीतज्ञ की पीठ पर से, जो किसी ज़माने में बाँसुरी बजाया करता था, उसका कोट ज़बरदस्ती उतारे ले रहा था। उसकी गर्दन पकड़कर उसने अपने दो साथियों को चिल्लाकर बुला लिया था और उन्हें उस भूत को पकड़े रहने की हिदायत देकर उसने ख़ुद जल्दी से अपने बूट में से नसवार की डिबिया

निकाली थी कि अपनी ज़िन्दगी में छह बार पाला मारी हुई नाक में फिर से जान फूँक दे, लेकिन नसवार ऐसी थी कि मुर्दा भी उसे नहीं बर्दाश्त कर सकता था। सन्तरी ने उँगली से अपना दाहिना नथुना दबाकर दूसरे नथुने में नसवार की एक भरपूर चुटकी अभी चढ़ायी ही थी कि मुर्दे ने उन तीनों के मुँह पर ऐसे ज़ोर की छींक मारी कि उनकी आँखों के आगे धुँध छा गयी। आँखें पोंछने के लिए हाथ उठाने में उन्हें जितना वक़्त लगा उतनी देर में वह मुर्दा ग़ायब हो चुका था, और वे यक़ीन के साथ यह भी नहीं कह सकते थे कि कभी वह उनकी पकड़ में था भी कि नहीं। उसके बाद से सन्तरियों के दिल में मुर्दों का ऐसा डर समाया कि वे ज़िन्दा लोगों पर भी हाथ डालने से कतराने लगे, और वे बस दूर से ही चिल्लाकर कहते थे, "ऐ, कौन है, चलते बनो वहाँ से!" वह मुर्दा अफ़सर कालीन्किन पुल से परे भी दिखायी देने लगा, और सभी डरपोक लोगों के दिलों में अपनी दहशत बिठाने लगा। लेकिन हम उन बड़ी हस्ती के बारे में तो बिल्कुल भूल ही गये जिनकी वजह से हमारी इस कहानी में, जिसके बारे में लगे हाथ हम यह बता दें कि यह बिल्कुल सच्ची कहानी है, यह कल्पनातीत मोड़ आया। सत्य के प्रति हमारी निष्ठा का तक़ाज़ा है कि हम यह बता दें कि इन बड़ी हस्ती को बेचारे बुरी तरह फटकारे गये अकाकी अकाकियेविच के चले जाने के कुछ ही देर बाद एक तरह की ग्लानि महसूस हुई। वह दया की भावना से सर्वथा अपरिचित नहीं थे, उनके हृदय में अनेक प्रकार के सद्भावनापूर्ण उद्गार उठते थे, लेकिन अपने पद का ध्यान करके आमतौर पर वह उन्हें व्यक्त करने से वंचित रह जाते थे। मिलने आने वाले दोस्त के विदा हो जाने के बाद उनका ध्यान अकाकी अकाकियेविच की ओर ही गया। और उसके बाद से लगभग रोज़ ही वह अपनी कल्पना में अकाकी अकाकियेविच को देखते, जो बड़ी हस्ती की डाँट-फटकार को बर्दाश्त नहीं कर पाया। उससे सम्बन्ध रखने वाले विचारों ने उन्हें इतना बेचैन कर दिया कि हफ़्ते-भर बाद उन्होंने एक अफ़सर को अकाकी अकाकियेविच के पास यह मालूम करने के लिए भेजने का फ़ैसला किया कि उसकी मुसीबत क्या थी, और उसकी मदद करने के लिए कुछ किया भी जा सकता था कि नहीं। जब उन्हें सूचना दी गयी कि अकाकी अकाकियेविच तो तेज़ बुख़ार का शिकार होकर परलोक सिधार गया है तो अपने अन्तःकरण की धिक्कार सुनकर उन्हें गहरा आघात पहुँचा, और वह उस पूरे दिन कुछ उखड़े-उखड़े-से रहे। किसी तरह अपना मन बहलाने और इस बोझिल छाप को अपने दिमाग़ से निकाल देने की इच्छा से वह शाम के वक़्त एक दोस्त के यहाँ बिताने के लिए चल पड़े, जिनके घर में उन्हें भले लोगों की सोहबत मिली और सबसे अच्छी बात तो यह थी कि वहाँ सभी लोग एक ही हैसियत के थे, जिसकी वजह से उन्हें किसी

भी प्रकार के संकोच का आभास नहीं हुआ। उनकी मनोदशा पर इसका बेहद अच्छा प्रभाव पड़ा। उनका सारा तनाव दूर हो गया, वह बेहद ख़ुशमिज़ाजी से बातचीत करते रहे, सबके साथ बड़ी मिलनसारी के साथ पेश आये और सारांश यह कि उन्होंने उस शाम का पूरा आनन्द लिया। खाने के वक़्त उन्होंने एक–दो गिलास शेम्पेन के पिये, जो आदमी को ख़ुशमिज़ाज बना देने का जाना–माना तरीक़ा है। शेम्पेन पीकर उनके मन में चुलबुलेपन की तरंग उठी और उन्होंने सीधे घर न जाकर अपनी जान–पहचान की करोलीना इवानोव्ना नामक एक महिला के यहाँ जाने को फ़ैसला किया, जिसके बारे में कहा जाता था कि वह जर्मन मूल की थी, और जिसके साथ उनके बेहद दोस्ताना ताल्लुक़ात थे। यहाँ हम यह बता दें कि वह बड़ी हस्ती अब नौजवान नहीं थे; वह बस अपनी पत्नी के लिए अच्छे पति और अपने बच्चों के लिए अच्छे बाप थे। उनके दोनों बेटे, जिनमें से एक सरकारी नौकरी पर लग चुका था, और उनकी सोलह साल की सुन्दर बेटी, जिसकी नाक आगे से कुछ मुड़ी हुई होने के बावजूद ख़ूबसूरत थी, रोज़ उनका हाथ चूमकर कहते थे "Bonjour, papa!"*। उनकी पत्नी जिनके रंग–रूप में अभी तक काफ़ी ताज़गी थी, और जो किसी तरह अनाकर्षक भी नहीं थीं, पहले उनके चूमने के लिए अपना हाथ उनकी ओर बढ़ाती थीं और फिर उसे उलटकर ख़ुद उनका हाथ चूमती थीं। लेकिन उन बड़ी हस्ती ने इन घरेलू–पारिवारिक प्यार–भरी बातों से पूरी तरह सन्तुष्ट रहने के बावजूद, इस बात को बिल्कुल भद्र समझा कि वह शहर के दूसरे हिस्से में एक महिला के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करें। उनकी जान–पहचान की यह महिला उनकी पत्नी से न तो ज़्यादा सुन्दर थीं और न ज़्यादा जवान ही; लेकिन दुनिया में ऐसी चक्कर में डाल देने वाली बातें होती ही रहती हैं और उनके बारे में कोई फ़ैसला सुनाना हमारा काम नहीं है। तो, वह बड़ी हस्ती सीढ़ियों से नीचे उतरे, अपनी बर्फ़गाड़ी में बैठे और कोचवान को आदेश दिया, "करोलीना इवानोव्ना के यहाँ", और यह कहकर उन्होंने अपने आपको ओवरकोट की सुखद तहों में अच्छी तरह लपेट लिया, और उस मनोदशा में पहुँच गये जिसके लिए रूसी आदमी इतना लालायित रहता है, जब उसे स्वयं कुछ नहीं सोचना पड़ता बल्कि एक–दूसरे से सुखद विचार अनायास ही उसके दिमाग़ में आते रहते हैं और उनकी खोज करने तथा उनका पीछा करने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। सन्तोष की भावना से ओत–प्रोत वह पार्टी के सभी रोचक क्षणों के बारे में, उन सभी चुटकुलों के बारे में सोचने लगे जिनपर उस छोटी–सी मण्डली में क़हक़हे पड़े थे; उनमें से कुछ चुटकुले तो उन्होंने दबी ज़ुबान से अपने आपको सुनाने के लिए दोहराये भी और उन्हें यह पता लगा कि वे पहले जितने ही मज़ेदार थे और

* "नमस्ते, पापा!" (फ़्रांसीसी)

आश्चर्य की कोई बात नहीं कि वह खुद कई बार ज़ोर से हँस भी पड़े। लेकिन कभी-कभी, भगवान जाने कहाँ से और किसलिए, हवा का कोई तेज़ झोंका आकर बीच-बीच में उनके चेहरे पर चाबुक की तरह लगता था, उस पर बर्फ़ की कंकरियों की चुटीली बौछार करता था, उनके कोट के कॉलर को किरमिच के बादबान की तरह फड़फड़ा देता था, या अचानक उनके कोट की कन्धों को ढँकने वाली दोहरी परत को इतने अस्वाभाविक वेग से उड़ाकर उनके सिर पर ला पटकता था कि उनको उससे बाहर निकलने में बेहद परेशानी होती थी और उनका सारा मज़ा किरकिरा हो जाता था। अचानक बड़ी हस्ती ने महसूस किया कि किसी ने मज़बूती से उनकी गर्दन को दबोच लिया है। पीछे मुड़ने पर उन्हें फटी-पुरानी वर्दी पहने एक छोटा-सा आदमी दिखायी दिया, और अकाकी अकाकियेविच को पहचानकर उनका दिल दहल उठा। उस अफ़सर का चेहरा बिल्कुल बर्फ़ की तरह सफ़ेद था, और वह देखने में बिल्कुल लाश जैसा लग रहा था। लेकिन यह देखकर बड़ी हस्ती की दहशत का कोई ठिकाना न रहा कि उस मुर्दा आदमी का चेहरा विकृत हो उठा और उसने अपनी साँस के साथ क़ब्र का भयानक आभास देते हुए ये शब्द कहे –

"अहा! तो तुम हाथ आ ही गये! आख़िरकार एक तरह से तुम्हारी गर्दन मेरे पंजे में आ ही गयी! मुझे तुम्हारे ही ओवरकोट की तलाश थी! तुम मेरी मदद नहीं करना चाहते थे और तुमने उल्टे मुझे फटकारा भी था! तो लाओ, उतार दो अपना कोट!"

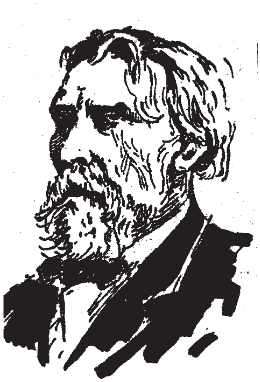
बदनसीब बड़ी हस्ती की तो डर के मारे जान ही निकल गयी। दफ़्तर में और आमतौर पर अपने से नीचे दर्जे के लोगों के साथ अपने चरित्र की दृढ़ता के बावजूद, और अपने तमाम मर्दाना डील-डौल और सूरत-शक्ल के बावजूद, जिन्हें देखकर लोग कह उठा करते थे, "सचमुच, क्या आन-बान का पक्का आदमी है!" – इस वक़्त, बहादुरों जैसी सूरत-शक्ल के बहुत-से दूसरे लोगों की तरह, वह ऐसी दहशत महसूस करने लगे कि उन्हें डर लगा कि कहीं उन्हें कोई दौरा न पड़ जाये। उन्होंने जितनी जल्दी हो सका अपना कोट उतार दिया और कोचवान से अस्वाभाविक स्वर में चिल्लाकर कहा –

"गाड़ी घर की तरफ़ मोड़ लो, जल्दी करो!"

कोचवान ने उनकी वह आवाज़ सुनकर, जो आमतौर पर निर्णय के क्षणों में इस्तेमाल की जाती है और जिसके साथ आमतौर पर कोई इससे भी ज़्यादा ज़ोरदार बात जुड़ी होती है, बड़ी सावधानी बरतते हुए अपना सिर कन्धों के बीच दुबका लिया, चाबुक फटकारी और वे इस तरह सरपट आगे बढ़ चले जैसे कमान से कोई तीर छोड़ दिया गया हो। लगभग छह मिनट में वह बड़ी हस्ती अपने घर के फाटक पर पहुँच चुके थे। करोलीना इवानोव्ना के यहाँ जाने की

योजना त्यागकर, उतरा हुआ चेहरा और दिल में गहरी दहशत का आघात लिये वह कोट के बिना ही अपनी बर्फ़गाड़ी पर घर पहुँचे थे। किसी तरह लड़खड़ाते हुए वह अपने कमरे में घुसे और सारी रात उन्होंने ऐसी बेचैनी में काटी कि अगले दिन सबेरे उनकी बेटी ने उनसे साफ़-साफ़ कहा, "पापा, आज आपका चेहरा बिल्कुल उतरा हुआ लग रहा है।" लेकिन पापा ने अपनी ज़ुबान नहीं खोली और इसके बारे में किसी से एक शब्द भी नहीं कहा कि क्या हुआ था, वह कहाँ गये थे और कहाँ जाने की योजना बना रहे थे। इस घटना का उन पर बेहद गहरा असर पड़ा। उन्होंने अब हर मौक़े पर अपने से नीचे दर्जे के लोगों से यह भी कहना छोड़ दिया था, "तुम्हारी यह मज़ाल? मालूम है किससे बात कर रहे हो?" और अगर कभी वह ऐसा कहते भी थे तो पहले यह सुने बिना नहीं कि दूसरा आदमी कहना क्या चाहता है। लेकिन सबसे कमाल की बात तो यह थी कि उस दिन के बाद से उस अफ़सर का भूत बिल्कुल ग़ायब हो गया; बात बिल्कुल साफ़ थी कि बस जनरल साहब का ओवरकोट उसके बदन पर ठीक आता था। बहरहाल, इसके बाद इस तरह के क़िस्से सुनायी देना बन्द हो गये कि किसी की पीठ पर से उसका कोट उतरवा लिया गया हो। फिर भी, कई ख़ुदाई फ़ौजदार ऐसे थे जो चैन से बैठ ही नहीं सकते थे और वे दावा करते रहते थे कि वह अफ़सर अब भी शहर के दूर-दराज़ हिस्सों में दिखायी देता रहता था। और यह बात बिल्कुल सच है कि कोलोम्ना मोहल्ले के एक सन्तरी ने अपनी आँखों से एक भूत को किसी इमारत के पीछे से निकलते देखा था; लेकिन वह सन्तरी स्वभाव से ही ऐसा दब्बू आदमी था कि जब एक बार मामूली-सा सुअर का बच्चा तेज़ी से बाहर निकलते हुए उससे टकरा गया था तो वह सन्तरी धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा था, जिस पर पास खड़े हुए गाड़ी वाले खिलखिलाकर हँस दिये थे और उनकी इस गुस्ताख़ी पर उसने उन सबसे एक-एक कोपेक जुर्माना वसूल करके उस रक़म से नसवार ख़रीद ली थी। इसी दब्बू सन्तरी को उस भूत को रोकने की हिम्मत नहीं पड़ी और इसके बजाय वह अँधेरे में उसके पीछे-पीछे चलता रहा, यहाँ तक कि भूत अचानक रुका और मुड़कर बोला, "क्या चाहिए तुम्हें?" और यह कहकर उसकी ओर उसने इतना बड़ा मुक्का ताना जैसा आप किसी ज़िन्दा आदमी का नहीं देखेंगे। सन्तरी ने जवाब दिया, "कुछ नहीं," और बड़ी मुस्तैदी से उल्टे पाँव वापस चला गया। लेकिन यह भूत कहीं ज़्यादा लम्बा था, उसकी मूँछें बेहद बड़ी थीं, और वह ओबूख़ोव पुल की ओर बढ़ता हुआ थोड़ी ही देर बाद अँधेरे में खो गया था।

अनु. – मुनीश सक्सेना



इवान तुर्गेनेव

(1818–1883)

रूस के कुछ ऐसे सपूत भी हैं जिनकी स्मृति जन–मानस में अमर होकर रह गयी है। भावी पीढ़ियों का प्यार और आदर–सम्मान पाने वाले ऐसे सौभाग्यशालियों में लेखक इवान तुर्गेनेव भी हैं। अपनी मातृभूमि और उसकी सीमाओं से बहुत दूर तक उन्होंने गद्य में सूक्ष्म गीतिका, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के श्रेष्ठ कलाकार, बढ़िया शैलीकार और शब्दों के सच्चे जादूगर की ख्याति प्राप्त कर ली है। तुर्गेनेव बहुत बड़ी साहित्यिक थाती छोड़ गये हैं – छह उपन्यास – 'रूदिन', 'कुलीन घराना', 'पिता और पुत्र' 'पूर्ववेला में', 'अंकुर', 'धुआँ', अनेक लघु–उपन्यास और कहानियाँ, नाटक और गद्य–कविताएँ।

'शिकारी की कहानियाँ' (1847–1852) नाम से प्रकाशित प्रारम्भिक कहानियों और शब्दचित्रों में तुर्गेनेव ने रूसी किसान के उच्च मानसिक लक्षणों और गुणों को दिखाया है।

'मूमू' कहानी (1852) अपने जनवादी उत्साह की दृष्टि से 'शिकारी की कहानियाँ' के निकट है।

उपसंहार

भोजन के दौरान में, मानो पहले से ही यह मन-ही-मन तय हो, दोनों ने अपनी ख़ामोशी तोड़ी, लेझ़नेव और रूदिन ने बोलना शुरू किया – उन दिनों के बारे में जब कि वे छात्र थे। अनेक घटनाओं की उन्हें याद आयी, अनेक लोग उनकी आँखों के सामने उभरे, जो मर गये थे वे भी और जो जीवित थे वे भी। शुरू-शुरू में रूदिन कुछ चुप था, लेकिन कई गिलास ढालने के बाद उसके ख़ून की रवानी तेज़ हुई, और उसमें भी गरमायी आ गयी। बैरा ने आख़िरी तश्तरी लाकर रखी। लेझ़नेव उठा, दरवाज़े को बन्द किया, ठीक रूदिन के सामने वाली सीट पर जम गया और निश्चल भाव से, अपनी ठोड़ी को हथेलियों पर टिकाकर बैठ गया।

"हाँ, तो अब," उसने कहना शुरू किया, "पिछली बार जब हम मिले थे, तब से अब तक क्या-क्या तुम पर गुज़री, सब बताओ।"

रूदिन ने लेझ़नेव की ओर देखा।

"देखो न," लेझ़नेव ने मन-ही-मन फिर सोचा, "कमबख़्त क्या से क्या बन गया है!"

रूदिन का नाक-नक़्श अभी भी बहुत कुछ वैसा ही था, हालाँकि ढलती हुई उम्र ने उन पर अपनी छाया डालनी शुरू कर दी थी; लेकिन उनका भाव बदला हुआ था। उसकी आँखों में अब वह चमक नहीं थी और उसका समूचा अस्तित्व – उसके हरकत करने का ढंग, कभी गिरा-मरा-सा और कभी झटके खाता हुआ, उसका बोलना-चालना जिसमें अब वह पहले वाली आग नहीं थी और ऐसा मालूम होता था मानो वह खण्डित हो गया हो – एक निपट थकान और ऊब का, एक ऐसे निश्चल और छिपे हुए शोक का परिचय देता था जो आशा और अनगढ़ आत्मगौरव की भावना में पगे अन्य सभी युवकों की भाँति उस अध-बनावटी उदासी से सर्वथा भिन्न था जिसकी कि वह एक समय नुमाइश किया करता था।

"तुम वह सब सुनना चाहते हो जो मेरे साथ बीती," रूदिन ने कहा, "लेकिन

मैं तुम्हें वह सब नहीं बता सकता, न ही इसकी ज़रूरत है... मैंने बहुत कुछ सहा है, बहुत दूर-दूर तक मैं भटका हूँ, केवल शारीरिक रूप में ही नहीं बल्कि आत्मिक रूप में भी। भगवान ही जानता है, कितनी निराशाओं का मैंने सामना किया है, लोगों और चीज़ों से टकराकर कितनी बार मेरी आशाएँ, मेरे भ्रम, चकनाचूर हुए हैं। अन्तहीन लगाव – हाँ, अन्तहीन!" उसने दोहराया, यह जानकर कि लेझ़नेव असाधारण सहानुभूति से उसकी आँखों में देख रहा है। "न जाने कितनी बार मुझे ख़ुद अपने शब्दों से घृणा हुई है, केवल उन शब्दों से ही नहीं जो मेरे होंठों पर उभरे थे, बल्कि उन लोगों के होंठों पर भी जो मेरे विचारों के भागीदार थे। बच्चों की भाँति उत्साह में उबलने-उफनने के बाद न जाने कितनी बार उस घोड़े की-सी संज्ञाहीन निश्चेतनता ने मुझे ग्रस-ग्रस लिया है जो चाबुक पड़ने पर भी अब अपनी दुम तक नहीं हिलाता। न जाने कितनी बार मैंने ख़ुशियाँ मनायी हैं, आशाओं के तूमार बाँधे हैं, लड़ाइयाँ लड़ी हैं और अपने को बेकार ही हीन अनुभव किया है। न जाने कितनी बार साहसी बाज़ की भाँति आगे बढ़कर उस घोंघे की भाँति रेंग कर मैं पीछे हटा हूँ जिसका बाहरी खोल कुचल दिया गया हो। कोई जगह ऐसी नहीं है जहाँ मैं न भटका हूँ, कोई पथ ऐसा नहीं है जिसे मैंने अपने डगों से नापा न हो। और इनमें," नज़र बचाने के लिए रूदिन ने अपना मुँह कुछ फेर लिया था, "गन्दे पथ भी शामिल हैं, श्रीमान..."

"यह श्रीमान क्या बला है?" लेझ़नेव ने बीच में ही टोका। "श्रीमान और श्रीमती पहले कभी इस तरह हमारे बीच में नहीं आते थे, खुलकर हम मिलते और बातें करते थे... आओ, उन दिनों को फिर लौटा लायें, भाईचारे के नाम पर गिलास खनकायें।"

रूदिन चेता, उठकर खड़ा हो गया और उसकी आँखों ने एक ऐसी उड़ती हुई नज़र से देखा जिसकी बोली के सामने शब्द फीके पड़ जाते हैं।

"धन्यवाद, बन्धु, धन्यवाद," उसने कहा, "तुम ठीक कहते हो। आओ भाईचारे के नाम पर जाम उठायें!"

लेझ़नेव और रूदिन ने अपने गिलास ख़ाली कर दिये।

"मालूम है तुम्हें?" मुस्कुराते और श्रीमान सम्बोधन को ताक पर रखते हुए रूदिन ने फिर कहना शुरू किया, "मेरे भीतर एक तरह का कीड़ा है जो बराबर मुझे खरोंचता और खाता रहता है। एक घड़ी के लिए भी वह मुझे चैन नहीं लेने देता। यह मुझे उन्हीं लोगों के ख़िलाफ़ उकसाता है जो शुरू में मेरे असर में थे और इसके बाद..." रूदिन ने इस तरह हाथ हिलाया मानो इसके बाद की बात को काटकर दफ़ा कर रहा हो। फिर बोला, "उस समय जब आख़िरी बार तुमसे भेंट हुई, श्रीमा... तुमसे अलग होने के बाद मैंने बहुत कुछ देखा और बहुत-सी चीज़ों पर हाथ आज़माया... बार-बार मैं जीवन का नया सूत्र पकड़ता, नये सिरे

से उसे शुरू करता – और अब तुम ख़ुद देख सकते हो कि उस सबका हश्र क्या हुआ!"

"असल में अन्तर्बल का तुममें अभाव था," लेझ्नेव ने यह बात इस तरह कही मानो वह सस्वर सोच रहा हो।

"हाँ, अन्तर्बल का अभाव, जैसा कि तुम कहते हो। विधाता ने मुझे निर्माता बनने के लिए नहीं गढ़ा था। फिर, यह तो बताओ, जिस आदमी के पाँव के नीचे कोई ठोस ज़मीन ही न हो, जब आदमी पहले ख़ुद अपनी नींव डालने के लिए मजबूर हो, ऐसी हालत में भला वह निर्माता क्या बन सकता है? अपने सारे कारनामों का – बल्कि यों कहिये कि असफलताओं का – मैं यहाँ बखान नहीं करूँगा। केवल दो या तीन घटनाओं का ही वर्णन करूँगा – अपने जीवन की उन घटनाओं का जब ऐसा मालूम होता था कि आख़िर मेरा सौभाग्य अब खिलना और मुस्कुराना चाहता है, अथवा यह कि जब मैं यह आशा करने लगा था कि अब सफलता दूर नहीं है – लेकिन आशा करना एक बात है, और सफलता मिलना दूसरी..."

रूदिन ने अपने सफ़ेद और छिदरे पड़ चले बालों को हाथ की उसी हरकत से पलटकर सीधा किया जिससे कि वह पहले अपने काले और घने बालों को सीधा किया करता था।

"अच्छा तो सुनो," उसने कहना शुरू किया, "मास्को में एक अपेक्षाकृत अजीब रईस से मेरा वास्ता पड़ा। वह सरकारी नौकरी नहीं करता था, धन की उसके पास बहुतायत थी और बड़ी-बड़ी जागीरों का वह मालिक था। उसकी गहरी धुनों में से एक यह भी थी कि वह विज्ञान से प्रेम करता था – किसी ख़ास विज्ञान से नहीं, बल्कि आमतौर पर विज्ञान-मात्र से। इतने दिन हो गये, लेकिन मैं आज तक नहीं समझ सका कि उसकी इस धुन का आख़िर आधार क्या था – कैसे यह धुन उसमें पैदा हुई। विज्ञान से उसका उतना ही सम्बन्ध हो सकता था जितना कि गाय का ज़ीन से। जिस मानसिक स्तर को वह छूना चाहता था, उसके वह सर्वथा अनुपयुक्त था। वह अच्छी तरह से बोल भी नहीं सकता था। अपनी आँखों को प्रभावशाली ढंग से नचाने और गम्भीर अन्दाज़ में सिर हिलाने के सिवा और कुछ उसके बस का नहीं था। सच कहता हूँ मित्र, उस जैसा ठस और कमज़ोर दिमाग़ मैंने और कहीं नहीं देखा... स्मोलेन्स्क गुबेर्निया (ज़िले) में कई स्थल ऐसे हैं जहाँ रेत और भूली-भटकी घास के सिवा और कुछ नज़र नहीं आता। घास भी ऐसी कि कोई जानवर उसकी ओर रुख़ नहीं करेगा। उस आदमी ने कोई कोशिश बाक़ी नहीं छोड़ी, लेकिन हर बार गहरी निराशा के सिवा और कुछ पल्ले नहीं पड़ा। ऐसा मालूम होता था मानो हर चीज़ उसे चकमा देने और उसकी पकड़ में न आने के लिए क़सम खाये बैठी

हो। और यह ठीक भी था। इसलिए और भी अधिक कि हर सीधी चीज़ को जटिल बनाने का पागलपन उसके सिर पर सवार था। अगर उसका वश चलता तो, विश्वास करो, वह लोगों को एड़ियों से खाना खिलाकर छोड़ता। उसने श्रम किया, लिखा और बिना थके पड़ा। कभी न हार मानने वाले हठ और भयानक लगन से वह विज्ञान के प्रति अपना उत्कट प्रेम–निवेदन करता रहा। उसके दम्भ की कोई सीमा नहीं थी और इच्छा–शक्ति तो उसने लोहे की–सी दृढ़ पायी थी। वह एक निराला, सबसे अलग, जीवन बिताता था और लोगों में एक विचित्र जीव के रूप में विख्यात था।

"मैंने उससे जान–पहचान की – और उसकी मेरे साथ पटरी बैठ गयी। सच पूछो तो उसकी असलियत पकड़ने में मुझे देर नहीं लगी, लेकिन उसकी अन्धी धुन हृदय को छूती थी। इसके अलावा, वह बेहद साधन–सम्पन्न था, और उसके सहारे बहुत कुछ भला तथा वस्तुतः उपयोगी काम किया जा सकता था... सो उसी के साथ मैंने अपना बोरिया–बिस्तर जमाया और अन्त में उसके देहाती इलाक़ों में भी गया। मेरी योजनाओं का, मित्र, कोई वारापार नहीं था, अनेक सुधार करने और नयी लीकें डालने के मैं सपने देखता था..."

"श्रीमती लासुन्स्काया के यहाँ भी तो तुम्हारा यही हाल था," लेझ़नेव ने कहा। उसका चेहरा भली मुस्कुराहट से खिला था।

"अरे नहीं, वहाँ मैं अपने हृदय के अन्तर्तम में जानता था कि बेकार ही मैं अपने शब्द नष्ट कर रहा हूँ, लेकिन यहाँ... यहाँ तो सचमुच मुझे एक शानदार मौक़ा मिला था... खेती सम्बन्धी पुस्तकें मैंने भारी संख्या में बटोरीं – सच तो यह है कि उनमें से एक को भी मैं अन्त तक पढ़ नहीं सका – और काम में जुट गया। शुरू–शुरू में कुछ परेशानी हुई, जैसा मैं चाहता था वैसा नहीं हुआ, लेकिन बाद में गाड़ी ठीक से चलती मालूम होने लगी। मेरा नया मित्र बस चुपचाप देखा करता, कुछ कहता नहीं – मेरे काम में कोई बाधा नहीं देता, कम से कम इस हद तक बाधा तो नहीं ही देता कि उससे मेरे काम को नुक़सान पहुँचे। मेरे सुझावों पर वह अमल भी करता, लेकिन बेमन से, हृदय में एक हठीला और अप्रकट अविश्वास छिपाये हुए और अन्त में अदबदाकर फिर अपने ही रास्ते पर चलने लगता। अपने हर विचार को वह अफ़लातूनी समझता था, और उससे इस तरह चिपका रहता था जैसे ललबुँदिया गुबरैला घास के एक तिनके से चिपका रहता है, उस पर बैठकर अपने पैरों को खुजलाता है, मानो उड़ने की तैयारी कर रहा हो, इसके बाद वह फड़फड़ाकर धरती पर गिर पड़ता है और फिर, नये सिरे से, यही सिलसिला शुरू कर देता है... इन तुलनाओं को ज़रा भी अटपटा न समझना, ये उन्हीं दिनों से मेरे हृदय में चुभन बनकर सताती रही हैं और आज तक दूर नहीं हुई हैं। पूरे दो साल तक मैं वहाँ एड़ियाँ रगड़ता

और जुझता रहा। मैं लाख कोशिश करता, लेकिन काम आगे बढ़ने का नाम ही न लेता। आख़िर मैं इस सबसे ऊब चला। अपने मित्र को देखकर अब मैं झुँझला उठता। मैंने अपना तरकश सँभाला और व्यग्यं बाण छोड़ने शुरू किये। परों की भरन वाले गद्दे में लेटने पर जिस तरह दम घुटता है, उसी तरह वह मेरा दम घोंट रहा था। मुझमें उसके अविश्वास ने एक गूँगे विक्षोभ का रूप धारण कर लिया था। पारस्परिक शत्रुता की एक भावना ने हम दोनों को जकड़ लिया था और किसी भी चीज़ पर शान्ति के साथ बातें करना अब हमारे लिए सम्भव नहीं रहा था। लुके-छिपे तरीक़े से, मेरी योजनाओं को बिगड़ा रूप देकर या उन्हें एकदम रद्द करके, मेरे असर के प्रति अपना विक्षोभ प्रकट करने की वह बराबर कोशिश करता। अन्त में यह चीज़ खुलकर मेरे सामने आ गयी कि मैं उसका एक लटकन-मात्र हूँ जिसे भोजन और पनाह देकर इसलिए रख छोड़ा गया है कि वह ज़मींदार मोशाई की दिमाग़ी कसरत के लिए सामग्री जुटाता रहे। इससे अधिक तीखी और कटु अनुभूति और क्या होगी कि मैं अपना समय और शक्ति नष्ट करता रहा, और यह कि मेरी आशाएँ एक बार फिर टकराकर चकनाचूर हो गयीं। यह मैं जानता था - ज़रूरत से ज़्यादा अच्छी तरह जानता था - कि यहाँ से जाने का मतलब अपने लिए मुसीबत मोल लेना है, लेकिन मेरे लिए और अधिक बर्दाश्त करना सम्भव नहीं था, और एक दिन, एक दुखद और घिनौने दृश्य के बाद, जो मुझे देखना पड़ा और जिसने मेरे मित्र की कलई खोलकर रख दी, आख़िरी बार और हमेशा के लिए मेरा उससे झगड़ा हुआ और उसे छोड़कर चला आया - रूसी आटे और जर्मन शीरे से बने विज्ञान के अवतार उस रईस को धता बताकर..."

"उसे नहीं, बल्कि ऐसा कहो कि अपनी रोटी-रोज़ी को धता बताकर - क्यों?" लेझ़नेव बुदबुदाया और अपने दोनों हाथ उसने रूदिन के कन्धों पर रख दिये।

"हाँ, फिर वही नंगपन और भूख, और आज़ादी से चाहे जहाँ उड़ने के लिए सिर पर सूना आकाश.... लेकिन छोड़ो, आओ, गिलास खनकायें!"

"तुम्हारे स्वास्थ्य के नाम पर!" लेझ़नेव ने उठते हुए और रूदिन का माथा चूमते हुए कहा। "तुम्हारे स्वास्थ्य और पोकोरस्की की स्मृति के नाम पर। वह ग़रीबी सिर लेने का साहस रखता था।"

"हाँ तो यह थी मुहिम नम्बर एक," कुछ देर की ख़ामोशी के बाद रूदिन ने कहा। "लेकिन तुम उकता तो नहीं रहे?"

"नहीं, कहे जाओ!"

"क्या कहूँ, मित्र, कुछ कहने की अब इच्छा ही मर गयी है। बोलते-बोलते मैं थक गया हूँ। अनेक जगहों में भटकने-टकराने के बाद... चाहो तो मैं तुम्हें, यों

ही प्रसंगवश, बता सकता हूँ कि किस प्रकार एक भले शाही पदाधिकारी का मैं सचिव बना और क्या-क्या उसके गुल खिले, लेकिन इस तरह हम बहुत दूर भटक जायेंगे... हाँ तो अनेक कामों का बीड़ा उठाने के बाद मैंने अन्त में निश्चय किया – हँसो नहीं, मित्र – मैंने एक व्यापारी, एक व्यावहारिक आदमी, बनने का निश्चय किया। मैंने कुर्बेयेव नामक एक व्यक्ति से – शायद तुमने उसका नाम सुना हो – जान-पहचान की। क्यों कुछ जानते हो कुर्बेयेव के बारे में?"

"नहीं, मैंने तो उसका नाम कभी नहीं सुना। लेकिन, अचरज होता है रूदिन, कि अपनी इस बुद्धि के बावजूद तुम यह क्यों नहीं समझ सके कि व्यापार करना – इस श्लेषोक्ति का बुरा न मानना – तुम्हारा व्यापार नहीं है?"

"मैं जानता हूँ कि यह मेरा व्यापार नहीं है; और यदि यह मेरा व्यापार नहीं है तो फिर मेरा व्यापार है क्या? लेकिन छोड़ो – ओह, अगर तुमने कुर्बेयेव को देखा होता! यह मत समझना कि वह यों ही कोई ऐरा-ग़ैरा नत्थू-ख़ैरा था। लोग कहते हैं कि मैं बहुत अच्छा बोलता था, लेकिन उसके मुक़ाबले में मैं कुछ नहीं था। उसकी जानकारी देखकर अचरज होता था। बहुत ही पढ़ा-लिखा और, सच कहता हूँ मित्र, व्यापार तथा उद्योग के क्षेत्र में रचनात्मक सूझबूझ का धनी। उसका मस्तिष्क क्या था, अत्यन्त साहसपूर्ण और चकित कर देने वाली योजनाओं का ज़ख़ीरा था। हम दोनों ने अपनी शक्तियाँ एकत्र कर लीं और सार्वजनिक उपयोग के एक काम में जुटने का निश्चय किया..."

"बता सकते हो कि वह काम क्या था?"

रूदिन ने अपनी आँखें नीची कर लीं। बोला :

"सुनकर हँसोगे!"

"क्यों? नहीं, मैं नहीं हँसूँगा।"

"हमने निश्चय किया कि क-आया गुबेर्निया (ज़िले) में एक नदी को जहाज़रानी के उपयुक्त बनाया जाये।" रूदिन ने संकोच भरी मुस्कुराहट के साथ कहा।

"तुमसे ख़ुदा ही बचाये! तो तुम्हारा यह कुर्बेयेव पूँजीपति था?"

"वह मुझसे भी ज़्यादा कंगाल था," रूदिन ने जवाब दिया और सफ़ेद बालों से भरा अपना सिर निराशा से नीचे लटका लिया।

लेझ्नेव ज़ोरों से हँस पड़ा। लेकिन उसने तुरन्त अपने को रोका और रूदिन का हाथ अपने हाथ में लेकर दबोचा।

"मुझे माफ़ करना, मेरे पुराने साथी," उसने कहा, "औचक में मुझसे यह अपराध हो गया। हाँ तो तुम्हारी योजना का क्या हुआ – निश्चय ही काग़ज़ से नीचे नहीं उतरी होगी?"

"एकदम काग़ज़ पर ही तो नहीं रही। हमने उसे अमल में लाना शुरू किया।

हमने मज़दूरों से तय किया और, सच, काम में जुट पड़े। शीघ्र ही तरह-तरह की बाधाएँ सामने आयीं। एक तो यह कि मिल-मालिक ने हमारी योजना का साथ नहीं दिया, उससे भी बढ़कर यह कि बिना मशीनों के नदी को सँभालने का काम चल नहीं सकता था, और हमारे पास जो थोड़ी-बहुत पूँजी थी उससे मशीनें ख़रीदी नहीं जा सकती थीं। छह महीने तक हम मिट्टी की झोपड़ियों में रहे। कुर्बेयेव केवल रूखी रोटी खाकर गुज़र करता था, और मेरे पास भी खाने के नाम पर भूँजी भाँग ही थी। जो हो, मुझे इसका दु:ख नहीं। प्राकृतिक छटा वहाँ की लाजवाब थी। हमने संघर्ष जारी रखा, अपनी योजना में सौदागरों को खींचने की कोशिश की, चिट्ठियाँ और गश्ती पत्र लिखे। आख़िर योजना के पीछे जेब की अन्तिम कौड़ी तक गँवा बैठा मैं।"

"अन्तिम कौड़ी गँवा बैठना कोई कठिन काम नहीं रहा होगा, इसका मुझे पक्का विश्वास है।" लेझ़नेव ने टीप जड़ी।

"हाँ, कठिन तो सचमुच नहीं था।"

रूदिन ने खिड़की से बाहर की ओर देखा। फिर बोला :

"लेकिन, सच कहता हूँ, योजना बुरी नहीं थी। उससे बहुतों का भला होता।"

"कुर्बेयेव का फिर क्या हुआ?" लेझ़नेव ने पूछा।

"वह अब साइबेरिया में है। सोने की खानों का पता लगाने में जुटा है। और देखना, एक दिन उसका भाग्य चमककर रहेगा, वह सफलता प्राप्त करेगा।"

"हो सकता है, लेकिन तुम्हारा भाग्य कभी चमकने वाला नहीं है।"

"मेरा? ओह, जाने दो! बेशक, तुम मुझे सदा से ही निकम्मा समझते आये हो।"

"तुम - और निकम्मे? बस, रहने दो, मित्र। एक ज़माना था जब मैं केवल तुम्हारी कमज़ोरियों का हिसाब रखता था, लेकिन अब - विश्वास करो - तुम्हारी असली क़द्र करना मैं जान गया हूँ। तुम अपना भाग्य चमका नहीं सकोगे... और ठीक इसी के लिए मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, सचमुच प्यार करता हूँ।"

रूदिन धीमे से मुस्कुराया :

"सच?"

"हाँ, ठीक इसी कारण मैं तुम्हारी इज़्ज़त करता हूँ," लेझ़नेव ने अपनी बात दोहरायी। "निश्चय ही तुम मुझे ग़लत नहीं समझ रहे हो।"

कुछ देर तक दोनों चुप रहे।

"क्या मैं अब अपने कारनामा नम्बर तीन का भी ज़िक्र करूँ?"

"ज़रूर।"

"अच्छा तो सुनो। यह मेरा तीसरा और आख़िरी कारनामा है। अभी पिछले दिनों ही मैं उसके क्रिया-कर्म से फ़ारिग हुआ हूँ। लेकिन तुम ऊब तो नहीं रहे हो?"

"नहीं, कहे जाओ।"

"एक दिन," रूदिन ने फिर कहना शुरू किया, "यों ही टल्लानवीसी करते-करते – जिसकी मेरे जीवन में काफ़ी भरमार रही है – मुझे सूझा कि चूँकि मैं – जैसा कि तुम कह सकते हो – पढ़ा-लिखा आदमी हूँ और सबकी भलाई के लिए प्रयत्नशील रहता हूँ – क्यों, क्या तुम यह मानने से इनकार करोगे?"

"हरगिज़ नहीं!"

"अन्य सभी कामों में विफलता के सिवा और कुछ मेरे पल्ले नहीं पड़ा... क्यों न अब एक बार शिक्षाविद, या सीधे-सादे शब्दों में शिक्षक बनकर देख लिया जाये? जीवन को एक तरह नष्ट करने के बजाय –"

रूदिन की आवाज़ एक आह में खोकर रह गयी। कुछ सँभलकर उसने फिर कहना शुरू किया :

"जीवन को इस तरह नष्ट करने के बजाय दूसरों को अपना ज्ञान देने की क्यों न कोशिश करूँ। कौन जाने वे उससे कुछ लाभ उठा सकें। मेरी योग्यताएँ – मैंने मन ही मन कहा – औसत स्तर से ऊँची हैं और विधाता ने मुझे ज़ुबान भी कुछ कम वाचाल नहीं दी है... सो मैंने इस नये काम में जुटने का निश्चय किया। उपयुक्त जगह पाने में मुझे भारी मुसीबत का सामना करना पड़ा। प्राइवेट स्कूल खोलकर मैं बैठना नहीं चाहता था और निम्न शिक्षा के स्कूलों में जाकर मैं करता क्या! अन्त में यहाँ के हाई स्कूल में शिक्षक की जगह पाने में मैंने सफलता प्राप्त की।"

"किस विषय में शिक्षक की?" लेझ्नेव ने पूछा।

"रूसी-साहित्य के शिक्षक की। सच मानो, अब से पहले अन्य कोई काम मैंने इतने उत्साह से शुरू नहीं किया था। नयी पीढ़ी के दिमाग़ों को ढालने की बात सोचते ही मेरा रोम-रोम उमंग से भर जाता। पूरे तीन सप्ताह लगाकर मैंने अपना प्रारम्भिक लेक्चर तैयार किया।"

"तुम्हारे पास उसकी प्रतिलिपि है?" लेझ्नेव ने बीच में ही पूछा।

"नहीं। पता नहीं कहाँ गुम हो गयी। लेकिन लेक्चर अच्छा बन गया था और काफ़ी सफल रहा। सच्ची लगन, सहानुभूति, यहाँ तक कि अचरज से आलोकित उन युवक श्रोताओं के सहृदय चेहरे इस समय भी मेरी आँखों के आगे नाच रहे हैं। मैंने मंच पर पाँव रखा और एक आवेश में सारा लेक्चर सुना गया। मेरा ख़याल था कि वह एक घण्टा खा जायेगा, लेकिन बीस मिनट में ही वह

समाप्त हो गया। इंस्पेक्टर भी उस समय मौजूद था। वृद्ध और दुबला-पतला, आँखों पर रूपहली कमानी वाला चश्मा लगाये हुए। अच्छी तरह सुनने के लिए रह-रहकर वह अपनी गरदन को तान लेता था। लेक्चर ख़त्म करने के बाद जब मैं उछलकर अपनी जगह से उठा तो वह बोला : 'अच्छा रहा। लेकिन कुछ आडम्बरी और अस्पष्ट है, और विषय को बहुत ही कम छूता है।' लेकिन, सच मानो, छात्रों की श्रद्धा भरी नज़रें अन्त तक मेरे साथ लगी रहीं। यही तो वह चीज़ है जो युवावस्था को इतना अद्भुत बनाती है! इसके बाद मैंने अपना दूसरा लेक्चर तैयार किया, फिर तीसरा... और आगे चलकर ज़ुबानी ही लेक्चर देने लगा।"

"और इसमें सफलता भी मिली – क्यों?"

"कोई ऐसी-वैसी नहीं, शानदार सफलता मिली। मेरे हृदय में जो कुछ संचित था, वह सब उनके लिए उड़ेलता रहा। उनमें तीन या चार लड़के तो सचमुच ही अद्भुत थे, बाक़ी निरे बुद्धुओं की भाँति बैठे रहते थे। लेकिन यह मैं स्वीकार करूँगा कि उन लड़कों में से भी जो मुझे समझते थे, कुछ एक कभी-कभी ऐसे सवाल करते थे कि मैं चकरा जाता था। लेकिन इससे मैं विचलित नहीं हुआ। वे सब मुझे चाहते थे। परीक्षाओं में मैं उन्हें पूरे नम्बर देता था। इसके बाद मेरे ख़िलाफ़ साज़िश शुरू हुई – लेकिन नहीं, मैं यह ग़लत कहता हूँ। वह साज़िश नहीं थी – केवल मेरा ही मिज़ाज ठीक नहीं था। मैंने दूसरों को परेशान किया और बदले में ख़ुद भी परेशान हुआ। हाई स्कूल के छात्रों को मैं ऐसे लेक्चर देता था जैसे कि विश्वविद्यालय के छात्रों को भी बिरले ही दिये जाते हैं। उन लेक्चरों से मेरे श्रोता-छात्रों के पल्ले कुछ नहीं पड़ता था... मैं ख़ुद भी तथ्यों से अधूरे-पूरे रूप में ही परिचित था। इसके अलावा मैं उस कार्य-क्षेत्र से भी असन्तुष्ट था जो मेरे लिए नियत किया गया था – और तुम जानते हो कि यही मेरी कमज़ोरी है। मैं उग्र सुधारों के लिए तड़पता था – ऐसे सुधारों के लिए जो, सच मानो, व्यावहारिक और पूरा हो सकने योग्य थे। मैं उन्हें हेडमास्टर की मदद से अमल में लाना चाहता था। वह एक भला और ईमानदार आदमी था, और शुरू में उस पर मेरा असर भी था। उसकी पत्नी ने मुझे मदद दी। सच कहता हूँ मित्र, उस जैसी स्त्रियाँ मैंने अपने जीवन में बहुत कम देखी हैं। वह तीस पार कर चुकी थी, लेकिन भलाई में विश्वास करती थी और पन्द्रह वर्ष की युवती की भाँति उमंग-उछाह में भरकर हर सुन्दर चीज़ से प्रेम करती थी। हर किसी के सामने, चाहे वह कोई भी हो, अपने विश्वासों को प्रकट करने का उसमें साहस था। उसके शुभ उत्साह और उसकी आत्मा की निष्पक्षता को मैं कभी नहीं भूलूँगा। उसकी सलाह से मैंने एक योजना तैयार की... लेकिन तभी बदनाम करके उन्होंने मुझे उसकी नज़रों से

नीचे गिरा दिया। हिसाब के मास्टर ने, जो कि एक तेज़ तुनुकमिज़ाज पित्री टुइयाँ–सा आदमी था और जो पिगासोव की भाँति किसी चीज़ में विश्वास नहीं करता था लेकिन उससे कहीं ज़्यादा योग्य था, मुझे सबसे ज़्यादा नुक़सान पहुँचाया... लेकिन, जब उसकी याद आ ही गयी, तो पहले, यह तो बताओ कि पिगासोव का क्या हाल–चाल है? अभी जीवित है वह?"

"हाँ जीवित है, और शायद तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसने एक शहरी स्त्री से विवाह किया है। अफ़वाह है कि वह उसे ख़ूब पीटती है।"

"वह इसी लायक़ है भी। और हाँ, नटालिया लासुन्स्काया तो अच्छी तरह है?"

"हाँ।"

"और सुखी भी?"

"हाँ।"

रूदिन कुछ देर के लिए ख़ामोशी में डूब गया।

"हाँ तो क्या कह रहा था मैं? ओह, याद आया। हिसाब के मास्टर का ज़िक्र कर रहा था। उसे मुझसे घृणा थी। मेरे लेक्चरों की वह आतिशबाज़ी से तुलना करता था और मेरे हर उस भाव का जो पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होता था, ख़ूब मज़ाक़ उड़ाता था। एक बार सोलहवीं शती के किसी महाकाव्य का हवाला देते हुए मैं कोई ग़लती कर गया। उसने इस ग़लती को पकड़ लिया और ख़ूब उछाला... लेकिन सबसे बुरा तो यह कि उसने मेरी नीयत पर हमला किया। मेरे आख़िरी बुलबुले को उसने मानो पिन गड़ाकर फोड़ दिया। इंस्पेक्टर ने, जिसके साथ शुरू से ही मेरी पटरी नहीं बैठी, हेडमास्टर को उकसाया और वह मेरे ख़िलाफ़ हो गया। फिर क्या था, टक्कर हो गयी। मैंने झुकने से इनकार कर दिया और ग़ुस्से में कुछ का कुछ कर बैठा। मामला अधिकारियों तक पहुँचा और मुझे मजबूरन इस्तीफ़ा देना पड़ा। लेकिन मैंने इतने पर ही बस नहीं की। मैं उन्हें दिखाना चाहता था कि मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जा सकता... लेकिन हुआ यह कि मैं... अब मैं यहाँ, इस नगर में नहीं रह सकता।"

रूदिन चुप हो गया। दोनों मित्र सिर झुकाये बैठे रहे।

रूदिन ने ही पहले ज़ुबान खोली।

"हाँ तो मेरे मित्र," उसने कहा, "अब मैं भी कॅल्त्सोफ़ के इन शब्दों को दोहरा सकता हूँ : 'मेरे यौवन, तूने मुझे इतना सताया कि अब मुक्ति का कोई द्वार मेरे लिए खुला नहीं रहा।'* फिर भी, क्या सचमुच यह कहा जा सकता है कि मैं किसी काम का नहीं हूँ, कि इस धरती पर मैं कुछ नहीं कर सकता?

* आ.वे. कॅल्त्सोफ़ (1809–1842 ई.) रूस के प्रमुख जनवादी कवि हो गये हैं। ये शब्द उनकी "चौराहा" नाम की 1840 ई. में लिखी कविता से लिये गये हैं।

मैंने अक्सर अपने से यह सवाल पूछा है, और अपने–आपको ख़ुद अपनी नज़र में काफ़ी गिरा देने पर भी मैं अपने भीतर ऐसी शक्तियों का अनुभव किये बिना नहीं रह सका हूँ जो कि बिरले ही नज़र आती हैं। तब फिर ये शक्तियाँ क्या बाँझ रहने के लिए हैं? इसके अलावा, तुम्हें याद होगा कि उस समय जब कि हम दोनों विदेश में थे, मैं बनावट और दम्भ से भरा था। यह सच है कि उस समय मैं ख़ुद भी अपनी आकांक्षाओं को पूरी तरह से पहचानता नहीं था, मैं शब्दों का मतवाला था, शब्दों के ही उमंग में उमंगा रहता था, और छायाओं के पीछे भागता था; लेकिन अब – सच मानो – हर किसी के सामने मैं खुलकर ऐलान कर सकता हूँ कि मैं क्या चाहता हूँ। मेरे पास क़तई कुछ भी गोपनीय नहीं है। मैं, गहरे–से–गहरे अर्थों में, पूर्णतया नेक इरादों का आदमी हूँ। परिस्थितियों के सामने झुकने और उनके अनुसार अपने–आपको ढालने के लिए मैं तैयार हूँ। अपने लिए मैं कुछ नहीं चाहता। मैं केवल उस लक्ष्य को पाना चाहता हूँ जो मेरे हृदय के निकटतम है – अर्थात मैं उपयोगी बनना चाहता हूँ, चाहे छोटी–से–छोटी मात्रा में ही क्यों न हो। लेकिन नहीं, यही वह चीज़ है जो मुझसे दूर भागती है। क्यों? वह क्या चीज़ है जो मुझे अन्य लोगों की भाँति जीने और काम–धन्धे से नहीं लगने देती...? ले–देकर यही सपना अब मैं देखता हूँ। लेकिन जैसे ही कोई निश्चित जगह मेरे हाथ लगती है, किसी एक नुक्ते पर मैं स्थिर होना शुरू करता हूँ, तभी भाग्य ठोकर मारकर मुझे वहाँ से गिरा देता है... और अब तो मैं उससे, अपने भाग्य से, डरने लगा हूँ... ऐसा क्यों है? क्या तुम इस पहेली को मेरे लिए हल कर सकते हो?"

"सचमुच यह एक विकट पहेली है।" लेझ्नेव ने दोहराते हुए कहा। "यही क्या, तुम ख़ुद भी मेरे लिए सदा एक पहेली रहे हो। युवावस्था तक में, उस समय जब तुम किसी ओछी बात से विक्षुब्ध होकर सहसा बोलना शुरू करते थे और मैं मुग्धभाव से तुम्हें देखता रहता था, और इसके बाद फिर वैसे ही... तुम तो सब जानते हो... उस समय भी मैं तुम्हें नहीं समझ पाता था और इसीलिए मैं तुम्हें नापसन्द करने लगा। तुम्हारी शक्तियाँ इतनी बड़ी हैं, आदर्श के लिए तुम्हारी लगन इतनी अडिग और अनथक है..."

"शब्द... निरे शब्द... अमल कुछ नहीं।" रूदिन बीच में ही बोल उठा।

"अमल? अमल के नाम पर उस समय हम कर भी क्या सकते थे...?"

"क्यों नहीं? हम काम कर सकते थे और किसी अन्धी वृद्धा तथा उसके समूचे परिवार का पालन कर सकते थे – वैसे ही जैसे कि, तुम्हें याद होगा, प्रयाझेन्त्सोव करता था। यही है वह जिसे कुछ करना कहा जा सकता है।"

"ठीक है, लेकिन शुभ शब्द भी तो एक कृत्य है।"

रूदिन ने ख़ामोश नज़रों से लेझ्नेव की ओर देखा और धीरे से अपना सिर

हिलाया। लेझ्नेव कुछ कहने जा रहा था, लेकिन रुक गया और चेहरे पर उसने हाथ फेरा। अन्त में पूछा :

"और अब – क्या तुम अपने गाँव जा रहे हो?"

"हाँ।"

"लेकिन क्या अब भी वहाँ तुम्हारी मिल्कियत है?"

"ओह, थोड़ा-सा हिस्सा बचा है। गिनती के दो-चार या ऐसे ही कुछ दास और मरने के लिए एक कोना। तुम शायद इस क्षण सोचते होगे कि सुन्दर शब्दों के प्रयोग से अब भी मैं बाज़ नहीं आता! सच पूछो तो इन शब्दों ने ही मुझे नष्ट किया है, और आज दिन तक मैं उनसे अपना पल्ला नहीं छुड़ा सका। लेकिन इस समय जो मैंने कहा, वह कोरा शब्द-जाल नहीं है। मेरे ये सफ़ेद बाल, चेहरे की ये झुर्रियाँ, ये चिन्दी-चिन्दी हुई कोहनियाँ – इन्हें क्या निरे शब्द कहा जा सकता है? तुमने हमेशा मुझे कड़ी, लेकिन सही नज़र से जाँचा है। वह सब अब – इस समय जबकि सब कुछ चुक गया है, जब कि दीये में तेल नहीं रहा और बत्ती की आख़िरी लौ टिमटिमा रही है... मृत्यु, मेरे मित्र, सब उलझने सुलझा देगी..."

लेझ्नेव बैठा नहीं रह सका। अचकचाकर उठ खड़ा हुआ।

"रूदिन!" उसने चिल्लाकर कहा, "इतनी कड़वी बात तुम कैसे कह सके? क्या मैं इसी के योग्य हूँ? और मैं कैसा पारखी माना जाऊँगा, कैसा आदमी समझा जाऊँगा, अगर धँसे हुए गालों और झुर्रियों को देखकर 'सुन्दर शब्दों' की बात सोचने लगूँ? तुम अपने बारे में मेरी राय जानना चाहते हो? सुनो, मैं बताता हूँ। तुम्हारा चित्र मेरी आँखों के सामने है और मैं सोचता हूँ कि अपनी योग्यता के बल पर यह आदमी अगर चाहे तो सभी कुछ पा सकता है, दुनिया-भर की धन-सम्पदा का स्वामी बन सकता है। लेकिन वह चाहे तब न? उसे तो भूखों मरना पसन्द है, बेघरबार भटकना पसन्द है..."

"मुझे देखकर तुम्हें तरस आता है – क्यों?" रूदिन ने पूछा।

"नहीं, तुमने ग़लत समझा। मैं तुम पर तरस नहीं खाता, तुम्हारा आदर करता हूँ – और बस। वह क्या चीज़ थी जिसने तुम्हें साल-हा-साल उस ज़मींदार के पास टिकने नहीं दिया जो, मेरा निश्चित विश्वास है कि थोड़ी-सी लल्लो-चप्पो करने पर तुम्हें मज़े की ज़िन्दगी बिताने योग्य बना देता? हाई स्कूल में तुम्हारी पटरी क्यों नहीं बैठ सकी और क्यों, अजीब आदमी, तुम्हारी हर योजना ने जिसमें तुम जुटे – चाहे जिस नीयत से भी जुटे – तुम्हें नंगा-भूखा ही बनाया, अपने निजी हितों का ही तुमने बलिदान किया, और ग़ैर धरती में – चाहे वह कितनी ही ज़रखेज़ क्यों न रही हो – तुम बराबर जड़ें जमाने से इंकार करते रहे?"

"मेरे पाँव में सनीचर है, मित्र!" उदासी से मुस्कुराते हुए रूदिन ने कहा। "भटकने के लिए ही मैंने जन्म लिया था।"

"माना, लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि तुम्हारे भीतर कोई कीड़ा है – जैसा कि तुम ख़ुद कहते हो... कोई कीड़ा नहीं, काहिली में पनपने वाली बेचैनी की कोई भावना नहीं, बल्कि तुम्हारे हृदय में सत्य के प्रति अग्निमय प्रेम की लौ जल रही है, और उन लोगों के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा तेज़ी से जल रही है जो अपने अहम् को नहीं देख पाते और तुम्हें शायद दुस्साहसी की संज्ञा देते हैं। अगर तुम्हारी जगह मैं होता तो अपने भीतर के उस कीड़े को बहुत पहले ही मैंने ख़त्म कर दिया होता और हर चीज़ से मैं समझौता कर लेता। लेकिन तुम हो कि तुम्हारे हृदय में इस सबके प्रति कड़वाहट तक ने सिर नहीं उभारा, और मेरा विश्वास है कि आज भी, युवकों जैसी तत्परता और उमंग से तुम फिर किसी नये काम का बीड़ा उठाते नज़र आ सकते हो।"

"नहीं मित्र, अब मैं थक गया हूँ," रूदिन बुदबुदाया। "बस, बहुत हो चुका।"

"थक गये हो! और कोई होता तो कभी का टें बोल गया होता। मृत्यु, तुम कहते हो, सभी उलझनों को सुलझा देगी। लेकिन यही बात क्या जीवन के लिए भी सच नहीं है? वह जो जीवित रहा है और जिसने अपने सहजीवियों के प्रति सहनशील होना नहीं सीखा है, ख़ुद भी सहनशीलता की आशा नहीं रख सकता। और कौन कह सकता है कि वह दूसरों की सहनशीलता को ताक़ पर रखकर चल सकता है? तुम जो कर सकते थे, तुमने किया। अन्त तक तुम जूझे और जूझते रहे. .. इसके सिवा तुम और क्या करते? हमारे रास्ते जुदा हुए और – "

"तुम, मेरे मित्र, सर्वथा भिन्न कैण्डे के आदमी हो," रूदिन ने एक गहरे निःश्वास के साथ बीच में ही टोका।

"हाँ, हमारे रास्ते जुदा हुए," लेझ़नेव कहता गया, "और यह शायद ठीक इसीलिए कि अपने वैभव, कुनकुने रक्त तथा अन्य भाग्यवान परिस्थितियों की बदौलत आराम से गोदी में हाथ रखे मैं दर्शक के आसन पर बैठ सकता था – कोई चीज़ ऐसी नहीं थी जो मुझे ऐसा करने से रोकती। इसके प्रतिकूल तुम्हें मैदान में उतरकर, अपनी आस्तीनें चढ़ाकर काम करना पड़ा। हमारे रास्ते जुदा हुए... लेकिन देखो न, हम दोनों एक-दूसरे के कितने निकट हैं। क़रीब-क़रीब समान भाषा का हम प्रयोग करते हैं, एक-दूसरे की बात को तुरन्त समझ लेते हैं, और एक-से आदर्शों को लेकर बड़े हुए हैं। पुराने चावलों में गिने-चुने ही अब हम बाक़ी बचे हैं; तुम और मैं ही तो पुराने जाँबाज़ों में से अब बचे रह गये! पुराने दिनों में हम मतभेद भी रखते थे और आपस में एक-दूसरे से टकरा तक जाते थे। तब समूचा जीवन हमारे सामने फैला हुआ था। लेकिन, अब जब कि हमारी पाँतें छीज रही हैं, और भिन्न आदर्शों से अनुप्राणित नयी पीढ़ियाँ हमें छोड़कर आगे बढ़ी जा रही हैं, हमें पहले से कहीं ज़्यादा मज़बूती से एक-दूसरे

का हाथ पकड़ना चाहिए। आओ, पुराने साथी, हम गिलास खनकायें, और आओ, ख़ुशी मनायें, अपना वही पुराना तराना छेड़ें।"

दोनों मित्रों ने अपने गिलास खनकाये और गहरी भावुकता के साथ, बेसुरी आवाज़ तथा श्रेष्ठतम रूसी अन्दाज़ में, छात्रों का पुराना तराना गाया।

"तो अब तुम अपने गाँव जा रहे हो!" लेझ़नेव ने कहा। "लेकिन एक घड़ी के लिए भी मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि तुम अधिक दिनों तक वहाँ टिकोगे। साथ ही यह कल्पना करना भी मेरे बूते से बाहर है कि कहाँ और कैसे तुम्हारा अन्त होगा। लेकिन एक बात याद रखना। वह यह कि चाहे जो भी घटना तुम्हारे साथ घटे, तुम्हारे लिए एक जगह, एक घोंसला, मौजूद है जहाँ तुम शरण ले सकते हो। मेरा मतलब अपने घर से है... क्यों, सुन रहे हो न, पुराने साथी! ज्ञान के क्षेत्र में भी तो थके-हारे लोग होते हैं; उनके लिए भी तो कोई ठिकाना होना ही चाहिए।"

रूदिन उठकर खड़ा हो गया।

"धन्यवाद, मेरे पुराने मित्र, धन्यवाद!" उसने कहा। "तुम्हारी यह बात कभी नहीं भूलूँगा। कहना केवल इतना ही है कि मैं इस योग्य हूँ नहीं। ग़लत ढंग से मैंने अपने जीवन को व्यय किया, और ज्ञान की जितनी और जैसी सेवा मुझे करनी चाहिए थी, कर नहीं सका..."

"बस करो!" लेझ़नेव चिल्लाया। "प्रकृति जैसा जिसे बनाती है, वैसा ही रहता है वह। उससे अधिक की आशा नहीं की जा सकती। तुम अपने को घुमक्कड़ यहूदी कहा करते थे – क्या पता, तुम्हारे भाग्य में अन्तहीन घूमना ही बदा हो, और शायद तुम अनजाने में किसी दैवी उद्देश्य को पूरा कर रहे हो। बड़े बूढ़ों का यह कहना बेकार ही नहीं है कि हम सब ख़ुदा की हाथों में हैं। लेकिन यह क्या – जा रहे हो तुम?" रूदिन को अपना टोप उठाते देखकर लेझ़नेव ने पूछा। "क्या आज की रात भी यहाँ नहीं बिताओगे?"

"नहीं, मैं जा रहा हूँ। अच्छा तो अब विदा दो, मित्र, तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद। मेरा अन्त बुरा होगा, यह मैं साफ़ देख रहा हूँ।"

"ख़ुदा के सिवा यह और कोई नहीं जानता। लेकिन तुम इसी समय, अभी, जाने पर तुले हो?"

"हाँ। अब विदा दो। प्यार से याद करना मेरी।"

"अच्छी बात है। तुम भी मुझे भूलना नहीं, स्नेह देना... और मैंने जो कहा, वह याद रखना।"

दोनों मित्र एक-दूसरे से गले मिले। रूदिन तेज़ी से बाहर चला गया।

लेझ़नेव, बड़ी देर तक डगों से कमरे को नापता रहा, इसके बाद खिड़की के पास खड़ा हो गया, विचारों की गहराइयों में डूबा हुआ, और बुदबुदाया :

"बेचारा...!"

इसके बाद वह मेज़ पर आकर बैठ गया और अपनी पत्नी को पत्र लिखने लगा।

बाहर हवा तेज़ हो आयी थी, बुरी तरह चीख़ और सनसना रही थी, और खड़खड़ाती हुई खिड़कियों पर थपेड़े मार रही थी। जाड़ों की काटे न कटने वाली रात गहरी हो रही थी। भाग्यवान हैं वे जिनके पास ऐसी रातों में सिर छिपाने के लिए उनके घरों की छत या कोई गरम कोना मौजूद हैं... और ख़ुदा मदद करे उनकी जो बेघरबार ख़ानाबदोशी का जीवन बिताते हैं!

पेरिस में छब्बीस जून सन् 1842 को दोपहर के समय, जबकि दमघोंट गरमी पड़ रही थी और 'राष्ट्रीय वर्कशापों' के विद्रोह के दमन का कार्य अपने आख़िरी दौर में था, पैदल सेना की एक नियमित टुकड़ी फ़ौबूर सेन्तान्त्वान (सन्त आन्त्वान के पड़ोस) की तंग गली की बैरीकेड पर आक्रमण कर रही थी। तोप के कुछ गोले बैरीकेड को पहले ही तोड़ चुके थे; उसके बचे-खुचे रक्षक उसे छोड़कर जा रहे थे, अपनी जान बचाकर निकल भागने के सिवा इस समय उनके दिमाग़ में और कुछ नहीं था। सहसा बैरीकेड की एकदम चोटी पर, एक उलटी हुई बस के तोड़े-मरोड़े ढाँचे के ऊपर, लम्बे क़द का एक आदमी प्रकट हुआ। वह लाल गोट लगा एक पुराना चोग़ेदार कोट और अपने बिखरे हुए सफ़ेद बालों पर सींकों का टोप पहने था। उसके एक हाथ में लाल झण्डा था, और दूसरे में एक खुट्टल तलवार। तनी हुई तेज़ आवाज़ में जाने क्या चिल्लाता हुआ वह ऊपर, और ऊपर, चढ़ रहा था और अपने झण्डे तथा तलवार को फहरा रहा था। एक विनसेन्नी पैदल सैनिक ने उसकी सीध में निशाना साधा – और गोली दाग़ दी... लम्बे आदमी के हाथ से झण्डा छूट गया और वह बोरे की भाँति मुँह के बल इस तरह गिर पड़ा मानो किसी के चरणों पर लोटा जा रहा हो... गोली उसके हृदयस्थल को भेदकर पार हो गयी थी।

"त्येन!" (सुन रे!) बचकर भागता हुआ एक विद्रोही सैनिक दूसरे से कह रहा था, "ओं वियें द्यत्वी ल्य पोलोने!" (देख, उस पोल का वध कर डाला उनने!)

"बिग्र!" (जहन्नुम में जाये, हमें क्या पड़ी है!) दूसरे ने जवाब में कहा और दोनों एक घर के तहख़ाने में, जिसकी खिड़कियाँ बन्द थीं और दीवारें गोलियों और तोप के गोलों की मार से छलनी हो चुकी थीं, तेज़ी से घुस गये।

वह पोलोने (पोलैण्डवासी) दिमित्री रूदिन ही था!

अनु. – नरोत्तम नागर

मूमू

1

मास्को की एक अलग-थलग सड़क पर सफ़ेद स्तम्भों, अटारी और टेढ़े-मेढ़े छज्जे वाले भूरे मकान में अनेक नौकरों-चाकरों से घिरी हुई कभी एक विधवा ज़मींदारिन रहती थी। उसके बेटे पीटर्सबर्ग में काम करते थे, बेटियाँ घर-बार वाली हो चुकी थीं, वह ख़ुद कभी-कभार ही कहीं जाती और अपने दु:खों तथा ऊबभरे बुढ़ापे के आख़िरी साल एकाकीपन में गुज़ार रही थी। ख़ुशी तो उसने अपनी सारी ज़िन्दगी में ही नहीं जानी थी और उसका बुढ़ापा तो और भी उदासीभरा था।

उसके नौकरों-चाकरों में सबसे कमाल का आदमी था अहाते की देखभाल करने वाला गेरासिम। कोई दो मीटर क़द, बिल्कुल पहलवान जैसा और जन्मजात गूँगा-बहरा। ज़मींदारिन ने उसे गाँव से, जहाँ वह भाइयों से अलग एक छोटे-से झोपड़े में रहता था और बड़ी पाबन्दी से ज़मीन का लगान देता था, अपने यहाँ बुलवा लिया था। असाधारण रूप से तगड़ा होने के फलस्वरूप वह अकेला चार आदमियों का काम करता। काम तो उसके हाथों में सदा बड़ी फ़ुर्ती से सिरे चढ़ता नज़र आता। हल पर बड़ी-बड़ी हथेलियाँ रखकर जब वह उसे चलाता तो देखकर मन खिल उठता और ऐसे लगता मानो वह घोड़े के बिना अकेला ही ज़मीन की छाती को चीरता चला जा रहा है। या फिर सेण्ट प्योत्र के दिन वह ऐसे ज़ोर से हँसिया चलाता कि अगर नौउम्र भोज वृक्षों का जंगल भी सामने आ जाता, तो वह भी जड़ से कटकर गिरता दिखायी देता, या फिर वह कोई दो मीटर लम्बे मूसल से जल्दी-जल्दी तथा लगातार अनाज कूटता और उसके कन्धों की लम्बी-लम्बी तथा मज़बूत पेशियाँ लीवर की तरह ऊपर उठतीं और नीचे गिरतीं। स्थायी मौन उसके अथक कार्य को विशेष गरिमा प्रदान करता। बहुत बढ़िया मर्द था वह और अगर बदक़िस्मती से गूँगा-बहरा न होता, तो कोई भी लड़की ख़ुशी से उसकी बीवी बन जाती... तो गेरासिम को मास्को लाया

गया, उसके लिए घुटनों तक के बूट ख़रीद दिये गये, गर्मियों के लिए कुर्ता और जाड़े के लिए भेड़ की खाल का कोट सिलवा दिया गया, हाथ में झाड़ू और फावड़ा थमाकर उसे अहाते की देखभाल के लिए नियुक्त कर दिया गया।

गेरासिम को शुरू में अपनी नयी ज़िन्दगी बिल्कुल अच्छी नहीं लगी। बचपन से वह खेत में काम करने और देहाती ढंग की ज़िन्दगी बिताने का आदी हो चुका था। अपने दुर्भाग्य के कारण लोगों की सोहबत से कटा-कटाया वह गूँगा और ऐसे हृष्ट-पुष्ट होकर बढ़ गया जैसे उपजाऊ भूमि में पेड़ बढ़ता है... शहर में आकर बसने पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसके साथ क्या बीत रही है। उसका मन नहीं लगता था और ऐसे ही परेशान-सा रहता जैसे वह जवान और तगड़ा साँड़, जिसे अभी-अभी खेत से लाकर, जहाँ रसीली घास उसके पेट तक उगी हुई थी, रेल के डिब्बे में खड़ा कर दिया जाता है और उसके मोटे-ताज़े शरीर पर कभी तो चिंगारियों के साथ धुआँ और कभी भाप के लहरे छोड़े जाते हैं और खट-खट की आवाज़ और इंजन की सीटियों के साथ तेज़ी से कहीं ले जाया जाता है। मगर किधर ले जाया जाता है – यह सिर्फ़ भगवान ही जानता है!

किसानी के कठिन काम के बाद गेरासिम को अपना नया काम मज़ाक़-सा लगा। आधा घण्टे में ही वह सब कुछ निपटा डालता और फिर या तो मुँहबाये अहाते के बीचोबीच खड़ा हुआ सभी राहगीरों को देखता रहता, मानो उनसे अपनी रहस्यपूर्ण स्थिति का समाधान चाहता हो, या फिर अचानक वह किसी कोने में चला जाता और झाड़ू तथा फावड़े को दूर फेंककर ज़मीन पर औंधा गिर जाता और जाल में फाँस लिये गये जानवर की तरह घण्टों इसी तरह निश्चल पड़ा रहता। मगर आदमी तो हर चीज़ का आदी हो जाता है और आख़िर गेरासिम भी शहरी जीवन का अभ्यस्त हो गया। काम उसके इने-गिने थे। उसे सिर्फ़ इतना ही करना होता था कि अहाते को साफ़-सुथरा रखे, दिन में दो बार पानी का पीपा भर लाये, घर और रसोईघर के लिए लकड़ी ढोये-काटे, अजनबियों को घर के पास न फटकने दे और रातों को पहरा दे। यह तो कहना ही होगा कि अपनी ज़िम्मेदारियों को वह बड़ी लगन से पूरा करता था – अहाते में तो कभी कोई छिपटी पड़ी दिखायी न देती और न कूड़ा-करकट ही। पानी लाने के लिए दिया गया मरियल-सा घोड़ा और ख़स्ताहाल गाड़ी कीचड़-गन्दगी के मौसम में अगर कहीं अटक जाती, तो उसे कन्धे से धकेलने पर गाड़ी ही नहीं, घोड़ा भी अपनी जगह से हिल पड़ता। अगर वह लकड़ी काटने लगता, तो कुल्हाड़ी शीशे की तरह टनकती और लकड़ी के टुकड़े तथा चैलियाँ सभी दिशाओं में उड़ती दिखायी देतीं। रही अजनबियों के घर के पास फटकने की बात, तो उस रात के बाद जब उसने दो चोरों को पकड़कर उनके माथे आपस में टकराये, सो भी ऐसे

कि बाद में उन्हें थाने ले जाने की भी ज़रूरत नहीं रही, तो आस-पास के क्षेत्र में उसकी ऐसी धाक जम गयी कि कुछ पूछिये नहीं। यहाँ तक कि दिन के वक़्त भी इस घर के पास से गुज़रने वाले, सो भी उचक्के-उठाईगीरे नहीं, बल्कि सामान्य अपरिचित लोग, अहाते की देखभाल करने वाले इस डरावने व्यक्ति को देखते ही हाथ हिलाकर उसे दूर रहने का इशारा करते और चीख़ते-चिल्लाते जैसे कि वह उनकी चीख़ों को सुन सकता हो। बाक़ी नौकरों-चाकरों से उसके सम्बन्ध दोस्ताना तो नहीं कहे जा सकते थे - वे उससे डरते थे - हाँ, सधे-बधे थे - वह उन्हें अपना मानता था। वे इशारों से उसे अपनी बात समझाते, जिसे वह समझ भी जाता। सभी आदेशों को कड़ाई से पूरा करता, मगर अपने अधिकार भी जानता था। मेज़ के गिर्द कोई भी उसकी जगह पर बैठने की जुर्रत नहीं कर सकता था। कुल मिलाकर, गेरासिम बड़े कठोर और गम्भीर स्वभाव का आदमी था, हर चीज़ में उसे तौर-तरीक़ा पसन्द था। उसकी उपस्थिति में तो मुर्ग़े भी लड़ने की हिम्मत नहीं करते थे, वरना उनकी शामत समझो! अगर वह उन्हें लड़ते हुए देख लेता, तो फ़ौरन टाँगों से पकड़कर कोई दसेक बार हवा में घुमाता और अलग-अलग दिशाओं में फेंक देता। ज़मींदारिन के यहाँ हंस भी पाले जाते थे। मगर, जैसा कि सभी जानते हैं, हंस बड़ा गर्वीला और समझदार पक्षी है। गेरासिम उनका आदर और देखभाल करता, उन्हें खिलाता-पिलाता। वह ख़ुद भी तो हंस जैसा गर्वीला था। रसोईघर के ऊपर उसे कोठरी दी गयी। अपनी पसन्द के मुताबिक़ उसने उसे सजाया - उसमें बड़े-बड़े चार पायोंवाली बलूत के तख़्तों की चारपाई बनायी। वह सचमुच ही बड़ी मज़बूत चारपाई थी - सौ पूड* वज़न भी अगर उस पर रख दिया जाता तो भी वह न झुकती। चारपाई के नीचे बड़ा-सा सन्दूक़ रखा था; कोने में ऐसी ही मज़बूत मेज़ थी और मेज़ के क़रीब तीन टाँगों वाली कुर्सी रखी थी, ऐसी मज़बूत और गठी हुई कि गेरासिम कभी-कभी उसे उठाकर नीचे गिरा देता और मुस्कुराने लगता। कोठरी में काले रंग का ताला लगाया जाता जो देखने में कुण्डल-सा लगता। गेरासिम इसकी चाबी हमेशा अपनी पेटी में खोंसे रहता। अपने यहाँ लोगों का आना-जाना उसे पसन्द नहीं था।

2

इस तरह से एक साल बीत गया, जिसकी समाप्ति पर गेरासिम के साथ एक छोटी-सी घटना घट गयी।

---

* पूड - 16.3 किलोग्राम के बराबर। - सं.

बूढ़ी ज़मींदारिन, जिसके यहाँ गेरासिम अहाते की देखभाल करता था, सभी बातों में पुराने रंग-ढंग का अनुसरण करती थी और उसके नौकरों-चाकरों की संख्या काफ़ी बड़ी थी। उसके घर में केवल धोबिनें, सीने-पिरोने वाली, बढ़ई, दर्ज़ी-दर्ज़िनें ही नहीं, साज़गार भी था। उसे ही पशु-चिकित्सक और नौकरों के लिए हकीम भी माना जाता था, ज़मींदारिन के लिए एक घरेलू हकीम भी था और कपितोन क्लीमोव नाम का एक ज़बरदस्त पियक्कड़ मोची भी था। क्लीमोव अपने को उपेक्षित और ऐसा व्यक्ति समझता था जिसका उचित मूल्य नहीं आँका गया था। वह अपने को पढ़ा-लिखा और राजधानी में रहने लायक़ मानता था जिसे किसी कामकाज के बिना मास्को में किसी कटे-कटाये कोने में नहीं पड़े रहना चाहिए, और अगर पीता भी था, तो जैसा कि वह ख़ुद छाती पर हाथ मारकर और रुक-रुककर कहता था, ग़म ग़लत करने के लिए ही पीता था। तो एक दिन उसी के बारे में ज़मींदारिन की अपने बड़े कारिन्दे, गव्रीला से, जिसकी पीली आँखों और बत्तख़ की चोंच जैसी नाक को ध्यान में रखते हुए ही यह कहा जा सकता है कि क़िस्मत ने उसे दूसरों पर हुक्म चलाने के लिए पैदा किया है, बातचीत शुरू हो गयी। ज़मींदारिन ने कपितोन के बुरे नैतिक आचरण के लिए दुख प्रकट किया, जो एक दिन पहले ही कहीं सड़क पर पड़ा मिला था।

"क्या ख़याल है, गव्रीला, हम उसकी शादी क्यों न कर दें? शायद वह सुधर जाये?"

"जी, क्यों न कर दी जाये शादी? बेशक कर दी जाये," गव्रीला ने जवाब दिया, "यह तो बहुत ही अच्छा रहेगा, सरकार।"

"हाँ, मगर कौन करेगी उससे शादी?"

"जी, यह बात तो है। ख़ैर, यह तो जैसा आप ठीक समझें। फिर भी वह किसी न किसी काम तो आ ही सकता है। बिल्कुल गया-बीता नहीं है।"

"लगता है, उसे तत्याना पसन्द है?"

गव्रीला ने विरोध में कुछ कहना चाहा, मगर चुप्पी लगा गया।

"ठीक है! कहो कि तत्याना से सगाई कर ले," मज़े से नसवार सूँघते हुए ज़मींदारिन ने फ़ैसला सुनाया। "सुना तुमने?"

"जी," गव्रीला ने कहा और वहाँ से चल दिया।

अपने कमरे में आकर (जो हवेली के पास था और लगभग पूरी तरह लोहे के सन्दूक़ों से अटा पड़ा था) गव्रीला ने अपनी बीवी को बाहर खदेड़ा और फिर खिड़की के पास बैठकर सोच में डूब गया। लगता था कि ज़मींदारिन के अप्रत्याशित आदेश ने उसे परेशान कर दिया था। आख़िर वह उठा और उसने कपितोन को बुलवाया। कपितोन आया... पाठकों के सामने उनकी बातचीत

प्रस्तुत करने से पहले हम कुछ शब्दों में यह बताना उचित समझते हैं कि यह तत्याना, जिससे कपितोन को शादी करनी पड़ी, कौन थी और ज़मींदारिन के आदेश से कारिन्दे को परेशानी क्यों हुई थी।

जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं, तत्याना धोबिन का काम करती थी (चतुर और समझदार धोबिन के नाते उसे केवल महीन कपड़े ही धोने को दिये जाते थे)। वह कोई अट्ठाईस साल की औरत थी – नाटी, दुबली-पतली, स्वर्णकेशी और उसके बायें गाल पर मस्से थे। रूस में बायें गाल पर मस्सों का होना बुरा लक्षण, दुखी जीवन का पूर्वसूचक माना जाता है... तत्याना अपने भाग्य पर कुछ इतरा तो नहीं सकती थी। जवानी से ही उसके साथ बुरा बर्ताव होता रहा था – वह अकेली दो का काम करती थी, किसी भी तरह के प्यार-स्नेह से वंचित रही थी, पहनने को उसे मोटा-झोटा दिया जाता, वेतन कम से कम मिलता, रिश्तेदार उसके नहीं के बराबर थे – कोई बूढ़ा चाबीबरदार, जिसे कामकाज के लायक़ न होने के कारण गाँव में रख लिया गया था, उसका चाचा था और उसके बाक़ी सभी चाचा भूदास थे – बस। कभी तो वह सुन्दरी मानी जाती थी, मगर उसकी सुन्दरता जल्दी ही हवा हो गयी। वह बहुत ही विनम्र स्वभाव की थी या यह कहना ज़्यादा सही होगा कि डरी-सहमी थी, अपने प्रति पूरी तरह उदासीन थी और दूसरों से बेहद डरती थी। उसे तो सिर्फ़ वक़्त पर काम ख़त्म करने की ही फ़िक्र रहती, कभी किसी से बातचीत न करती और ज़मींदारिन का तो नाम सुनते ही काँप उठती, यद्यपि ज़मींदारिन उसे पहचानती तक नहीं थी। गेरासिम को जब गाँव से लाया गया, तो इस लम्बे-तड़ंगे देव को देखकर डर के मारे उसका दम निकलते-निकलते बचा। वह हर तरह से यह कोशिश करती कि उससे मुलाक़ात न हो और जब कभी घर से धोबीख़ाने जाते हुए जल्दी में उसके पास से गुज़रना पड़ता, तो वह आँखें भी मूँद लेती। गेरासिम ने शुरू में तो उसकी तरफ़ कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया, मगर बाद में जब कभी वह सामने आ जाती तो ठिठोली करता, कुछ समय बाद उसे घूरने लगा और आख़िर को उस पर से नज़र ही नहीं हटाता था। चेहरे के नम्रभाव या फिर सहमी-सहमी चाल-ढाल के कारण उसे उससे प्यार हो गया था – यह तो भगवान ही जाने! एक दिन मालकिन का कलफ़ लगा ब्लाउज़ बड़ी सावधानी से फैली उँगलियों पर टिकाये हुए वह आँगन पार कर रही थी... अचानक किसी ने कोहनी से उसे कसकर पकड़ लिया। वह मुड़ी और चीख़ उठी – गेरासिम उसके पीछे खड़ा था। बेमतलब हँसता और प्यार से गुँगुआता हुआ वह मीठी रोटी के सुनहरे पंखों और सुनहरी पूँछ वाले मुर्ग़ को उसकी तरफ़ बढ़ाये हुए था। तत्याना ने उसे लेने से इंकार करना चाहा, मगर गेरासिम ने ज़बरदस्ती उसे उसके हाथ में ठूँस दिया, सिर झुलाया, वहाँ से चला गया और फिर मुड़कर अपनी

गूँगी भाषा में अत्यधिक मैत्रीपूर्ण ढंग से उससे कुछ कहना चाहा। उस दिन के बाद से तो वह उसे चैन ही नहीं लेने देता था। जहाँ भी वह जाती, गेरासिम फ़ौरन वहीं जा पहुँचता, उसके निकट जाता, मुस्कुराता, अजीब-सी आवाज़ें निकालता, हाथ हिलाता, कुर्ते के नीचे से रिबन निकालकर उसके हाथ में ठूँस देता, झाड़ू लेकर उसका रास्ता बुहारता। बेचारी लड़की की समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे और क्या न करे। जल्दी ही सारे घर को अहाते की देखभाल करने वाले गूँगे की हरकतों का पता चल गया – लोग तत्याना से हँसी-मज़ाक़ करने, चुटकियाँ लेने लगे, उस पर ताने-बोलियों के तीर चलाने लगे। गेरासिम का मज़ाक़ उड़ाने की हिम्मत हर किसी को नहीं होती थी। उसे मज़ाक़ पसन्द नहीं थे और उसकी हाज़िरी में तत्याना को भी कोई परेशान नहीं करता था। चाहे-अनचाहे बेचारी लड़की उसकी सरपरस्ती में आ गयी थी। सभी गूँगे-बहरों की तरह वह भी मामलों को ख़ूब भाँप लेता था और इस बात को अच्छी तरह समझता था कि कब उसकी या तत्याना की हँसी उड़ायी जा रही है। एक दिन ज़मींदारिन के कपड़ों की देखभाल करने वाली बड़ी नौकरानी, तत्याना जिसके अधीन थी, खाने की मेज़ पर उसे ताने-बोलियाँ मारने लगी। उसने उसका ऐसा हाल कर दिया कि बेचारी शर्म से गड़ी जा रही थी और परेशानी में बड़ी मुश्किल से अपने पर क़ाबू पा रही थी। गेरासिम अचानक उठा, उसने अपना भारी-भरकम हाथ फैलाया, कपड़ों की प्रबन्धिका के सिर पर रखा और उसके चेहरे को ऐसे ग़ुस्से से देखा कि वह मेज़ पर झुककर रह गयी। सभी को साँप सूँघ गया। गेरासिम ने फिर से चमचा उठाया और पत्तागोभी का शोरबा खाने लगा। "कमबख़्त बहरा भूत!" सभी दबी ज़ुबान से बुदबुदाये। कपड़ों की देखभाल करने वाली बड़ी नौकरानी उठी और नौकरानियों के कमरे में चली गयी।

फिर एक बार यह हुआ कि कपितोन, वही, जिसकी इस वक़्त चर्चा चल रही थी, तत्याना से बहुत घुल-मिलकर बातें कर रहा था। गेरासिम ने यह देख लिया, उसे उँगली के इशारे से अपने पास बुलाया, बग्घीख़ाने में ले गया और वहाँ कोने में रखा हुआ बाँस उठाकर धीरे-से, मगर बहुत ही अर्थपूर्ण ढंग से उसे धमकाया। उस दिन के बाद कोई भी तत्याना से बातचीत नहीं करता था। गेरासिम को ऐसी सभी बातें माफ़ कर दी जाती थीं। हाँ, कपड़ों की देखभाल करने वाली बड़ी नौकरानी तो जैसे ही भागकर नौकरानियों के कमरे में पहुँची, वैसे ही बेहोश हो गयी। कुल मिलाकर उसने ऐसे चतुराई से काम लिया कि गेरासिम की उस भौंड़ी हरकत की ख़बर उसी दिन ज़मींदारिन तक पहुँचा दी। मगर वह अजीब बुढ़िया सिर्फ़ खिलखिलाकर हँस दी, बड़ी नौकरानी के घाव पर मानो नमक छिड़कते हुए उसने उसे यह दोहराने के लिए मजबूर किया कि

कैसे गेरासिम ने अपने भारी-भरकम हाथ से उसे मेज़ पर झुका दिया और अगले दिन गेरासिम को चाँदी का एक रूबल इनाम के तौर पर भिजवाया। ज़मींदारिन वफ़ादार और ताक़तवर चौकीदार के नाते गेरासिम पर मेहरबान थी। गेरासिम अपनी मालकिन से काफ़ी डरता था, फिर भी उसकी दया पर भरोसा करते हुए वह यह प्रार्थना करने के लिए उसके पास जाने की सोच रहा था कि उसे तत्याना से शादी करने की इजाज़त दे दी जाये। वह तो सिर्फ़ उस नये कुर्ते का इन्तज़ार कर रहा था, जिसका कारिन्दे ने उसे वचन दिया था, ताकि बन-ठनकर ज़मींदारिन के सामने जाये। पर अचानक इसी ज़मींदारिन के दिमाग़ में कपितोन से तत्याना की शादी करने की बात आ गयी।

पाठक अब ख़ुद ही आसानी से यह समझ जायेंगे कि ज़मींदारिन से बातचीत करने के बाद कारिन्दा गव्रीला परेशान क्यों हो उठा था। "मालकिन," खिड़की के पास बैठा हुआ वह सोच रहा था, "निश्चय ही गेरासिम पर मेहरबान हैं" (गव्रीला को यह अच्छी तरह मालूम था और इसीलिए वह ख़ुद भी उस पर मेहरबान था), "फिर भी वह गूँगा ठहरा, मालकिन से यह तो कहा नहीं जा सकता कि गेरासिम तत्याना पर लट्टू है। वैसे यह है भी सही, क्या पति होगा उसका? मगर दूसरी तरफ़, भगवान न करे, जैसे ही उस भूत को यह पता चलेगा कि तत्याना की कपितोन से शादी की जा रही है, तो वह सारे घर को ऐसे उलट-पलट कर देगा कि कुछ न पूछो। उसके साथ तो मामले को तय भी नहीं किया जा सकता। इस शैतान को, ख़ुदा मेरा गुनाह माफ़ करे, किसी तरह समझाया-बुझाया भी तो नहीं जा सकता... सच!"

कपितोन के आने पर गव्रीला की विचार-शृंखला टूटी। चंचल मिज़ाज का मोची अन्दर आया, उसने हाथ पीछे कर लिये, दरवाज़े के पास दीवार के बढ़े हुए कोने में बेतकल्लुफ़ी से टेक लगायी, दायें पाँव को बायें के सामने आड़े रखा और ऐसे सिर झटका मानो कह रहा हो -

"लो, मैं आ गया। क्या ज़रूरत पड़ गयी मेरी?"

गव्रीला ने कपितोन को देखा और खिड़की के पल्ले पर उँगलियों से ताल देने लगा। कपितोन ने अपनी ख़ाली-ख़ाली आँखों को थोड़ा सिकोड़ा, मगर उन्हें झुकाया नहीं, तनिक व्यंग्यपूर्वक मुस्कुराया और अपने बेरंग बालों पर, जो सभी ओर बिखरे हुए थे, हाथ फेरा। "हाँ, मैं हूँ, मैं, घूर क्या रहे हो?" वह मानो कह रहा हो।

"ख़ूब हो," गव्रीला ने कहा और चुप हो गया। "बेशक, ख़ूब हो!"

कपितोन ने सिर्फ़ कन्धे झटक दिये। "तुम तो क्या किसी कौवे-से बेहतर हो?" उसने मन ही मन सोचा।

"ज़रा अपने को देखो, देखो तो ज़रा अपने को," गव्रीला तिरस्कार से

कहता गया, "क्या हुलिया है तुम्हारा?"

कपितोन ने अपने घिसे और फटे-फटाये फ़्राक कोट और पैबन्द लगे पतलून पर इतमीनान से नज़र डाली, ख़स्ताहाल बूटों, ख़ास तौर से उस पर, जिसकी नोक को उसका दायाँ पाँव बड़ी शान से छू रहा था, दृष्टि डाली और फिर से कारिन्दे पर नज़र टिका दी।

"तो?"

"तो?" गव्रीला ने दोहराया। "तो? फिर यह भी पूछ रहे हो? निरे शैतान लगते हो, भगवान मुझे माफ़ करे, बिल्कुल शैतान के भाई-बन्द हो तुम।"

कपितोन ने तेज़ी से आँखें झपकायीं।

"कोसिये, हाँ, कोसिये, गव्रीला अन्द्रेइच," उसने फिर मन ही मन सोचा।

"तुम तो फिर नशे में धुत्त हुए थे न," गव्रीला ने कहना शुरू किया, "फिर धुत्त हुए थे? ठीक है न? दो जवाब।"

"हाँ, सेहत की कमज़ोरी की वजह से शराब का सहारा ज़रूर लिया था," कपितोन ने जवाब दिया।

"सेहत की कमज़ोरी की वजह से! बात यह है कि कम सज़ा मिलती है तुम्हें। फिर पीटर्सबर्ग में तालीम भी पाते रहे... ख़ाक भी पढ़ा-पढ़ाया नहीं तुमने। बस, हराम की रोटी तोड़ते हो।"

"गव्रीला अन्द्रेइच, इस सिलसिले में तो केवल भगवान ही मेरा जज हो सकता है और कोई नहीं। एक वही जानता है कि दरअसल मैं कैसा आदमी हूँ और क्या सचमुच ही हराम की रोटी खाता हूँ। जहाँ तक पीने का ताल्लुक़ है, तो इस बार मेरा नहीं, एक दोस्त का ही ज़्यादा कुसूर है – उसने ख़ुद मुझे बुलाया, ख़ुद ही बेवफ़ाई कर गया यानी छोड़कर चलता बना और मैं..."

"और तुम उल्लू सड़क पर पड़े रह गये। ओह, तुम आवारागर्द! पर, ख़ैर, मामला यह नहीं हैं," कारिन्दा कहता गया, "बल्कि यह है कि मालकिन..." यहाँ वह ज़रा चुप हो गया, "मालकिन यह चाहती हैं कि तुम शादी कर लो। सुनते हो? उनका ख़याल है कि शादी करने के बाद तुम संजीदा हो जाओगे। समझे?"

"समझूँगा कैसे नहीं।"

"सो तो है ही। यही ज़्यादा अच्छा होगा कि तुम्हारी नाक में नकेल डाल दी जाये। पर, ख़ैर यह उनका मामला है। तो? तुम राजी हो?"

कपितोन ने दाँत निपोरे।

"शादी करना इन्सान के लिए अच्छी चीज़ है, गव्रीला अन्द्रेइच, और मैं अपनी तरफ़ से बहुत ख़ुशी के साथ इसके लिए तैयार हूँ।"

"हाँ, हाँ," गव्रीला ने कहा और मन ही मन सोचा – "कहा ही क्या जा

सकता है, आदमी ढंग से बात कर रहा है।" – "मगर मामला यह है," उसने ऊँचे कहा, "तुम्हारे लिए मंगेतर तो कुछ अनुकूल नहीं चुनी गयी।"

"जिज्ञासा प्रकट करने की अनुमति दीजिये कि कौन है वह..."

"तत्याना।"

"तत्याना?"

कपितोन की आँखें फैल गयीं और वह दीवार से हट गया।

"परेशान क्यों हो उठे? क्या वह तुम्हें पसन्द नहीं?"

"पसन्द क्यों नहीं है, गव्रीला अन्द्रेइच! कुछ बुरी नहीं है वह लड़की, ढंग से काम करती है, विनम्र है.. मगर आप तो जानते ही हैं, गव्रीला अन्द्रेइच, वह भूत, वह बनमानस, वह उस पर..."

"जानता हूँ, भाई, सब जानता हूँ," कारिन्दे ने दुखी होते हुए उसे टोका, "मगर..."

"आप कह ही क्या रहे हैं, गव्रीला अन्द्रेइच! वह तो मुझे मार डालेगा, क़सम भगवान की, किसी मक्खी की तरह कुचल डालेगा। उसका हाथ, आप ख़ुद ही ग़ौर कर लीजिये, कैसा है उसका हाथ! वह तो बहरा ठहरा, मारता है और यह सुनता भी नहीं कि कैसे मारता है! जैसे कि सपने में घूँसे चलाता है। और उसे शान्त करना भी किसी तरह मुमकिन नहीं। भला क्यों? इसलिए, जैसा कि आप ख़ुद ही जानते हैं, गव्रीला अन्द्रेइच, वह बहरा है और इसके अलावा निरा काठ का उल्लू है। वह तो कोई दरिन्दा है, अहमक़ है, गव्रीला अन्द्रेइच, अहमक़ से भी गया-बीता है... निरा ठूँठ है। किसलिए अब मैं उसके हाथों मुसीबत का शिकार होऊँ? यह सही है कि अब मेरे लिए सब बराबर है – मैं बेहद ग़रीब, ख़स्ताहाल और नंगा-भूखा हूँ, मेरा बाल-बाल क़र्ज़ से बिंधा हुआ है, फिर भी मैं आदमी हूँ, रास्ते पर पड़ा हुआ कोई ठीकरा नहीं हूँ।"

"जानता हूँ, जानता हूँ, यह सब बताने की ज़रूरत नहीं..."

"हे मेरे भगवान!" मोची जोश में कहता गया, "कब अन्त होगा? कब, हे भगवान! कितना बदक़िस्मत, बदनसीब हूँ मैं! क़िस्मत, अरे मेरी क़िस्मत! ज़रा सोचिये तो, जवानी के दिनों में जर्मन मालिक ने मेरी ख़ूब पिटाई की, मेरी ज़िन्दगी के सबसे अच्छे दिनों में अपने ही लोगों ने मेरी खाल उधेड़ी और अब इस उम्र में किस हालत तक पहुँच गया हूँ मैं..."

"ए, रोनी सूरत हो तुम तो," गव्रीला ने कहा, "बात को इतना बढ़ाते क्यों जा रहे हो!"

"यह भी ख़ूब कही, गव्रीला अन्द्रेइच! पिटाई से नहीं डरता हूँ मैं, गव्रीला अन्द्रेइच। कमरे में बन्द करके मुझे सज़ा दो, मगर लोगों के सामने मेरी इज़्ज़त करो। आख़िर तो मैं इन्सानों की गिनती में आता हूँ और यहाँ किससे हड्डियाँ..."

“दफ़ा हो जाओ यहाँ से,” गव्रीला ने बेसब्री से टोका।

कपितोन मुड़ा और चल दिया।

“अगर यह मान लें कि गेरासिम नहीं है,” कारिन्दे ने उसे रोकते हुए पूछा, “तो तुम ख़ुद तो राजी हो?”

“नेकी और पूछ-पूछ,” कपितोन ने जवाब दिया और चला गया।

कठिन परिस्थितियों में भी कपितोन का ख़ूबसूरत ढंग से बातचीत करने का अन्दाज़ बना रहता था।

कारिन्दे ने कमरे में कई चक्कर लगाये।

“तो अब तत्याना को बुलाओ,” आख़िर उसने कहा।

कुछ मिनट बाद तत्याना दबे पाँव आयी और दहलीज़ के पास खड़ी हो गयी।

“क्या हुक्म है, गव्रीला अन्द्रेइच?” उसने धीमी आवाज़ में पूछा।

कारिन्दा उसे एकटक देखता रहा।

“तत्याना,” वह बोला, “शादी करना चाहती हो? मालकिन ने तुम्हारे लिए दूल्हा ढूँढ़ दिया है।”

“जो हुक्म, गव्रीला अन्द्रेइच। किसे उन्होंने मेरे लिए दूल्हा चुना है?” झिझकते हुए उसने इतना और जानना चाहा।

“मोची कपितोन को।”

“जो हुक्म।”

“यह सही है कि वह बड़े चंचल स्वभाव का आदमी है। मगर इस मामले में मालकिन ने तुमसे उम्मीदें लगायी हैं।”

“जो हुक्म।”

“मगर एक मुसीबत है... वह बहरा गेरासिम तो तुम्हारे आगे-पीछे घूमता रहता। इस भालू पर तुमने क्या जादू कर दिया है? वह तो तुम्हें मार डालेगा, वह भालू कहीं का...”

“मार डालेगा, गव्रीला अन्द्रेइच, ज़रूर मार डालेगा।”

“मार डालेगा... यह तो ख़ैर, हम देख लेंगे। कैसे कहती हो तुम यह – मार डालेगा! तुम ख़ुद ही सोचो, क्या वह तुम्हें मारने का हक़ रखता है?”

“नहीं जानती, गव्रीला अन्द्रेइच, हक़ रखता है या नहीं रखता।”

“अरी! तुमने उससे कोई वादा तो नहीं किया...”

“क्या मतलब है आपका?”

कारिन्दा चुप हो गया और सोचने लगा – “बिल्कुल गऊ हो तुम!”

“ख़ैर, अच्छी बात है,” उसने इतना और कहा। “हम तुमसे फिर बात करेंगे और अब जाओ, तत्याना। मैं देख रहा हूँ कि तुम तो सचमुच ही बड़ी

हलीम हो।"

तत्याना मुड़ी, उसने ज़रा दरवाज़े का सहारा लिया और चली गयी।

"शायद मालकिन तो कल इस शादी के बारे में भूल भी जायेंगी," कारिन्दे ने सोचा, "मैं भी किस बात के लिए इतना परेशान हो उठा हूँ? इस शैतान को तो ख़ैर हम क़ाबू कर लेंगे – ज़रूरत हुई तो पुलिस को ख़बर दे देंगे..."

"उस्तीन्या फ़्योदोरोव्ना," उसने अपनी बीवी को पुकारा, "ज़रा समोवार तो गरम होना रख दो, मेरी प्यारी..."

तत्याना लगभग उस सारे दिन धोबीख़ाने से बाहर नहीं निकली। शुरू में वह रोई, फिर उसने आँसू पोंछे और पहले की भाँति काम में लग गयी...

कारिन्दे की उम्मीद पूरी नहीं हुई। कपितोन की शादी के ख़याल ने ज़मींदारिन के दिल में ऐसे घर कर लिया कि रात को भी अपनी एक संगिनी के साथ यही बातचीत करती रही, जिसे घर में केवल इसीलिए रखा गया था कि अगर मालकिन को नींद न आये तो उसके साथ रहे, और इसीलिए रात के गाड़ीवान की तरह वह दिन को सोती थी। नाश्ते के बाद गव्रीला जब कामकाज की चर्चा करने के लिए मालकिन के पास आया, तो उसने पहला सवाल यही किया, "तो शादी का मामला आगे बढ़ रहा है न?" ज़ाहिर है कि उसने यही जवाब दिया कि ख़ूब बढ़िया ढंग से बढ़ रहा है और कपितोन आज ही उनकी सेवा में उपस्थित होगा। ज़मींदारिन की तबीयत कुछ अच्छी नहीं थी, इसलिए कामकाज की ओर उसने थोड़ी ही देर ध्यान दिया। कारिन्दे ने अपने कमरे में लौटकर सबको जमा किया। मामला सचमुच ऐसा था कि उस पर गम्भीरता से सोच-विचार करना ज़रूरी था। ज़ाहिर है कि तत्याना ने तो किसी तरह की कोई आपत्ति नहीं कि, मगर कपितोन ने सबको सुनाकर यह कहा कि उसका एक सिर है, दो या तीन नहीं... गेरासिम ने कठोरता और जल्दी से सब पर नज़र डाली, नौकरानियों के कमरे के ओसारे से दूर नहीं हटा और ऐसा लगा मानो यह भाँप गया हो कि उसके ख़िलाफ़ कोई खिचड़ी पक रही है। जमा हुए लोगों (जिनमें चाचा दुम उपनाम का बूढ़ा रसोइया भी था और जिसके पास सभी बड़ी इज़्ज़त से सलाह लेने जाते थे, हालाँकि जवाब में "तो यह माज़रा है" और "हाँ, हाँ, हाँ" के सिवा उससे और कुछ सुनने को नहीं मिलता था) ने सबसे पहला काम तो यह किया कि किसी तरह का जोखिम न उठाने के लिए कपितोन को पानी साफ़ करने वाली मशीन की कोठरी में बन्द कर दिया और फिर सभी गहरे सोच में डूब गये। ज़ाहिर है कि ताक़त से काम लेना तो बड़ा आसान था, मगर भगवान बचाये! शोर-गुल मच जायेगा, मालकिन परेशान हो उठेंगी – मुसीबत हो जायेगी! तो क्या किया जाये? सोचते रहे, सोचते रहे और आख़िर उन्होंने एक तरक़ीब सोच ही ली। अनेक बार लोगों का इस बात की तरफ़

ध्यान गया था कि नशे में चूर लोगों को तो गेरासिम बर्दाश्त ही नहीं कर पाता था... वह जब फाटक के बाहर बैठा होता और अगर कोई नशे में लड़खड़ाता आदमी, जिसकी टोपी कान पर खिसक आयी होती, नज़दीक से गुज़रता तो गेरासिम गुस्से से मुँह मोड़ लेता। तो यह तय किया गया कि तत्याना शराबी होने का नाटक करे और झूमती-झामती तथा लड़खड़ाती हुई गेरासिम के पास से गुज़रे। बेचारी बहुत देर तक इसके लिए राजी नहीं हुई, मगर उसे समझाया-बुझाया गया। वह तो ख़ुद भी यह समझ रही थी कि और किसी तरीक़े से अपने इस दीवाने से पिण्ड नहीं छुड़ा पायेगी। सो वह जाने को राजी हो गयी। कपितोन को कोठरी से निकाल दिया गया – आख़िर तो मामले का उससे सम्बन्ध था। गेरासिम फाटक के पास स्टूल पर बैठा था और फावड़े से ज़मीन को धीरे-धीरे खरोंच रहा था... सभी कोनों और खिड़कियों के पर्दों के पीछे से लोग उसे देख रहे थे।

यह चालाकी बहुत कामयाब रही। तत्याना को देखकर उसने शुरू में तो सामान्य ढंग से प्यारभरी गुँगुआहट से सिर हिलाया, फिर ध्यान से उसे देखा, फावड़ा उसके हाथ से गिर गया, वह उछलकर खड़ा हुआ, उसके पास गया और अपना चेहरा बिल्कुल उसके चेहरे के पास ले गया... वह डर के मारे और भी ज़्यादा लड़खड़ायी और उसने आँखें मूँद लीं... गेरासिम ने उसका हाथ पकड़ लिया, बड़ी तेज़ी से अहाता पार किया, उसे साथ लिये हुए उस कमरे में पहुँचा जहाँ सब लोग जमा थे और सीधे कपितोन की तरफ़ धकेल दिया। तत्याना का यह हाल था कि काटो तो ख़ून नहीं... गेरासिम कुछ देर खड़ा रहा, उसे देखता रहा, फिर उसने हाथ झटका, व्यंग्यपूर्वक मुस्कुराया और भारी-भारी क़दम रखता हुआ अपनी कोठरी की तरफ़ चल दिया... चौबीस घण्टे तक वह वहाँ से बाहर नहीं निकला। कोचवान अन्तीप्का ने बाद में बताया कि उसने दरार में से गेरासिम को गाल पर हाथ रखकर चारपाई पर बैठे, धीरे-धीरे, लयबद्ध और केवल कभी-कभी गुँगुआते देखा यानी वह झूलता था, आँखें मूँदता और सिर हिलाता था, ठीक उसी तरह जैसे कोचवान या बजरे खींचने वाले अपने दर्दभरे गीत की तान खींचते हुए करते हैं। अन्तीप्का से उसकी ऐसी हालत देखी न गयी और वह दरार से दूर हट गया। अगले दिन गेरासिम जब अपनी कोठरी से बाहर निकला, तो उसमें कोई ख़ास तब्दीली नज़र नहीं आयी। वह तो मानो और ज़्यादा उदास हो गया था और तत्याना तथा कपितोन की तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं देता था। उसी शाम वे दोनों बग़लों में हंस दबाये हुए ज़मींदारिन की सेवा में उपस्थित हुए और एक हफ़्ते बाद उन्होंने शादी कर ली। शादी के दिन भी गेरासिम की गतिविधियों में किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं हुआ; हाँ, नदी से वह पानी के बिना ही लौट आया – उसने रास्ते में ही किसी तरह पीपे को

तोड़ डाला था और रात को अस्तबल में अपने घोड़े को इतने ज़ोर से रगड़-रगड़कर साफ़ करता रहा कि घोड़ा हवा में हिलने वाले तिनके की तरह डोलता था और गेरासिम की लौह-मुट्ठियों के नीचे कभी एक तो कभी दूसरी तरफ़ लड़खड़ाता था।

3

यह सब कुछ वसन्त में हुआ था। एक साल और बीत गया, जिसके दौरान कपितोन पूरी तरह शराब में डूब गया। उसे बिल्कुल निकम्मा आदमी मानते हुए बीवी समेत किसी दूर-दराज के गाँव में भेज दिया गया। रवाना होने के दिन शुरू में तो उसने बड़ी दिलेरी दिखायी और यह यक़ीन दिलाया कि बेशक उसे कहीं भी, चाहे काले कोसों ही भेज दिया जाये, वहाँ भी उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा, मगर बाद में उसका दिल बैठ गया और वह शिकायत करने लगा कि उसे अनपढ़ों के बीच भेजा जा रहा है और अन्त में ऐसे हताश हो गया कि अपनी टोपी तक सिर पर नहीं ओढ़ पाया। किसी दयालु ने उसे उसके सिर पर रख दिया, उसका छज्जा ठीक किया और ऊपर से हाथ मार दिया। जब पूरी तैयारी हो गयी और गाड़ीवान हाथों में लगाम थामे "भगवान भला करे!" शब्दों का इन्तज़ार कर रहे थे, तो गेरासिम अपनी कोठरी से निकला, तत्याना के निकट गया और यादगार के तौर पर उसे लाल सूती रूमाल भेंट किया, जो एक साल पहले उसने उसी के लिए ख़रीदा था।

इस समय तक अपने जीवन की सभी मुसीबतों को अत्यधिक उदासीनता से ग्रहण करने वाली तत्याना भी अब अपने को बस में न रख पायी, उसकी आँखों में आँसू आ गये और घोड़ागाड़ी में बैठते हुए उसने ईसाइयों के ढंग से गेरासिम को तीन बार चूमा। गेरासिम ने उसे नगर-द्वार तक छोड़ आना चाहा और शुरू में उसकी घोड़ागाड़ी के साथ चल भी दिया, मगर फिर क्रीम्स्की उतारे के क़रीब अचानक रुका, हाथ झटका और नदी के किनारे-किनारे बढ़ चला।

शाम का वक़्त था। वह धीरे-धीरे चल रहा था और पानी की तरफ़ देख रहा था। अचानक उसे लगा कि तट के पास कीचड़ में कुछ हिल-डुल रहा था। वह झुका तो उसे छोटा-सा पिल्ला दिखायी दिया। वह सफ़ेद था, उस पर काले धब्बे थे और वह अपनी पूरी कोशिश के बावजूद पानी से बाहर नहीं निकल पा रहा था, छटपटाता था, फिसलता था और उसका समूचा गीला तथा दुबला-पतला शरीर काँप रहा था। गेरासिम ने मुसीबत के मारे इस पिल्ले को देखा, एक हाथ से उसे ऊपर उठाया, कुर्ते के नीचे खोंसा और बड़े-बड़े डग भरता हुआ घर की तरफ़ चल दिया। वह अपनी कोठरी में गया, पिल्ले को

चारपाई पर लिटा दिया, उसे अपने भारी कोट से ढँका, पहले तो फूस लाने के लिए भागकर अस्तबल में गया और फिर रसोईघर से दूध का प्याला लाया। कोट को सावधानी से हटाकर और फूस फैलाकर उसने चारपाई पर दूध रख दिया। बेचारा पिल्ला कोई तीन हफ़्ते का था, कुछ ही समय पहले उसने आँखें खोली थीं, यहाँ तक कि उसकी एक आँख दूसरी से कुछ बड़ी भी लगती थी। वह प्याले से अभी दूध पीना नहीं जानता था और केवल काँपता तथा आँखें सिकोड़ता जाता था। गेरासिम ने दो उँगलियों से धीरे-से उसका सिर पकड़ा और थूथनी दूध के क़रीब झुका दी। पिल्ला अचानक बेसब्री से, फूँ-फूँ करता और काँपता हुआ दूध पीने लगा। ऐसा करते हुए उसे उच्छू भी आ जाती थी। गेरासिम देखता रहा, देखता रहा और अचानक ज़ोर से हँस दिया... सारी रात वह उसी की फ़िक्र करता रहा, उसे ढंग से सोने के लिए लिटाया, सहलाया और आख़िर ख़ुद भी उसके क़रीब ही ख़ुशीभरी और मीठी नींद सो गया।

गेरासिम जिस तरह से इस पिल्ले की (जो मादा निकला) देखभाल करता था, उस तरह कोई माँ भी अपने बच्चे की भला क्या चिन्ता करेगी! शुरू-शुरू में तो वह बहुत कमज़ोर, दुबला-पतला और बदसूरत-सा भी था, मगर धीरे-धीरे अच्छा और तगड़ा होता गया तथा कोई आठ महीने बाद तो अपने रक्षक की स्थायी देखभाल की बदौलत स्पेनी नस्ल का लम्बे कानों, पाइप की शक्ल वाली फूली-फूली पूँछ और बड़ी-बड़ी समझदार आँखोंवाला बढ़िया कुत्ता बन गया। गेरासिम से उसे बड़ा लगाव था। वह एक क़दम भी उससे पीछे न रहता और पूँछ हिलाता हुआ हमेशा उसके पीछे-पीछे भागता रहता। उसने उसे नाम भी दे दिया – गूँगे यह जानते हैं कि उनके गुँगुआने से लोगों का ध्यान उनकी तरफ़ आकृष्ट होता है – इसलिए उसने उसे मूमू नाम दिया। घर के सभी लोग उसे प्यार करने लगे और वे भी उसे मूमून्या कहकर ही पुकारते थे। मूमू बहुत ही समझदार थी, सभी से हिल-मिल जाती, मगर प्यार सिर्फ़ गेरासिम से करती। ख़ुद गेरासिम तो उस पर जान देता था... जब दूसरे मूमू को सहलाते, तो उसे बुरा लगता – वह उसके लिए डरता था या उसके मामले में दूसरों से ईर्ष्या करता था – भगवान ही जाने! गेरासिम का पल्ला खींचकर वह हर सुबह उसे जगाती, पानी लाने वाले बूढ़े घोड़े की लगाम पकड़कर, जिसके साथ उसकी बड़ी दोस्ती थी, गेरासिम के पास लाती, चेहरे पर गर्व का भाव लिये हुए उनके साथ-साथ नदी की ओर चल देती, उसके झाड़ू और फावड़े की देखभाल करती, किसी को भी उसकी कोठरी में न जाने देती। गेरासिम ने अपनी कोठरी के दरवाज़े में उसी के लिए एक सूराख़ कर दिया। वह मानो यह अनुभव करती थी कि सिर्फ़ गेरासिम की कोठरी में ही वह पूरी तरह स्वामिनी है और इसलिए उसमें दाख़िल होते ही ख़ुश होकर चारपाई पर छलाँग लगती। रात को वह

बिल्कुल न सोती, मगर आम बेवक़ूफ़ कुत्तों की तरह, जो पिछली टाँगों पर बैठे हुए थूथनी उठाकर तथा आँखें मूँदकर महज़ ऊब के कारण सितारों पर, सो भी लगातार तीन बार भौंकते हैं, बेमतलब कभी नहीं भौंकती थी। नहीं, मूमू की पतली भूँक अकारण कभी नहीं सुनायी देती थी। वह तो तभी भौंकती, जब कोई पराया आदमी बाड़ के क़रीब आता या कोई सन्देहपूर्ण शोर अथवा सरसराहट सुनायी देती... थोड़े में यह कि वह ख़ूब बढ़िया चौकीदारी करती थी। हाँ, यह सच है कि अहाते में मूमू के अलावा पीले रंग और भूरी बुन्दकियों वाला लट्टू नाम का एक और बूढ़ा कुत्ता भी था। मगर उसकी तो कभी भी, यहाँ तक कि रात को भी ज़ंजीर नहीं खोली जाती थी। हाँ, वह ख़ुद भी अपने बुढ़ापे के कारण आज़ादी की माँग नहीं करता था – गुड़ी-मुड़ी होकर कुत्ताघर में पड़ा रहता और कभी-कभार ही उसकी खरखरी तथा दबी-घुटी भूँक सुनायी देती, जो फ़ौरन शान्त हो जाती, मानो वह स्वयं उसकी निरर्थकता अनुभव करता हो। मूमू ज़मींदारिन के घर में न जाती और जब गेरासिम कमरे में लकड़ी लेकर जाता, तो वह हमेशा बाहर ही रह जाती और कान उठाये तथा दरवाज़े के पीछे से ज़रा-सी भी आहट होने पर कभी दायें तो कभी बायें सिर घुमाते हुए ओसारे में बैठी बेसब्री से उसका इन्तज़ार करती...

ऐसे ही एक और साल गुज़र गया। गेरासिम अहाते की देखभाल का काम करता रहा। वह अपने भाग्य से बहुत ख़ुश था कि हालात ने अचानक एक करवट ली... हुआ यह कि गरमी के एक दिन ज़मींदारिन अपनी संगिनियों के साथ दीवानख़ाने में टहल रही थी। वह बड़े रंग में थी, हँसती और मज़ाक़ करती थी, संगिनियाँ भी हँसती और मज़ाक़ करती थीं, मगर वे ख़ास ख़ुशी महसूस नहीं कर रही थीं। बात यह थी कि ज़मींदारिन के ऐसे रंग में आने को घर में ख़ास पसन्द नहीं किया जाता था। कारण कि एक तो उस समय वह सभी से फ़ौरन और पूरी तरह अपना साथ देने की माँग करती और अगर किसी का चेहरा ख़ुशी से न चमकता होता, तो बिगड़ उठती। दूसरे, उसकी ख़ुशी की ये तरंगें कुछ ही देर तक बनी रहतीं और आमतौर पर उदासी तथा कटुता के मूड में बदल जातीं। उस दिन तो वह बिस्तर से उठी ही थी ख़ुश-ख़ुश। ताश में चार ग़ुलाम निकले थे (वह हर सुबह को ताश से अपनी क़िस्मत का अनुमान लगाती थी), जिसका मतलब था कि मन की इच्छा पूरी होगी, चाय भी उसे ख़ास मज़ेदार प्रतीत हुई, जिसके लिए नौकरानी की तारीफ़ भी हुई और दस कोपेक इनाम भी मिले। झुर्रीदार होंठों पर मीठी मुस्कान लिये दीवानख़ाने में टहलती-टहलती ज़मींदारिन खिड़की के पास गयी। खिड़की के सामने बग़ीचा था और ठीक बीच वाली क्यारी में, गुलाब की झाड़ी के नीचे लेटी हुई मूमू बड़ी लगन से हड्डी चचोड़ रही थी। ज़मींदारिन की उस पर नज़र पड़ी।

"हे भगवान!" वह अचानक कह उठी, "यह कुत्ता किसका है?"

बेचारी संगिनी, जिससे ज़मींदारिन ने यह सवाल किया था, वैसी ही परेशान हो उठी, जैसे कोई अधीन व्यक्ति आमतौर पर तब परेशान हो उठता है, जब उसे अच्छी तरह यह मालूम न हो कि वह अपने अधिकारी के भावावेश का क्या अर्थ समझे।

"मा... मालूम न... नहीं, जी," वह बुदबुदायी, "शायद गूँगे का है।"

"हे भगवान!" ज़मींदारिन बीच ही में बोल उठी। "बड़ा प्यारा कुत्ता है यह! उसे यहाँ लाने को कहिये। बहुत अर्से से है क्या वह उसके पास? यह कैसे हुआ कि मैंने उसे अब तक नहीं देखा? उसे यहाँ लाने को कहिये।"

संगिनी उसी समय ड्योढ़ी की तरफ़ लपकी।

"अरे, सुनो भाई!" उसने चिल्लाकर किसी से कहा, "मूमू को जल्दी से ले आओ। वह बग़ीचे में है।"

"अहा, इसे मूमू कहते हैं," ज़मींदारिन बोली, "बड़ा अच्छा नाम है।"

"ओह, बहुत ही अच्छा है, जी!" संगिनी ने कहा। "जल्दी करो, स्तेपान!"

घरेलू नौकर स्तेपान, जो ख़ासा हट्टा-कट्टा नौजवान था, ख़ूब तेज़ी से बग़ीचे की तरफ़ भागा गया और उसने मूमू को पकड़ लेना चाहा। मगर वह बड़ी फ़ुर्ती से उसकी उँगलियों में से निकल गयी और पूँछ उठाये हुए जान छोड़कर गेरासिम की तरफ़ भागी। गेरासिम उस वक़्त रसोईघर के पास पानी के पीपे को बच्चों की ढोलक की तरह हाथों में घुमाता हुआ साफ़ कर रहा था, झाड़-झटक रहा था। स्तेपान मूमू के पीछे-पीछे भागा गया, उसे मालिक के पैरों के पास ही पकड़ने लगा, मगर फ़ुर्तीली मूमू पराये आदमी की पकड़ में नहीं आयी, उछलती-कूदती हुई बच निकलती। गेरासिम व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ यह सब दौड़-धूप देखता रहा। आख़िर स्तेपान हताश हो उठा और उसने इशारे से गेरासिम को जल्दी-जल्दी यह समझाया कि ज़मींदारिन ने उसकी मूमू को लाने का हुक्म दिया है। गेरासिम को कुछ हैरानी हुई, फिर भी उसने मूमू को अपने पास बुलाया और उसे ज़मीन से उठाकर स्तेपान को सौंप दिया। स्तेपान ने उसे दीवानख़ाने में लाकर फ़र्श पर बिठा दिया। ज़मींदारिन बड़े प्यार से उसे अपने पास बुलाने लगी। मूमू, जो अपने जन्म से ही कभी ऐसे शानदार कमरे में नहीं गयी थी, बेहद डर गयी और दरवाज़े की तरफ़ लपकी। किन्तु स्तेपान ने उसे फ़ौरन वापस खदेड़ दिया और वह काँपती हुई दीवार के साथ सट गयी।

"मूमू, मूमू, मेरे पास आओ, मालकिन के पास आओ," ज़मींदारिन ने कहा, "इधर आओ, बुद्धू... डरो नहीं..."

"जाओ, जाओ, मालकिन के पास जाओ," संगिनियाँ कह उठीं।

मगर मूमू उदास आँखों में चारों ओर देखती रही और अपनी जगह से नहीं

हिली।

"इसके लिए कुछ खाने को लाइये," ज़मींदारिन ने कहा। "कैसी बुद्धू है यह! मालकिन के पास नहीं आती। किसलिए डरती है?"

"जी, वह अभी आपसे हिली-मिली नहीं," एक संगिनी ने सहमी-सहमी और मीठी आवाज़ में कहा।

दूध से भरी रक़ाबी लाकर स्तेपान ने मूमू के सामने रख दी। पर मूमू ने तो उसे सूँघा तक नहीं और काँपती तथा पहले की तरह इधर-उधर देखती रही।

"अरी, कैसी हो तुम!" उसके पास जाकर मालकिन बोली, झुकी और उसने उसे सहलाना चाहा। किन्तु मूमू ने तेज़ी से सिर घुमाया और दाँत दिखाये। ज़मींदारिन ने झटपट हाथ पीछे हटा लिया...

घड़ीभर को ख़ामोशी छा गयी। मूमू धीरे-से चीख़ी मानो अफ़सोस ज़ाहिर कर रही हो और माफ़ी माँग रही हो... ज़मींदारिन हट गयी। उसके माथे पर बल पड़ गये। मूमू की अप्रत्याशित हरकत से वह डर गयी थी।

"आह!" सभी संगिनियाँ एकसाथ चिल्ला उठीं। "भगवान न करे, उसने कहीं आपको काट तो नहीं लिया!" (मूमू ने तो अपने जीवन में ही किसी को नहीं काटा था) "आह, आह!"

"इसे यहाँ से निकाल बाहर करो," बदली हुई आवाज़ में बुढ़िया ने कहा। "कितना बुरा है यह कुत्ता! कैसा ग़ुस्सैल है!"

और धीरे-से मुड़कर अपने अध्ययनकक्ष की तरफ़ चल दी। संगिनियों ने सहमी-सहमी नज़र से एक-दूसरी की तरफ़ देखा और पीछे चलने को तैयार हुईं। मगर मालकिन रुकी, रुखाई से उसने उनकी तरफ़ देखा और बोली : "किसलिए? मैंने तो आपको नहीं बुलाया," और वह चली गयी।

संगिनियों ने हताशा से स्तेपान की तरफ़ हाथ झटके, उसने मूमू को पकड़ा और जल्दी से दरवाज़े के बाहर ले जाकर गेरासिम के पैरों पर फेंक दिया। आधा घण्टे के बाद घर में गहरी ख़ामोशी छा गयी और बूढ़ी ज़मींदारिन तूफ़ानी घटा से भी अधिक भयंकर बनी सोफ़े पर बैठी थी।

ज़रा ख़याल कीजिये, कभी-कभी कैसी मामूली बातें आदमी को परेशान कर डालती हैं!

शाम होने पर ज़मींदारिन ऐसे ही उखड़ी-उखड़ी रही, किसी से भी बोली-बतियायी नहीं, उसने ताश भी नहीं खेली और रात को भी ढंग से नहीं सोयी। दिमाग़ में कहीं से यह ख़याल आ घुसा कि उसे वह यू-डी-कोलोन नहीं दिया गया जो आमतौर पर दिया जाता है, कि उसके तकिये से साबुन की गन्ध आ रही है और उसने कपड़ों की देखभाल करने वाले को सारे कपड़े सूँघने को मजबूर किया। मतलब यह कि वह बहुत परेशान और भुनभुनाती रही। अगली

सुबह उसने गव्रीला को हर दिन की तुलना में एक घण्टा पहले बुलाने का आदेश दिया।

"यह बताइये," कारिन्दे ने जैसे ही कुछ-कुछ धड़कते दिल से उसके अध्ययन कक्ष की दहलीज़ लाँघी, वैसे ही ज़मींदारिन ने कहना शुरू किया, "यह किसका कुत्ता है जो रात-भर हमारे अहाते में भौंकता रहा था? उसने मुझे सोने नहीं दिया!"

"कुत्ता... कौन-सा... शायद गूँगे का है, मालकिन," उसने कुछ-कुछ हिचकती हुई आवाज़ में जवाब दिया।

"मैं नहीं जानती कि गूँगे का है या किसी और का, पर उसने मुझे सोने नहीं दिया। मुझे हैरानी हो रही है कि यहाँ कुत्तों की इतनी भरमार क्यों है? मैं यह जानना चाहती हूँ। हमारे यहाँ अहाते की रखवाली करने वाला कुत्ता तो है न?

"ज़रूर है, मालकिन, बिल्कुल है, जी। वह लट्टू है, जी।"

"तो फिर यह और किसलिए है, क्या ज़रूरत है हमें एक और कुत्ते की? सिर्फ़ गड़बड़ी फैलाने के लिए? कोई मालिक घर में नहीं है – यही तो न! गूँगे को क्या करना है कुत्ते का? किसने उसे मेरे अहाते में कुत्ता रखने की इजाज़त दी? कल मैं खिड़की के पास गयी तो उसे बग़ीचे में लेटे देखा, कहीं से कोई गन्दी चीज़ उठा लाया था, उसे वहाँ चचोड़ रहा था – और मैंने वहाँ गुलाब लगवा रखे हैं।"

मालकिन ख़ामोश हो गयी।

"बस, इसे आज ही यहाँ से चलता कर दो। सुना तुमने?"

"जी।"

"आज ही। अब जाओ। काम-धन्धे की बात करने के लिए मैं तुम्हें बाद में बुलवा लूँगी।"

गव्रीला कमरे से बाहर चला गया।

दीवानख़ाने को लाँघते हुए उसने योंही घण्टी को एक मेज़ से उठाकर दूसरी पर रख दिया, हॉल में धीरे-से बत्तख़ की चोंच जैसी अपनी नाक सुड़की और ड्योढ़ी में चला गया। ड्योढ़ी में स्तेपान बेंच पर वैसे ही सोया पड़ा था जैसे लड़ाई के मैदान सम्बन्धी चित्र में मरे हुए सैनिक को दिखाया जाता है, उसने फ़्राक कोट के नीचे से, जो कम्बल का काम दे रहा था, अपनी नंगी टाँगें बेचैनी के साथ बाहर निकालीं। कारिन्दे ने उसे झकझोरा और धीरे-से कोई आदेश दिया, जिसके जवाब में उसने जम्हाई-सी ली और कुछ हँसा। कारिन्दा चला गया, स्तेपान उछलकर खड़ा हुआ, उसने कुर्ता और बूट पहने और बाहर आकर ओसारे के पास खड़ा हो गया। पाँच मिनट भी नहीं गुज़रे होंगे कि गेरासिम

लकड़ियों का बड़ा-सा गट्ठा (ज़मींदारिन ने अपना अध्ययनकक्ष और सोने का कमरा गर्मियों में भी गर्माने का हुक्म दे रखा था।) पीठ पर लादे आया। हमेशा साथ रहने वाली मूमू भी उसके पीछे-पीछे थी। गेरासिम दरवाज़े के सामने टेढ़ा खड़ा हो गया, कन्धे से धकेलकर उसने दरवाज़ा खोला और लकड़ियों का गट्ठा लिये घर में दाख़िल हुआ। मूमू हमेशा की तरह बाहर इन्तज़ार करने लगी। तब स्तेपान मौक़ा देखकर उस पर अचानक ऐसे ही झपटा जैसे बाज़ चूज़े पर झपटता है, छाती से उसे ज़मीन पर दबा दिया, बाँहों में भर लिया, टोपी पहने बिना ही अहाते से भाग गया, सामने से आ जाने वाली पहली बग्घी पर चढ़ गया और अख़ोत्नी र्याद सड़क पर जा पहुँचा। वहाँ उसने झटपट उसका ग्राहक ढूँढ़ लिया और आधे रूबल में ही इस शर्त पर बेच दिया कि वह कम से कम एक हफ़्ते तक उसे बाँधे रखे। वह उसी वक़्त वापस आ गया, मगर घर से कुछ दूर ही बग्घी से उतर गया, अहाते के गिर्द चक्कर लगाकर और पिछवाड़े की गली से बाड़ लाँघकर अहाते में कूदा। फाटक से जाने की उसे इसलिए हिम्मत न हुई कि कहीं गेरासिम से मुलाक़ात न हो जाये।

वैसे स्तेपान बेकार ही घबरा रहा था, क्योंकि गेरासिम तो अहाते में था ही नहीं। घर से बाहर निकलते ही उसने मूमू को ग़ायब पाया। अब तक कभी ऐसा नहीं हुआ था कि मूमू उसके लौटने तक इन्तज़ार न करती रही हो। वह इधर-उधर दौड़ने, उसे खोजने और अपने ढंग से पुकारने लगा... वह अपनी कोठरी और घास-फूस की कोठी में भागा गया, सड़क पर इधर-उधर दौड़-धूप करता रहा... खो गयी मूमू! अत्यधिक निराशापूर्ण संकेत करते हुए उसने नौकरों-चाकरों से उसके बारे में पूछताछ की, ज़मीन से एक फ़ुट ऊँचाई का संकेत कर मूमू का उल्लेख किया, हाथों से उसकी आकृति-सी बनाकर दिखायी... कुछ को तो सचमुच यह मालूम नहीं था कि मूमू कहाँ गयी और इसलिए उन्होंने सिर्फ़ सिर हिला दिये, दूसरों को मालूम था और वे जवाब में मुस्कुरा-भर दिये, कारिन्दे ने बहुत ही धीर-गम्भीर सूरत बना ली और कोचवानों पर बिगड़ने लगा। तब गेरासिम अहाते से बाहर, कहीं दूर भाग गया।

जब वह लौटा तो झुटपुटा हो रहा था। उसकी थकी-हारी सूरत, लड़खड़ाती चाल और धूलभरे कपड़ों से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि वह आधे मास्को का चक्कर लगा आया है। वह मालकिन के घर की खिड़कियों के सामने रुका, उसने ओसारे पर नज़र डाली, जहाँ कोई सात नौकर-चाकर जमा थे, मुड़ा और एक बार फिर उसने "मूमू" को पुकारा। मगर मूमू नहीं आयी। वह वहाँ से चला गया। सब उसे देखते रहे, कोई भी नहीं मुस्कुराया, किसी ने भी एक शब्द नहीं कहा... जिज्ञासु कोचवान अन्तीप्का ने अगली सुबह को रसोईघर में बताया कि गूँगा रातभर आहें भरता रहा था।

अगले दिन गेरासिम बिल्कुल बाहर नहीं निकला। चुनाँचे उसकी जगह कोचवान पोताप को पानी लाने के लिए जाना पड़ा, जो उसे बहुत अखरा। ज़मींदारिन ने गव्रीला से पूछा कि उसने उसका हुक्म पूरा कर दिया या नहीं। गव्रीला ने जवाब दिया कि हुक्म की तामील हो गयी है।

तीसरे दिन गेरासिम अपना काम करने के लिए कोठरी से बाहर आया। दिन के खाने के वक़्त मेज़ पर बैठा, खा-पीकर किसी से सलाम-दुआ किये बिना फिर वहाँ से चला गया। उसका चेहरा, जो सभी गूँगे-बहरों के चेहरों की तरह निर्जीव था, अब जैसे बिल्कुल पत्थर-सा बन गया, खाने के बाद वह थोड़ी देर को फिर अहाते से चला गया, लौटा और उसी वक़्त घास-फूस की कोठी में जाकर लेट गया। रात उजली थी, चाँदनी खिली हुई थी।

गेरासिम लेटा-लेटा गहरी आहें भर रहा था, लगातार करवटें बदल रहा था। अचानक उसने महसूस किया कि मानो कोई उसका पल्ला खींच रहा है। वह सिर से पाँव तक सिहर उठा, मगर उसने सिर नहीं उठाया, उलटे आँखें मूँद लीं। फिर से, पहले से अधिक ज़ोर के साथ उसका पल्ला खींचा गया। वह उछलकर खड़ा हुआ... मूमू उसके सामने उछल-कूद रही थी और उसकी गर्दन पर रस्सी का टुकड़ा लटक रहा था। गेरासिम की मूक छाती से ख़ुशी भरी लम्बी चीख़ निकल गयी। उसने मूमू को झपट लिया, बाँहों में कस लिया। मूमू ने एक ही क्षण में उसकी नाक, आँखों, मूँछों और दाढ़ी को चाट लिया... गेरासिम कुछ देर तक खड़ा रहा, उसने कुछ सोचा, फूस के ढेर से धीरे-से नीचे उतरा, इधर-उधर नज़र दौड़ाई और यह इतमीनान हो जाने पर कि कोई उसे देख नहीं रहा है, चुपचाप अपनी कोठरी में चला गया।

गेरासिम तो पहले से ही यह भाँप गया था कि मूमू ख़ुद कहीं नहीं खो गयी थी, कि मालकिन के हुक्म से ही उसे कहीं ले जाया गया था। लोगों ने तो इशारों से उसे यह भी समझा दिया था कि किस तरह मूमू ने मालकिन को काटना चाहा था। इसलिए अब उसने ज़रूरी क़दम उठाने का फ़ैसला किया। सबने पहले तो उसने मूमू को रोटी खिलायी, उसे सहलाया, बिस्तर पर लिटाया और उसके बाद कोई जुगत सोचने लगा। रात-भर वह यही सोचता रहा कि मूमू को कैसे अधिक अच्छी तरह से छिपाया जाये। आख़िर वह इस नतीजे पर पहुँचा कि दिन-भर उसे कोठरी में बन्द रखा जाये, जब-तब ख़ुद कोठरी में उसे देखने जाये और रात को बाहर निकाले। दरवाज़े के सूराख़ को उसने अपने पुराने कोट से कसकर बन्द कर दिया। कुछ-कुछ उजाला हो जाने पर वह ऐसे, मानो कुछ भी न हुआ हो तथा चेहरे पर पहले जैसी उदासी क़ायम रखते हुए (कितनी भोली चालाकी थी यह) अहाते में बाहर आया।

बेचारे बहरे के दिमाग़ में यह बात नहीं आयी कि मूमू अपनी

चीख़-चिल्लाहट से अपना भण्डाफोड़ कर सकती है। सचमुच ऐसे ही हुआ भी। जल्दी ही घर के सब लोगों को यह पता चल गया कि गूँगे की मूमू वापस आ गयी है और उसकी कोठरी में बन्द है। मगर गेरासिम और मूमू पर तरस खाते हुए, शायद कुछ हद तक उससे डरते हुए भी, किसी ने उसे यह नहीं जताया कि वह उसका राज़ जानता है। कारिन्दे ने गुद्दी खुजलायी और हाथ झटक दिया – "भगवान उसका भला करे! शायद मालकिन को इसका पता नहीं चलेगा!" गूँगे ने काम के मामले में कभी इतनी लगन नहीं दिखायी थी, जितनी उस दिन – उसने सारे अहाते को बहुत ही अच्छी तरह, रगड़-रगड़कर साफ़ किया, घास का एक-एक तिनका खोद निकाला, यह जाँचने के लिए कि बग़ीचे की बाड़ की सभी खूँटियाँ मज़बूत हैं या नहीं, उन्हें ख़ुद बाहर निकाला और फिर ख़ुद ही ठोंका। थोड़े में, इस तरह काम में जुटा रहा और मेहनत करता रहा कि मालकिन का भी उसकी तरफ़ ध्यान गया।

दिन के दौरान गेरासिम लुके-छिपे दो बार अपनी बन्दी के पास गया। रात होने पर वह घास-फूस की कोठी में नहीं, बल्कि मूमू के साथ ही कोठरी में लेट रहा और रात का एक बजने के बाद ही उसके साथ खुली हवा में घूमने निकला। काफ़ी देर तक उसके साथ अहाते में टहलने के बाद वह लौटने ही वाला था कि अचानक सड़क की ओर से बाड़ के पीछ सरसराहट हुई। मूमू ने कान खड़े किये, गुर्रायी, बाड़ के पास गयी, सूँघा-साँघी की और बहुत ऊँची तथा ज़ोरदार आवाज़ में भौंकने लगी। किसी शराबी ने वहाँ रैन-बसेरा कर रखा था। काफ़ी लम्बी "स्नायविक बेचैनी" के बाद मालकिन की उसी वक़्त आँख लगी थी। शाम के बहुत बढ़िया खाने के बाद ही उसे हमेशा ऐसी बेचैनी अनुभव होती थी। कुत्ते की अप्रत्याशित भूँक से वह जाग उठी, उसका दिल ज़ोर से धड़क उठा और फिर जैसे उसकी धड़कन बन्द-सी हो गयी। "लड़कियो! लड़कियो!" वह कराही। "लड़कियो!" डरी-सहमी नौकरानियाँ लपककर उसके शयन-कक्ष में पहुँचीं। "ओह, ओह, मैं मर रही हूँ!" हाथों को परेशानी से हिलाते हुए वह बोली। "फिर, फिर वही कुत्ता! ओह, डॉक्टर बुलवाइये। वे मेरी जान लेना चाहते हैं... कुत्ता, फिर कुत्ता! ओह!" और उसने सिर पीछे की तरफ़ लुढ़का दिया, जिसका मतलब था – बेहोशी।

लोग-बाग डॉक्टर, यानी घरेलू हकीम, ख़रितोन, को बुलाने दौड़े। यह हकीम, जिसकी सारी कला इसी बात में निहित थी कि वह कोमल तलों वाले जूते पहनता था और बड़ी नज़ाकत से नब्ज़ पर हाथ रखता था, दिन-रात में चौदह घण्टे सोता था और बाक़ी वक़्त आहें भरता तथा मालकिन को लगातार लारेल की दवाई पिलाता रहता था, फ़ौरन भागा आया, उसने पंखों को जलाया और मालकिन ने जब आँखें खोलीं, तो झटपट चाँदी की ट्रे में राम-बाण जैसी

बूँदों वाला जाम रखकर ले आया। ज़मींदारिन ने दवा तो पी ली, मगर उसी समय रुआँसी आवाज़ में फिर से कुत्ते, गव्रीला और अपनी क़िस्मत के बारे में शिकवा-शिकायत करने और यह कहने लगी कि मुझ बेचारी बूढ़ी औरत को सभी ने त्याग दिया है, कि किसी को भी मुझ पर दया नहीं आती, कि सभी मेरी मौत चाहते हैं। इसी बीच क़िस्मत की मारी मूमू भौंकती जा रही थी और उसे बाड़ से हटाने की गेरासिम की हर कोशिश नाकाम हो रही थी। "वह देखो... वह देखो... फिर से..." ज़मींदारिन बुदबुदायी और फिर से उसने आँखें ऊपर चढ़ा लीं। हकीम ने किसी नौकरानी से फुसफुसाकर कुछ कहा, वह लपककर ड्योढ़ी में गयी, उसने झकझोरकर स्तेपान को जगाया, वह गव्रीला को जगाने भागा और गव्रीला ने हड़बड़ी में सारे घर को जगाने का हुक्म दे दिया।

गेरासिम ने मुड़कर देखा तो खिड़कियों में रोशनी और लोगों की परछाईंयाँ दिखायी दीं। उसके दिल ने मुसीबत को महसूस किया, उसने झटपट मूमू को बग़ल में दबाया, भागकर अपनी कोठरी में पहुँचा और दरवाज़ा बन्द कर लिया। कुछ मिनट बाद पाँच आदमी उसके दरवाज़े को पूरे ज़ोर से धकेल रहे थे, मगर क़ब्ज़े की मज़बूती महसूस कर उन्होंने ऐसा करना बन्द कर दिया। गव्रीला हाँफता हुआ भागा आया, उन सभी को सुबह तक वहीं रुकने और निगरानी करने का हुक्म दिया, ख़ुद नौकरानियों के कमरे की तरफ़ भागा गया और ज़मींदारिन की बड़ी संगिनी लुबोव लुबीमोव्ना के ज़रिये, जिसके साथ मिलकर वह चाय, चीनी और रसद की दूसरी चीज़ें चुराता तथा बाँटता था, मालकिन से यह कहलवाया कि बदक़िस्मती से कुत्ता फिर कहीं से भाग आया है, कि कल वह ज़िन्दा नहीं रहेगा, कि मालकिन मेहरबानी करें, नाराज़ न हों और शान्त हो जायें। मालकिन शायद यों तो जल्दी ही शान्त न होती, मगर हकीम ने उतावली में बारह की जगह दवाई की चालीस बूँदें डाल दीं। लारेल ने अपना रंग दिखाया और कोई पन्द्रह मिनट बाद ज़मींदारिन गहरी और शान्त नींद सो गयी। मगर उधर चारपाई पर पड़े गेरासिम के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और वह कसकर मूमू का जबड़ा दबाये था।

अगली सुबह को ज़मींदारिन काफ़ी देर से जागी। गव्रीला इसलिए उसके जागने का इन्तज़ार कर रहा था कि गेरासिम की कोठरी पर निर्णायक प्रहार करने का आदेश दे और साथ ही ख़ुद ज़मींदारिन के भयानक ग़ुस्से के तूफ़ान का सामना करने के लिए तैयार हो रहा था। मगर तूफ़ान नहीं आया। पलंग पर लेटे-लेटे ही मालकिन ने बड़ी संगिनी को अपने पास बुलाने का आदेश दिया।

"लुबोव लुबीमोव्ना," उसने धीमी और कमज़ोर आवाज़ में कहना शुरू किया। वह कभी-कभी अपने को बेसहारा और मुसीबत की मारी ज़ाहिर करना पसन्द करती थी। स्पष्ट है कि ऐसे मौक़ों पर घर के सभी लोग अपने को बड़ी

अटपटी स्थिति में महसूस करने लगते थे। "लुबोव लुबीमोव्ना, आप देख रही हैं न कि मेरी कैसी हालत है। मेरी प्यारी, गव्रीला अन्द्रेइच के पास जाइये, उससे बातचीत कीजिये – क्या उसके लिए कोई कुत्ता उसकी मालकिन के चैन, उसकी ज़िन्दगी से भी ज़्यादा महत्त्व रखता है? मैं इस पर विश्वास नहीं करना चाहती," उसने भाव-विह्वल होकर इतना और जोड़ दिया। "जाइये मेरी प्यारी, इतनी मेहरबानी कीजिये, गव्रीला अन्द्रेइच के पास जाइये।"

लुबोव लुबीमोव्ना गव्रीला के कमरे की तरफ़ चल दी। मालूम नहीं कि उनके बीच क्या बातचीत हुई, मगर कुछ देर बाद ख़ासी भीड़ अहाते को लाँघकर गेरासिम की कोठरी की ओर जाती दिखायी दी। सबसे आगे-आगे गव्रीला चल रहा था। हवा न होने पर भी वह अपनी छज्जेदार टोपी को हाथ से थामे था। नौकर-चाकर और बावर्ची उसके साथ थे, चाचा दुम खिड़की से झाँकता हुआ हिदायतें दे रहा था, यानी सिर्फ़ हाथों को हिला-डुला रहा था। सबसे पीछे लड़के, जिनमें से आधे पराये थे, उछलते-कूदते और मुँह बनाते हुए चल रहे थे। कोठरी की तरफ़ जाने वाली तंग सीढ़ी पर एक पहरेदार बैठा था और डण्डे लिये दो अन्य पहरेदार दरवाज़े के पास खड़े थे।

लोग सीढ़ी पर चढ़ने लगे, पूरी सीढ़ी पर फैल गये। गव्रीला दरवाज़े के पास गया, मुक्के मारकर उसे धपधपाया और चिल्लाया –

"खोलो दरवाज़ा।"

दबी-घुटी-सी भूँक सुनायी दी, मगर जवाब नहीं मिला।

"सुनते नहीं, खोलो दरवाज़ा!" उसने दोहराया।

"गव्रीला अन्द्रेइच," स्तेपान ने नीचे से कहा, "वह तो बहरा है – वह कैसे सुनेगा!"

सभी हँस पड़े।

"तो फिर क्या किया जाये?" गव्रीला ने ऊपर से पूछा।

"उसके दरवाज़े में तो सूराख़ है न," स्तेपान ने जवाब दिया, "आप उसमें डण्डा घुमायें।"

गव्रीला झुका।

"उसने उस सूराख़ में तो कोट ठूँस दिया है।"

"आप कोट को भीतर धकेल दें।"

फिर से दबी-घुटी भूँक सुनायी दी।

"देखो, देखो, ख़ुद अपना भण्डाफोड़ कर रही है," भीड़ में से कुछ लोगों ने कहा और फिर से सभी हँस दिये।

गव्रीला ने कान खुजाया।

"नहीं भाई," आख़िर उसने कहा, "अगर चाहते हो, तो कोट को तो ख़ुद

ही धकेलो।"

"तो दीजिये डण्डा!"

स्तेपान लपककर ऊपर गया, डण्डा लेकर उसने कोट भीतर धकेल दिया और सूराख़ में डण्डा घुमाते हुए चिल्लाने लगा – "निकलो बाहर, निकलो बाहर!" वह डण्डा घुमा ही रहा था कि कोठरी का दरवाज़ा अचानक तेज़ी से खुल गया। सभी लोग, जिनमें गव्रीला सबसे आगे था, सीढ़ी से नीचे लुढ़क गये। चाचा दुम ने खिड़की बन्द कर ली।

"देखो, देखो," गव्रीला अहाते से चिल्लाया, "देखो, ज़रा सँभल कर!"

गेरासिम दहलीज़ पर निश्चल खड़ा था। सीढ़ी के नीचे इन सभी तुच्छ लोगों की भीड़ जमा थी। वह जर्मन कुर्ता पहने कूल्हों पर हाथ रखे हुए ऊपर से देख रहा था। अपने लाल किसानी कुर्ते में वह इनके मुक़ाबले में देव-सा लग रहा था। गव्रीला एक क़दम आगे बढ़ आया।

"देखो मियाँ," वह बोला, "मेरे यहाँ गड़बड़ नहीं चलेगी।"

और वह उसे इशारों से यह समझाने लगा कि मालकिन अवश्य ही तुम्हारा कुत्ता ले लेना चाहती हैं। उसे अभी हमारे हवाले कर दो वरना तुम्हारी मुसीबत आयेगी।

गेरासिम ने उसकी तरफ़ देखा, कुत्ते की तरफ़ इशारा किया, हाथ से अपनी गर्दन पर ऐसे इशारा किया मानो फन्दा खींच रहा हो और कारिन्दे की तरफ़ प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

"हाँ, हाँ," उसने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, अवश्य ही।"

गेरासिम ने नज़रें झुका लीं, फिर अचानक झटके के साथ तन गया, फिर से मूमू की तरफ़ इशारा किया, जो इस दौरान भोलेपन से दुम हिलाती और जिज्ञासा से कान घुमाती हुई उसके पास ही खड़ी थी, अपनी गर्दन पर फाँसी के फन्दे का संकेत दोहराया और अर्थपूर्ण ढंग से अपनी छाती पर हाथ मारा, मानो यह घोषणा कर रहा हो कि मूमू को मारने की ज़िम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

"तुम धोखा दे दोगे," गव्रीला ने जवाब में हाथ हिलाकर कहा।

गेरासिम ने उसको ध्यान से देखा, तिरस्कार से मुस्कुराया, फिर से छाती पर हाथ मारा और फटाक से दरवाज़ा बन्द कर दिया।

सभी ने चुपचाप एक-दूसरे की तरफ़ देखा।

"इसका क्या मतलब है?" गव्रीला बोला, "उसने तो दरवाज़ा बन्द कर लिया?"

"अब उसे कुछ न कहिये, गव्रीला अन्द्रेइच," स्तेपान ने कहा, "उसने अगर वादा किया है, तो वह उसे पूरा करेगा। वह ऐसा ही है... वादा करता है तो ज़रूर उसे पूरा करता है। इस मामले में वह हम लोगों जैसा नहीं है। जो सच है, वह

तो सच ही है। हाँ।"

"हाँ," सभी ने दोहराया और सिर हिलाये। "हाँ, ऐसा ही है।"

चाचा दुम ने खिड़की खोली और उसने भी कहा, "हाँ, सच है।"

"देखेंगे," गव्रीला बोला, "निगरानी तो फिर भी करनी ही चाहिए। अरे, येरोश्का!" गाढ़े का पीला कुर्ता पहने ज़र्द चेहरे वाले एक व्यक्ति से, जिसे माली माना जाता था, उसने कहा, "तुम्हें तो कुछ ख़ास काम नहीं करना है न? डण्डा लेकर यहाँ बैठ जाओ और अगर कोई भी गड़बड़ हो, तो फ़ौरन भागकर मुझे ख़बर देना!"

4

येरोश्का डण्डा लेकर सीढ़ी के सिरे पर बैठ गया। कुछ जिज्ञासुओं और छोकरों को छोड़कर बाक़ी भीड़ छँट गयी। गव्रीला घर लौटा और लुबोव लुबीमोव्ना से मालकिन को यह सूचना देने के लिए कहा कि उनके हुक्म की तामील कर दी गयी है। मगर ख़ुद सावधानी बरतते हुए उसने कोचवान को पुलिस के हरकारे के पास भेज दिया। ज़मींदारिन ने रूमाल में गाँठ लगायी, उसे यू-डी-कोलोन से तर करके सूँघा, कनपटियों को मला, चाय पी और अभी तक लारेल के प्रभाव में होने के कारण फिर से सो गयी।

इस सारे हंगामे के एक घण्टे बाद कोठरी का दरवाज़ा खुला और गेरासिम बाहर निकला। वह बढ़िया कुर्ता पहने था और रस्सी से बँधी मूमू उसके पीछे-पीछे आ रही थी। येरोश्का एक तरफ़ को हट गया और उसे गुज़र जाने दिया। गेरासिम फाटक की तरफ़ बढ़ चला। लड़के और अहाते में खड़े सभी लोग चुपचाप उसे जाते देखते रहे। गेरासिम ने तो पीछे की तरफ़ मुड़कर भी नहीं देखा और केवल सड़क पर पहुँचकर ही उसने टोपी पहनी। गव्रीला ने उसी येरोश्का को मुख़बिरी करने के लिए उसके पीछे भेजा। येरोश्का ने दूर से गेरासिम को मूमू के साथ भटियारख़ाने में जाते देखा और उसके बाहर आने की राह देखने लगा।

भटियारख़ाने वाले गेरासिम को जानते थे और उसके इशारे समझते थे। उसने मांस समेत पत्तागोभी का शोरबा लाने को कहा और मेज़ पर हाथ टिकाकर बैठ गया। मूमू उसकी कुर्सी के पास खड़ी थी और शान्त भाव से अपनी समझदार आँखों से उसे देख रही थी। उसके बाल चमक रहे थे। साफ़ नज़र आ रहा था कि अभी कुछ ही देर पहले उन्हें कंघे से साफ़ किया गया है। गेरासिम के लिए शोरबा लाया गया। उसने उसमें रोटी के टुकड़े डाले, मांस के छोटे-छोटे टुकड़े किये और प्लेट को फ़र्श पर रख दिया। मूमू अपनी सामान्य

शिष्टता से, थूथनी को शोरबे से तनिक छुआते हुए ही उसे खाने लगी। गेरासिम देर तक उसे देखता रहा। अचानक आँसुओं की दो बड़ी-बड़ी बूँदें उसकी आँखों से लुढ़क पड़ीं – एक मूमू के ढालू माथे पर और दूसरी शोरबे में जा गिरी। उसने चेहरे को हाथ की ओट में कर लिया। मूमू ने आधा शोरबा खाया और मुँह पर ज़ुबान फेरते हुए एक तरफ़ को हट गयी। गेरासिम उठा, उसने शोरबे के पैसे दिये और बाहर चल दिया। भटियारख़ाने का नौकर कुछ हैरानी से उसे देखता रह गया। गेरासिम को देखते ही येरोश्का झटपट ओट में जा खड़ा हुआ, उसे अपने पास से निकल जाने दिया और फिर उसके पीछे-पीछे हो लिया।

गेरासिम धीरे-धीरे चल रहा था और मूमू की रस्सी नहीं खोल रहा था। सड़क के सिरे तक जाकर वह मानो किसी उधेड़बुन में रुका और फिर अचानक तेज़ क़दमों से सीधे क्रीम्स्की उतारे की तरफ़ चल पड़ा। रास्ते में वह एक घर के अहाते में गया, जहाँ उपभवन बन रहा था और वहाँ से दो ईंटें उठाकर उसने बग़ल में दबा लीं। क्रीम्स्की उतारे से वह तट के साथ-साथ चल पड़ा और उस जगह तक गया जहाँ चप्पुओं सहित दो नावें खूँटे से बँधी हुई थीं (उसने उन्हें पहले से ही देख लिया था) और मूमू को साथ लेकर एक नाव पर सवार हो गया। बग़ीचे के कोने में बनी झोपड़ी में से एक लंगड़ा बूढ़ा बाहर निकला और चीख़ने-चिल्लाने लगा। मगर गेरासिम ने सिर्फ़ सिर हिलाया और इतने ज़ोर से नाव खेने लगा (यद्यपि वह प्रवाह के प्रतिकूल ही ऐसा कर रहा था) कि आन की आन में काफ़ी दूर जा पहुँचा। बूढ़ा खड़ा रहा, खड़ा रहा, पहले बायें और फिर दायें हाथ से उसने पीठ खुजलायी और फिर लँगड़ाता हुआ झोपड़ी में लौट गया।

गेरासिम नाव खेता गया, खेता गया। मास्को काफ़ी पीछे रह गया था। किनारों पर चरागाहें, बग़ीचे, खेत, वृक्षों के झुरमुट और झोपड़े दिखायी देने लगे। गाँव की अनुभूति होने लगी। उसने चप्पू रख दिये, मूमू के साथ अपना सिर सटा दिया, जो तल में पानी भर जाने के कारण उसके सामने सूखी तख़्ती पर बैठी थी और अपने भारी-भरकम हाथों को उसकी पीठ पर बाँधकर निश्चल-सा झुका रह गया। इसी बीच नाव लहर के साथ शहर की तरफ़ कुछ पीछे भी चली गयी। आख़िर गेरासिम सीधा हुआ, चेहरे पर दर्दभरे ग़ुस्से के साथ उसने ईंटों के गिर्द रस्सी लपेटी, फन्दा बनाया, उसे मूमू की गर्दन में डाला, मूमू को नदी के ऊपर उठाया और आख़िरी बार उसे देखा... मूमू किसी तरह का भय अनुभव किये बिना विश्वास के साथ गेरासिम की तरफ़ देख रही थी और धीरे-धीरे पूँछ हिला रही थी। गेरासिम ने मुँह दूसरी ओर कर लिया, आँखें मूँद लीं और हाथ खोल दिये... गेरासिम ने कुछ भी नहीं सुना – न तो गिरती मूमू की तेज़ चीख़ और न पानी की ज़ोरदार छपाक। उसके लिए तो सबसे अधिक

कोलाहलपूर्ण दिन भी मूक और मौन रहा था, जबकि हमारे लिए कोई शान्त से शान्त रात भी नीरव नहीं होती। फिर से आँखें खोलने पर उसे पहले की तरह ही एक-दूसरी से मानो होड़ करती हुई छोटी-छोटी लहरें दिखायी दीं, पहले की तरह ही वे नाव के पहलुओं से टकरा रही थीं और केवल पीछे, दूर तट की तरफ़ ही चौड़े-चौड़े घेरे-से भागते जाते थे।

गेरासिम जैसे ही आँखों से ओझल हुआ येरोश्का घर लौट आया और जो कुछ उसने देखा था, सब कह सुनाया।

"हाँ," स्तेपान ने कहा, "वह उसे डुबो देगा। यह पक्की बात है। अगर वह वादा करता है तो..."

गेरासिम किसी को भी दिन-भर नज़र नहीं आया। उसने घर पर दिन का खाना नहीं खाया। शाम के वक़्त सभी फिर खाने की मेज़ पर इकट्ठा हुए - गेरासिम तब भी नहीं आया।

"अजीब आदमी है यह गेरासिम!" मोटी धोबिन ने चिचियाती-सी आवाज़ में कहा। "भला कोई कुत्ते के लिए भी ऐसे घुलता है! है न!"

"मगर गेरासिम यहाँ आया तो था," चमचे से अपने लिए दलिया डालते हुए स्तेपान ने अचानक कहा।

"सच? कब?"

"कोई दो घण्टे पहले। फाटक पर मेरी उससे मुलाक़ात हुई थी। वह फिर यहाँ से जा रहा था, अहाते से निकल रहा था। मैं उससे कुत्ते के बारे में पूछना चाहता था, मगर उसका मूड बहुत ख़राब था। उसने मुझे धक्का देकर परे हटा दिया। वैसे उसने तो शायद मुझे एक तरफ़ करना चाहा था, यानी यह कि मैं उससे दूर रहूँ, मगर उस असाधारण बनमानस ने मेरी छाती पर ऐसे ज़ोर से हाथ जमाया, कि नानी याद आ गयी!" और स्तेपान ने उदासीभरी मुस्कान के साथ कन्धे झटके और गुद्दी खुजलायी। "हाँ, उसका हाथ तो ऐसा है कि भगवान बचाये," उसने इतना और जोड़ दिया।

स्तेपान की बात पर सभी हँस पड़े और खाना ख़त्म करके सोने चले गये।

ठीक इसी वक़्त 'त' सड़क पर कोई देव कहीं भी रुके बिना बड़ी तेज़ी से चला जा रहा था। उसकी पीठ पर गठरी और हाथ में लम्बा डण्डा था। यह गेरासिम था। वह मुड़कर देखे बिना तेज़ी से क़दम बढ़ाता जा रहा था, जल्दी-जल्दी अपने घर, अपने गाँव, अपने जन्म-स्थान की ओर। बेचारी मूमू को डूबोने के बाद वह भागता हुआ अपनी कोठरी में लौटा, झटपट कुछ चीज़ों की पोटली बनायी, पीठ पर डाली और चल दिया। रास्ते को तो उसने तभी अच्छी तरह से ध्यान में कर लिया था, जब उसे मास्को लाया गया था। जिस गाँव से ज़मींदारिन ने उसे बुलवाया था, वह सड़क से सिर्फ़ पच्चीस वेर्स्ता दूर था। वह

किसी अदम्य साहस से भरपूर, हताश और साथ ही सुखद दृढसंकल्प किये हुए चला जा रहा था। वह चला जा रहा था चौड़ा सीना उघाड़े और आँखें बेसब्री से सामने की तरफ़ ताक रही थीं। वह ऐसे जल्दी कर रहा था मानो जन्मस्थान पर बूढ़ी अम्माँ उसका इन्तज़ार कर रही हो, मानो बहुत समय अजनबी जगहों और अजनबी लोगों के बीच उसके भटकने के बाद वह उसे अपने पास बुला रही हो... गरमी की रात ने अपनी चादर फैलायी, वह शान्त और गरम थी। एक तरफ़, जहाँ सूरज डूबा था, आसमान का छोर अभी भी सफ़ेद था और सूर्य के अन्तिम प्रकाश से कुछ कुछ गुलाबी था। दूसरी ओर से नीला, धुँधला झुटपुटा ऊपर उठ रहा था। वहीं से रात चली आ रही थी। सभी ओर सैकड़ों तीतर-बटेर अपनी बोलियाँ बोल रहे थे...

गेरासिम उनका शोर नहीं सुन सकता था, उसी तरह वह वृक्षों की, जिनके पास से उसके मज़बूत क़दम उसे लिये जा रहे थे, रात्रिकालीन सरसराहट भी नहीं सुन सकता था। मगर वह अँधेरे खेतों से आने वाली पकती हुई रई की परिचित गन्ध अनुभव कर रहा था, अनुभव कर रहा था कि सामने की ओर से आने वाली हवा - जन्म-स्थान की हवा - उसके चेहरे को प्यार से सहला रही है, उसके बालों और दाढ़ी से खेल रही है। वह अपने सामने उजला होता हुआ घर का रास्ता देख रहा था, तीर की तरह सीधा रास्ता। वह देख रहा था आकाश में अनगिनत सितारे, जो उसके रास्ते को रोशन कर रहे थे और बबर की तरह ऐसे मज़बूती और मस्ती से क़दम बढ़ाता जा रहा था कि जब उदय होते हुए सूर्य ने अपनी नम, लाल किरणों से बढ़े जाते सूरमा को जगमगा दिया, तो मास्को और उसके बीच पैंतीस वेर्स्ता का रास्ता तय हो चुका था..

दो दिन बाद वह अपने घर, अपने झोपड़े में पहुँच चुका था और उस झोपड़े में रहने वाली सैनिक की बीवी तो उसे देखकर हैरान रह गयी। देव प्रतिमाओं के सामने प्रार्थना करके वह फ़ौरन मुखिया के पास पहुँचा। शुरू में तो मुखिया को आश्चर्य हुआ, मगर घास की कटाई अभी शुरू ही हुई थी। बढ़िया काम करने वाले के नाते उसे फ़ौरन हँसिया पकड़ा दिया गया और वह पहले की तरह ही घास काटने लगा। वह ऐसे लम्बे-लम्बे हाथ चलाता और घास के यों ढेर लगाता जाता था कि उसे देख-देखकर दूसरे किसानों के सीनों पर साँप लोटता था...

गेरासिम के भाग जाने के अगले दिन मास्को में उसकी अनुपस्थिति अनुभव हुई। उसकी कोठरी में जाकर उसे खोजा गया, गव्रीला को बताया गया। वह आया, उसने भी अच्छी तरह से ढूँढ़-तलाश की, कन्धे झटके और इस नतीजे पर पहुँचा कि गूँगा या तो भाग गया था या फिर अपनी बुद्धू मूमू के साथ ही डूब गया। पुलिस को ख़बर दी गयी, मालकिन को बताया गया। वह बहुत

बिगड़ी, रोयी–धोयी, हुक्म दिया कि जैसे भी हो, उसे खोजा जाये, यक़ीन दिलाया कि उसने कुत्ते को मार डालने का कभी हुक्म नहीं दिया था और आख़िर गव्रीला को ऐसी डाँट पिलायी कि वह दिन–भर सिर झटकता और तब तक "ख़ूब रही!" कहता रहा, जब तक कि चाचा दुम ने "जो रही, सो रही!" कहकर उसे शान्त नहीं कर दिया। आख़िर गेरासिम के गाँव पहुँच जाने की ख़बर आयी। ज़मींदारिन को कुछ तसल्ली हुई, शुरू में तो उसने उसे फ़ौरन मास्को में वापस बुलाने का हुक्म दे दिया, मगर बाद में यह घोषणा की कि ऐसे कृतघ्न की उसे बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। वैसे इस घटना के कुछ ही समय बाद वह ख़ुद भी चल बसी और उसके वारिसों को गेरासिम में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने तो माँ के बाक़ी नौकर–चाकरों को भी कर अदा करने के लिए पैसे कमाने के लिए भेज दिया।

अपने एकाकी झोपड़े में गेरासिम अब भी अकेला ही रहता है, पहले की तरह ही हट्टा–कट्टा और ताक़तवर है, पहले की तरह ही अकेला चार का काम करता है, पहले जैसा ही अकड़बाज़ और धीर–गम्भीर है। मगर इस बात की तरफ़ पड़ोसियों का ध्यान गया है कि मास्को से लौटने के बाद वह औरतों में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं लेता, उनकी तरफ़ नज़र तक उठाकर नहीं देखता और कभी कोई कुत्ता नहीं पालता। "वैसे यह तो उसकी ख़ुशक़िस्मती ही है," देहाती आपस में कहते हैं, "कि उसका औरत के बिना काम चल जाता है और रहा कुत्ता – तो उसका उसे क्या करना है? उसके अहाते में तो फन्दा डालकर भी चोर को नहीं लाया जा सकता!" गूँगे की बेपनाह ताक़त के बारे में दूर–दूर तक ऐसी ख़बर फैली हुई है।

अनु. – मदनलाल 'मधु'



फ़्योदोर मिखाइलोविच दोस्तोयेव्स्की

(1821–1881)

फ़्योदोर मिखाइलोविच दोस्तोयेव्स्की का जन्म एक ग़रीब मध्य वर्गीय परिवार में हुआ और अत्यन्त विकट परिस्थितियों में उनकी शिक्षा–दीक्षा हुई। कितने ही धन्धे–रोज़गारों पर हाथ आज़मा चुकने के बाद वह साहित्य की ओर झुके। पीटर्सबर्ग के दलित उत्पीड़ित सरकारी कर्मचारियों के दु:खद जीवन पर उनके उपन्यास "निर्धन लोग" ने दोस्तोयेव्स्की को रूसी लेखकों की प्रथम पाँत में ला खड़ा किया। बेलेन्स्की ने तो उन्हें "तहख़ानों और खोलियों में बसने वालों का प्रेमी" कहा था।

अपने साहित्यिक जीवन के मध्याह्नकाल में दोस्तोयेव्स्की भी ज़ारशाही दमन से बचे न रहे। 'पेत्राशेवत्सी' नामक क्रान्तिकारी दल की बैठक में "गोगोल के नाम बेलेन्स्की का पत्र" पढ़ने के अभियोग में उन्हें मौत की सज़ा सुनायी गयी! नियत तिथि पर अपने कुछ अन्य साथियों के साथ मुँह–आँखों पर कपड़ा लपेटे दोस्तोयेव्स्की ज़ारशाही की गोली की प्रतीक्षा कर रहे थे कि तभी ज़ार की "असीम कृपा" से मृत्युदण्ड को साइबेरिया निर्वासन में बदल दिये जाने की उन्हें सूचना दी गयी। दोस्तोयेव्स्की का एक साथी तो पागल हो गया। मृत्यु की प्रतीक्षा के उन भयंकर क्षणों का दोस्तोयेव्स्की ने अपने उपन्यास "बौड़म" में बड़ा सजीव और हृदयस्पर्शी वर्णन किया है।

अवर्णनीय ग़रीबी, क़र्ज़दारों के तक़ाज़े, मिर्गी के दौरे, प्रियजनों की मृत्यु, प्रकाशकों द्वारा शोषण – साइबेरिया से लौटने पर यही सब कुछ दोस्तोयेव्स्की को देखने को मिला। इस काल में लिखे गये उनके उपन्यासों ने उन्हें विश्व ख्याति का लेखक बना दिया। "मृतकों का घर" में उन्होंने ज़ारशाही रूस में क़ैदियों के भयंकर जीवन का वर्णन किया है। "अपराध और दण्ड" लेखक की सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। "बौड़म", "जुआरी", "कारामज़ोव बन्धु" इत्यादि उनकी अन्य सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

जीवन के अन्धकारमय पहलुओं का चित्रण करने में, मानव हृदय की गहराइयों में पैठकर आत्मा की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृत्तियों को खोलकर रख देने में निस्सन्देह दोस्तोयेव्स्की सिद्धहस्त थे, और उत्पीड़ितों–दलितों के प्रति उनकी अगाध संवेदना आज भी हमारे हृदय को द्रवित करती है। किन्तु वह उत्पीड़ित मानव की मुक्ति को सक्रिय संघर्ष में नहीं देखते थे, और आरम्भ की कुछ कृतियों को छोड़कर निराशा से भरे उनके उपन्यासों में प्रायश्चित तथा हृदय–परिवर्तन द्वारा व्यक्तिगत मुक्ति का ही रास्ता देखने को मिलता है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में तो वह समाजवाद और जनवादी आन्दोलनों के विरोधी बन गये थे।

26 जनवरी, 1881 को फेफड़े की बीमारी से उनकी मृत्यु हो गयी।

बड़े दिन का कल्पवृक्ष

मैं उपन्यासकार हूँ, और मुझे लगता है कि यह कहानी मेरी मनगढ़न्त है। मैंने लिखा कि 'लगता है,' हालाँकि मैं जानता हूँ – निश्चित तथ्य के रूप में जानता हूँ – कि मैंने इसे यों ही गढ़ लिया है। फिर भी यह कल्पना मेरा पीछा नहीं छोड़ती कि कहीं न कहीं, किसी न किसी समय, ज़रूर ऐसी घटना घटी होगी – और यह कि ठीक बड़े दिन से पहली रात, किसी बड़े नगर में, भयानक पाले के बीच ही इस घटना का जन्म हुआ होगा।

मेरी कल्पना में एक लड़का उभरता है, एक छोटा लड़का, छह साल का, अथवा इससे भी कम उम्र का। उस सुबह एक ठण्डे और सीलन भरे तहख़ाने में उसने आँखें खोलीं। बदन पर वह ऐसे ही एक छोटा-सा चोग़ा पहने था, और ठण्ड के मारे थरथरा रहा था। साँस के साथ मुँह से भाप के बादल निकल रहे थे। कोने में लकड़ी की एक पेटी पर बैठा वह भाप का एक गोला मुँह से छोड़ता, ऊबी नज़र से उसे दूर जाते हुए देखता, और इस तरह अपना जी बहलाने का प्रयत्न करता। लेकिन वह बुरी तरह भूखा था। रह-रहकर वह उठता, लकड़ी के उस तख़्ते के पास जाता जहाँ उसकी बीमार माँ, तवे की रोटी की भाँति पतला एक गद्दा बिछाये और तकिये की जगह सिर के नीचे एक पोटली रखे, आँखें मूँदे पड़ी थी। वह यहाँ कैसे आयी? निश्चय ही वह अपने लड़के के साथ किसी दूसरे नगर से आयी होगी, और यहाँ आकर यकायक बीमार पड़ गयी। मकान मालकिन को, जो इस तहख़ाने के 'कोने' किराये पर देती थी, दो दिन हुए कि पुलिस आयी और पकड़ ले गयी। वह थाने में बन्द थी। अन्य निवासी, त्योहार इतना निकट था इसलिए, उमंग में भरे बाहर निकल गये थे – केवल एक को छोड़कर जो पिछले चौबीस घण्टों से नशे में धुत्त पड़ा था। उसने बड़े दिन की प्रतीक्षा नहीं की, पहले ही मना लिया। एक अन्य कोने में अस्सी बरस की एक मरियल बुढ़िया, जो किसी ज़माने में बच्चों की आया का काम करती थी और अब संगी-साथी विहीन मरने के लिए यहाँ पटक दी गयी थी, गठिया के मारे कराह और कांख रही थी, लड़के पर झिड़कियों और

गालियों की बौछार कर रही थी। लड़का डर के मारे उसके कोने के पास तक नहीं भटकता था।

बाहर के कमरे में पानी तो मिल गया, उसने पिया भी, लेकिन रोटी का एक टुकड़ा तक कहीं नज़र नहीं आया। बीसियों बार वह अपनी माँ के पास गया, मन में हुआ कि उसे जगा दे, लेकिन उसने जगाया नहीं। आख़िर साँझ घिर आयी। रोशनी के नाम पर वहाँ कुछ नहीं था और अँधेरे में उसे डर लगने लगा। माँ के पास जाकर उसने उसका चेहरा छुआ। माँ ज़रा भी नहीं हिली, और उसका बदन उतना ही ठण्डा था जितना कि तहख़ाने की दीवार। उसे बड़ा अजीब मालूम हुआ। मन में सोचा : "यहाँ बेहद ठण्ड है।" कुछ देर वह वैसे ही खड़ा रहा। उसका हाथ अब भी अनजाने में मृत स्त्री के कन्धों पर टिका था। इसके बाद अपनी उँगलियों को गरमाने के लिए, मुँह से भाप छोड़कर उसने उन्हें फूँका। फिर, चुपचाप, बिस्तरा टटोलकर उसने अपनी टोपी उठायी और बाहर निकल गया। चला तो वह इससे भी पहले जाता, लेकिन उसके मन में पड़ोसी के उस भारी-भरकम कुत्ते का डर बैठा था जो ज़ीने के ठीक ऊपर, दरवाज़े के सामने, दिन-भर भौंकता रहा। कुत्ता अब वहाँ नहीं था, सो वह बाहर सड़क पर खिसक गया।

बाप रे, यह भी क्या नगर है! इस तरह का नगर उसने पहले कभी नहीं देखा था। जहाँ से वह आया था, रात को वहाँ हमेशा इतना घटाटोप अँधेरा रहता था कि कुछ कहना नहीं। समूची सड़क पर ले-देकर एक लैम्प टिमटिमाता था। वहाँ लकड़ी के छोटे-छोटे, नीचे को दबे घर थे, जिनकी खिड़कियों के पट बन्द रहते थे। साँझ के बाद सड़क पर कोई नज़र नहीं आता था, सब अपने-अपने घरों में घुस जाते थे, और कुत्तों के भौंकने-रोने के सिवा और कुछ नहीं सुनायी देता था। कुत्तों की टोलियाँ, सैकड़ों नहीं बल्कि हज़ारों की संख्या में, दल बाँधकर रात-भर भट्टरोदन करती थीं। लेकिन वहाँ इतनी ठण्ड नहीं थी, और खाने को भी कुछ न कुछ मिल जाता था। लेकिन यहाँ – सच, कितना अच्छा होता अगर इस समय पेट में कुछ पड़ जाता। ओह, कितनी चहल-पहल, कितना शोर-गुल है यहाँ! रोशनी से सभी कुछ जगमग और लोगों की भीड़-भाड़, घोड़े और गाड़ियाँ, और पाले का यह हाल कि कुछ न पूछो! घोड़ों के ऊपर, गरम साँस छोड़ते हुए उनके मुँह और नथुनों के इर्दगिर्द और उनके जबड़ों से, भाप के घने बादल लटके थे, और उनके नाल जड़े टाप बर्फ़ के महीन कणों के नीचे छिपे सड़क के पत्थरों से टकराकर खनखना रहे थे, और हर कोई आगे बढ़ रहा था, उतावली में एक-दूसरे को धकियाता हुआ – ओह, कितना अच्छा होता अगर इस समय अपने पेट में डालने के लिए उसे कुछ मिल जाता! यकायक वह छटपटाया, भूख के मारे उसका बुरा हाल हो

गया। पास से एक पुलिसमैन गुज़र गया, मुँह मोड़कर ताकि लड़के पर उसकी नज़र न पड़े।

और यह एक दूसरी सड़क थी – ओह, कितनी चौड़ी! लगता है, जैसे यहाँ वह कुचला ही जायेगा, बचेगा नहीं। हर कोई चिल्ला रहा है, दौड़ा और लपका जा रहा है, घोड़ों पर चाबुक फटकार रहा है – और रोशनी – रोशनी की तो जैसे बाढ़ आ गयी है। और यह क्या है? काँच की एक भीमाकार खिड़की और खिड़की के भीतर छत को छूता हुआ एक पेड़। यह फ़र का पेड़ था, ढेर सारे कुमकुमों और सुनहरी पत्तियों से चमचमाता, सेव और छोटी-छोटी गुड़िया और घोड़े लटके हुए थे जिसकी टहनियों से। और साफ़-सुथरे, एक से एक बढ़िया कपड़े पहने हुए बच्चों की वह चहल-पहल! वे हँस रहे थे, खेल रहे थे, और कोई चीज़ पी रहे थे। और तभी एक लड़की – छोटी-सी लड़की – एक लड़के के साथ नाचने लगी। कितनी सुन्दर थी वह, बिल्कुल गुड़िया-सी। और संगीत – खिड़की में से संगीत की आवाज़ आ रही थी। लड़के ने यह सब देखा, अचरज और कौतूहल से भर गया और उसका चेहरा हँसी से खिल गया, हालाँकि उसके पाँव के अँगूठे ठण्ड के मारे दुख रहे थे, उसकी उँगलियाँ अकड़कर सुन्न पड़ गयी थीं, उन्हें मोड़ते या हिलाते दर्द होता था। और तभी यकायक, लड़के को याद आया कि उसके पंजे दुःख रहे हैं, उँगलियाँ दर्द कर रही हैं और वह रोने लगा, भागकर आगे बढ़ गया। एक अन्य खिड़की पर उसकी नज़र पड़ी, काँच के भीतर एक अन्य पेड़ उसे दिखायी दिया। वहाँ एक मेज़ लगी थी, और मेज़ पर भाँति-भाँति के केक-बिस्कुट सजे थे – बादामी, लाल और पीले रंग के, और मेज़ पर तीन ख़ूब ठाठदार नवयुवतियाँ बैठी थीं। जो भी उनके पास जाता केक लेकर लौटता। बाहर से आने वालों का ताँता लगा था, दरवाज़ा बार-बार खुल रहा था, ढेर के ढेर पुरुष और स्त्रियाँ भीतर जा रहे थे। लड़का भी दबे पाँव आगे बढ़ा, यकायक दरवाज़ा भी उसने खोल डाला, और भीतर पहुँच गया। ओह, उसे देखते ही किस बुरी तरह वे उस पर चिल्लाये, और खदेड़कर उसे बाहर करने लगे। तभी तेज़ी से एक स्त्री उसके पास आयी, और चुपके से एक कोपेक उसने उसके हाथ में थमा दिया और ख़ुद अपने हाथों से उसके लिए बाहर का दरवाज़ा खोल दिया। वह बेहद सहम और सकपका गया था। कोपेक उसके हाथ से छूट गया और लुढ़कता हुआ खन्न से सीढ़ियों पर जा गिरा। उसकी उँगलियों का ख़ून जम गया था, उनमें इतनी सकत नहीं थी कि कोपेक को मज़बूती से थाम सकतीं। उसने फिर अपने क़दम तेज़ किये और आगे बढ़ चला। कहाँ और किस ओर, यह वह ख़ुद नहीं जानता। वह फिर रुआँसा हो आया, लेकिन डर के मारे रो न सका। बस, वह तो बराबर दौड़ता जाता था और उँगलियों को गरमाने के लिए उनमें फूँक मारता जाता था। और

वह दुखी था, बेहद दुखी था, क्योंकि वह अपने-आप को सहसा इतना अकेला, और इतना डरा-सहमा अनुभव कर रहा था। और अचानक... बाप रे, ख़ुदा रहम करे! यह अब फिर क्या उसकी आँखों के सामने आ गया? लोगों की एक भीड़-सी जमा हो गयी थी, और सबके सब मुग्ध भाव से कुछ देख रहे थे। काँच की खिड़की के पीछे तीन गुड्डे नज़र आ रहे थे। लाल और हरे रंग के कपड़ों में सजे हुए। ऐसा मालूम होता था मानो वे एकदम जीवित हों। उनमें एक बूढ़ा था, छोटा-सा। वह बैठा हुआ एक बड़ा-सा बेला बजा रहा था बाक़ी दो भी बराबर में मौजूद थे और एक-दूसरे की ओर देखते हुए छोटे-छोटे बेले बजा रहे थे। अपने सिर हिला-हिलाकर वे ताल दे रहे थे और उनके होंठ हिल रहे थे और उनके मुँह से आवाज़ - हाँ, सचमुच की आवाज़ - निकल रही थी, लेकिन उनकी काँच के इस पार सुनायी नहीं दे रही थी। शुरू में लड़के को ऐसा ही मालूम हुआ कि वे जीवित हैं - सचमुच जीवित हैं - लेकिन फिर जब उसने समझा कि ये खिलौने हैं तो वह हँसा। ऐसे खिलौने उसने पहले कभी नहीं देखे थे, और वह यह सोच तक नहीं सकता था कि ऐसे भी खिलौने होते हैं। उसका हृदय फिर रोने के लिए उमड़-घुमड़ रहा था, लेकिन उसे अच्छा लगा, खिलौनों को देखकर उसे ख़ुशी मालूम हुई। तभी अचानक उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो किसी ने पीछे से उसका चोग़ा पकड़कर खींचा हो। एक बड़ा लड़का - पूरा शैतान - उससे सटा खड़ा था। सहसा उसने उसके सिर पर आघात किया, उसकी टोपी छीन ली और कसकर टँगड़ी मारी। लड़का ज़मीन पर गिर पड़ा। फ़ौरन ही चिल्लाने की आवाज़ आयी, भय के मारे वह सिट्टी-पिट्टी भूल गया, उछलकर उठ खड़ा हुआ और फिर भागने लगा। वह भाग रहा था, उसे कुछ पता नहीं था कि वह कहाँ जा रहा है, लपककर किसी के सहन के दरवाज़े में घुस गया और लकड़ियों के एक ढेर के पीछे बैठ गया। उसने सोचा : "अब मुझे कोई नहीं पकड़ सकता। फिर यहाँ अँधेरा भी है।"

वह दुबका-सिमटा बैठा था, भय के मारे साँस तक नहीं ले रहा था और तभी अचानक, एकदम सहसा, उसे भारी ख़ुशी महसूस हुई - उसके हाथ और पाँव सहसा दुखने बन्द हो गये, गरमायी का उसने अनुभव किया, लगता था जैसे वह अँगीठी के पास बैठा हो। इसके बाद उसे फिर कँपकँपी-सी चढ़ गयी। वह चौंक उठा - अरे, तो क्या वह सचमुच सो गया था? कितनी अच्छी नींद आती है यहाँ! "अच्छा है, कुछ देर यहाँ और सुस्ता लूँ। इसके बाद एक बार और उन खिलौनों को जाकर देखूँगा," लड़के ने कहा और खिलौनों की बात सोच मन ही मन मुस्कुराया। "लगता है, जैसे वे एकदम जीवित हों!" और सहसा उसे अपने ऊपर अपनी माँ के लोरी गाने की आवाज़ सुनायी दी। "माँ, मैं सो रहा हूँ। कितनी अच्छी नींद आती है यहाँ!"

"चलो, मेरे नन्हे-मुन्ने, अब मैं तुम्हें अपना बड़े दिन का वृक्ष दिखाऊँ!" सहसा सिर के पास किसी की कोमल फुसफुसाहट सुनायी दी।

उसने सोचा कि यह भी उसकी माँ की ही आवाज़ है, लेकिन नहीं, यह उसकी माँ की आवाज़ नहीं थी। किसकी आवाज़ थी, यह वह नहीं जान सका, लेकिन अँधेरे में कोई उसके ऊपर झुका और उसने उसे अपने हृदय से लगा लिया; और उसने उसकी ओर अपने हाथ फैला दिये, और... और एकाएक – ओह, कितनी जगमग-जगमग रोशनी थी! ओह, बड़े दिन का पेड़ कितना शानदार था! लेकिन वह फ़र वृक्ष नहीं था। वह कोई निराला ही वृक्ष था। वैसा पेड़ उसने पहले कभी नहीं देखा था। लेकिन यह जगह कौन-सी थी? वह अब कहाँ पहुँच गया था? हर चीज़ उजली और चमचम चमकती थी, और चारों ओर खिलौने ही खिलौने। लेकिन नहीं, वे खिलौने नहीं थे, वे छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ थे, एकदम उजले और चमचम करते। चारों ओर हवा में तैरते वे उसके पास आये, एक सिरे से सबने उसका मुँह चूमा, उन्होंने उसे उठाया और अपने साथ ले गये, और अब वह ख़ुद भी उड़ रहा था, और उसने देखा कि उसकी माँ उसकी ओर देख रही है और ख़ुशी से हँस रही है। "माँ, माँ, यहाँ कितना अच्छा है, माँ!" और उसने एक बार फिर बच्चों का मुँह चूमा और उसका मन उन गुड़ियों के बारे में उन्हें बताने के लिए एकदम ललक उठा जिन्हें उसने काँच की खिड़की में से देखा था। "तुम कौन हो, लड़को? तुम कौन हो, लड़कियो?" उसने पूछा, हँसते और मुग्ध भाव से उन्हें देखते हुए।

"यह ईसा का बड़े दिन का वृक्ष है," उन्होंने जवाब दिया। "आज के दिन ईसा हमेशा इस पेड़ को सजाते हैं, उन छोटे बच्चों के लिए जिनके पास उनके अपने पेड़ नहीं होते...!"

अब उसने जाना कि ये लड़के और लड़कियाँ, सबके सब, उस जैसे ही हैं। उनमें से कुछ ऐसे थे, जो पैदा होने के बाद, उन टोकरियों में पड़े-पड़े पाले से जम गये थे जिनमें रखकर उन्हें पीटर्सबर्ग के खाते-पीते और सम्पन्न लोगों के दरवाज़ों के आगे छोड़ दिया गया था, कुछ ऐसे थे जिन्हें अनाथ कहकर फ़िन्निश स्त्रियों के साथ लगाकर जहाज़ पर डाल दिया गया था और वहाँ वे घुट-घुटकर मर गये थे। कुछ अपनी भूखी माताओं की छातियों से चिपके-चिपके ही ख़त्म हो गये (समारा के अकाल में), और कुछ रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बों की गन्दी हवा में इस दुनिया से विदा हो गये। वे सब अब यहाँ मौजूद थे, और वे सब फ़रिश्तों की भाँति ईसा को घेरे हुए थे, और ईसा उनके बीच में खड़े हुए हाथ फैलाकर उन्हें और गुनाहों में डूबी उनकी माताओं को आशीर्वाद दे रहे थे... और इन बच्चों की माताएँ एक ओर खड़ी आँसू बहा रही थीं। उनमें से प्रत्येक अपने लड़के या लड़की को पहचानती थी। बच्चे उड़ते हुए उनके पास जाते थे,

उनका मुँह चूमते थे, अपने छोटे-छोटे हाथों से उनके आँसू पोंछते थे और उनसे अनुरोध करते थे कि वे रोयें नहीं, क्योंकि वे इतने ख़ुश हैं।

और नीचे, सुबह होने पर, लकड़ियों के ढेर के पीछे चौकीदार को एक छोटे लड़के की लाश दिखायी दी। लाश पाले में जम गयी थी। उन्होंने उसकी माँ की भी खोज की... लेकिन वह उससे पहले ही मर चुकी थी। दोनों, परम पिता के आगे, स्वर्ग में एक-दूसरे से मिले।

लेकिन मैंने ऐसी कहानी क्यों गढ़ी – एक साधारण डायरी से इतनी भिन्न, और एक लेखक की डायरी से तो और भी अधिक? और मैंने वचन दिया था कि सच्ची घटनाओं को लेकर दो कहानियाँ भेंट करूँगा। ठीक ऐसा ही तो – मैं बराबर सोचता हूँ कि यह सब सचमुच की घटना है – यानी तहख़ाने में जो कुछ हुआ और लकड़ियों के ढेर के पीछे जो कुछ हुआ, वह सच्ची घटना हो सकती है। लेकिन रही ईसा के बड़े दिन के पेड़ की बात, तो उसके सम्बन्ध में मैं यह नहीं कह सकता कि यह भी कोई सच्ची घटना ही हो सकती है!

अनु. – नरोत्तम नागर



लेव तोल्स्तोय

(1828–1910)

"विराट, महाकाव्यात्मक रचनाओं के स्रष्टा तोल्स्तोय हम सबके गुरु हैं... तोल्स्तोय हमारे लिए नैतिक उदात्तता, धीरज और उदारता के भी अनुपम उदाहरण है," फ़्रांसीसी लेखक अनातोल फ़्रांस ने लिखा है।

50 से अधिक वर्षों तक सारी दुनिया "जटिल, और हर चीज़ में श्रेष्ठ" महान तोल्स्तोय का स्वर सुनता रहा। अपने विराट और शानदार 'युद्ध और शान्ति' उपन्यास में लेखक ने रूसी जनता के देश-प्रेम का जोश दिखाया है जिसकी बदौलत ही रूस ने 1812 के देशभक्तिपूर्ण युद्ध में विजय प्राप्त की।

'पुनरुत्थान' उपन्यास, 'इवान इल्यीच की मौत', 'क्रूज़र सोनाटा' कहानियों, 'तम-सत्ता' तथा 'जीवित शव' नाटकों और अनेक अन्य रचनाओं में तोल्स्तोय ने सामाजिक और राजनीतिक उत्पीड़न के सभी प्रकारों और रूपों के विरुद्ध अपनी आवाज़ को नैतिक दार्शनिक शिखरों तक ऊँचा उठाया है।

तोल्स्तोय ने दार्शनिक-धार्मिक, सौन्दर्यबोधात्मक और प्रचारात्मक रचनाएँ भी लिखी हैं। 1903 में लिखी गयी 'नाच-पार्टी के बाद' कहानी लेखक की मृत्यु के पश्चात 1911 में ही पहली बार प्रकाशित हुई थी।

नाच-पार्टी के बाद

"आपका कहना है कि मनुष्य अपने आप तो भले-बुरे को नहीं समझ सकता, सब कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करता है, मनुष्य परिस्थितियों की उपज होता है। मैं यह नहीं मानता। मैं समझता हूँ कि सब संयोग का खेल है। कम से कम अपने बारे में तो मुझे ऐसा ही लगता है।"

हमारे बीच बहस चल रही थी। कहा गया कि मनुष्य के चरित्र को सुधारने से पहले जीवन की परिस्थितियों को सुधारना ज़रूरी है। बहस के ख़ात्मे पर ये शब्द हमारे दोस्त इवान वसील्येविच ने कहे, जिनका हम सब बड़ा मान करते थे। सच तो यह है कि बहस के सिलसिले में किसी ने भी यह नहीं कहा था कि हम स्वयं ही भले और बुरे का अन्तर नहीं समझ सकते। पर इवान वसील्येविच की कुछ ऐसी आदत थी कि बहस की गरमागरमी में जो सवाल उनके अपने मन में उठते, वह उन्हीं के जवाब देने लगते और उन्हीं विचारों से सम्बन्धित अपने जीवन के अनुभव सुनाने लगते। किसी घटना की चर्चा करते समय अक्सर वह इस तरह खो जाते कि उन्हें चर्चा के उद्देश्य का भी ध्यान नहीं रहता था। घटनाएँ वह सदा बड़े उत्साह और निश्छलता से सुनाते थे। इस बार भी ऐसा ही हुआ।

"कम से कम अपने बारे में तो मैं यही कहूँगा। मेरे जीवन को ढालने में परिस्थितियों का नहीं, बल्कि किसी दूसरी ही चीज़ का हाथ रहा।"

"किस चीज़ का?" हमने पूछा।

"यह एक लम्बी दास्तान है। अगर आप यह समझना चाहते हैं, तो मुझे कहानी शुरू से आख़िर तक सुनानी पड़ेगी।"

"तो सुनाइये न।"

इवान वसील्येविच ने क्षण-भर सोचकर सिर हिलाया।

"तो ठीक है," वह बोले, "मेरे सारे जीवन का रुख़ एक रात, या यों कहें एक सुबह में ही बदल गया।"

"वह कैसे?"

"हुआ यह कि मैं एक लड़की से प्रेम करने लगा था। इससे पहले भी मैं कई बार प्यार कर चुका था, पर रंग इतना गाढ़ा कभी न हुआ था। यह बात बहुत पहले की है, अब तो उसकी बेटियों तक की भी शादियाँ हो चुकी हैं। उसका नाम था ब. वारेन्का ब.।" इवान वसील्येविच ने उसका पूरा नाम बताया। "पचास बरस की उम्र में भी वह देखते ही बनती थी, पर उस समय तो वह केवल अठारह वर्ष की थी और ग़ज़ब ढाती थी – ऊँचा-लम्बा, साँचे में ढला-सा छरहरा बदन, भव्य और रोबीला व्यक्तित्व। हाँ, रोबीला! वह सदा इस तरह तनी रहती, मानो झुकना उसके लिए असम्भव हो। उसका सिर ज़रा-सा पीछे की ओर अकड़ा रहता और इससे दुबली-पतली, यहाँ तक कि हाड़-हड़ीली होने के बावजूद अपने शानदान क़द की सुन्दरता के बदौलत रानी-सी लगती। उसकी रोबीली चाल-ढाल से अगर उसके होंठों पर हर वक़्त लुभावनी, मधुर मुस्कान न खेलती रहती, उसकी बेहद ख़ूबसूरत और हर वक़्त दमकती आँखें न होतीं तथा यदि उसमें जवानी का अदम्य आकर्षण न होता, तो उसका रोबीला व्यक्तित्व भय उपजाता।"

"क्या तस्वीर खींच रहे हैं इवान वसील्येविच। कविता!"

"चाहे कैसी भी तस्वीर क्यों न खींचूँ, पर उसका सौन्दर्य मैं उसमें बाँध नहीं सकता। ख़ैर, यह एक दूसरी बात है। इसका मेरी कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं। जिन घटनाओं का मैं ज़िक्र करने जा रहा हूँ, वे 1840 के आसपास घटीं। उस समय मैं एक प्रान्तीय विश्वविद्यालय में पढ़ता था। मैं नहीं जानता कि बात अच्छी थी या बुरी, पर जो बहस-मुबाहिसे और गोष्ठियाँ आजकल होती हैं, वे उन दिनों हमारे विश्वविद्यालय में नहीं होती थीं। हम बस, जवान थे और जवानों की तरह रहते थे – पढ़ते-पढ़ाते और जीवन का रस लूटते। मैं उन दिनों बड़ा मौजी और हट्टा-कट्टा युवक था। इस पर तुर्रा यह कि अमीर भी था। मेरे पास एक बढ़िया घोड़ा था। मैं लड़कियों के साथ बर्फ़-गाड़ी में बैठकर पहाड़ों की ढलानों पर से फिसलने जाया करता था (तब स्केटिंग का फ़ैशन नहीं चला था)। पीने-पिलाने की पार्टियों में भी मैं अपने विद्यार्थी दोस्तों के साथ जाता था (उन दिनों हम शैम्पेन के अतिरिक्त और कुछ नहीं पीते थे। अगर जेब ख़ाली होती तो हम कुछ भी न पीते। आजकल की तरह वोद्का तो हम छूते भी नहीं थे)। नाचना और पार्टियों में जाना मुझे सबसे अधिक अच्छा लगता था। मैं बहुत अच्छा नाचता था और देखने में भी बुरा न था।"

"इतनी नम्रता किसलिए दिखा रहे हैं?" एक महिला ने चुटकी ली। "हम सबने आपकी उन दिनों की तस्वीर देखी है। आप तो बड़े बाँके जवान थे।"

"शायद रहा हूँगा, पर मेरे कहने का यह मतलब नहीं था। मेरा प्रेम नशे की हद तक जा पहुँचा। एक दिन मैं एक नाच-पार्टी में गया। इस पार्टी का आयोजन

श्रोवटाइड के आख़िरी दिन गुबेर्नियां के रईसों के मुखिया ने किया था। रईसों का मुखिया बड़े अच्छे स्वभाव का बूढ़ा आदमी था। अमीर था, कामिरहैर की उपाधि प्राप्त था और इस तरह की पार्टियाँ करने का ख़ासा शौक़ीन था। उसकी पत्नी भी ऐसे ही अच्छे स्वभाव की थी। जब मैं उनके घर पहुँचा, तो वह मेहमानों का स्वागत करने के लिए पति के साथ दरवाज़े पर खड़ी थी। मख़मली गाउन पहने और सिर पर हीरों की छोटी-सी जड़ाऊ टोपी ओढ़े हुए। कन्धे उघड़े हुए थे, उसी तरह जैसे तस्वीरों में चित्रित महारानी येलिज़ावेता पेत्रोव्ना के। उसकी छाती और कन्धे गोरे और गुदगुदे थे और उनपर बढ़ती उम्र के चिह्न नज़र आने लगे थे। नाच-पार्टी बहुत शानदार रही। हॉल गैलरी वाला था। उस ज़माने के मशहूर साज़िन्दे मौजूद थे। वे संगीत-रसिक ज़मींदार के भू-दास थे। खाने को बहुत कुछ था। और शैम्पेन की तो जैसे नदियाँ बह रही थीं। शैम्पेन का बहुत शौक़ीन होते हुए भी मैंने वह नहीं पी – मुझे प्रेम का नशा जो था! मैं इतना नाचा, इतना नाचा कि थककर चूर हो गया। मैंने हर तरह के नाच में भाग लिया – क्वाड्रिल, वाल्ज़ और पोल्का में। और यह कहने की ज़रूरत नहीं कि मैं सबसे अधिक वारेन्का के साथ नाचा। वह सफ़ेद गाउन और गुलाबी रंग का कमरबन्द पहने थी। हाथों पर बढ़िया चमड़े के दस्ताने थे, जो लगभग उसकी नुकीली कोहनियों तक पहुँचते थे, पाँवों में सफ़ेद रेशमी जूते थे। मज़ूर्का नाच के वक़्त अनीसिमोव नाम का कमबख़्त एक इंजीनियर मेरे साथ दाँव खेल गया और वारेन्का के साथ नाचने लगा। इसके लिए मैंने उसे आज तक माफ़ नहीं किया। ज्यों ही वह हॉल में आयी, वह उसके पास जा पहुँचा और उससे नाचने का प्रस्ताव किया। मुझे पहुँचने में थोड़ी देर हो गयी थी : मैं पहले हेयर-ड्रेसर के पास, फिर दस्ताने ख़रीदने चला गया था। इसलिए वारेन्का के बजाय एक जर्मन लड़की के साथ, जिस पर कभी मेरा थोड़ा मन आया रहा था, मुझे मज़ूर्का नाचना पड़ा। मैं सोचता हूँ कि उस शाम मैं उस लड़की के साथ बहुत बेरुखी से पेश आया। मैंने न तो उससे कोई बात की और न उसकी तरफ़ देखा ही। मेरी आँखें तो दूसरी ही लड़की पर गड़ी थीं – वही लड़की जिसका क़द ऊँचा और बदन छरहरा और नाक-नक़्शा साँचे में ढला-सा था और जिसके बदन पर सफ़ेद गाउन ओर गुलाबी कमरबन्द था। उसके गालों में गुल पड़ते थे, चेहरे पर उत्साह और ख़ुशी की लाली थी और आँखों में मृदुता छलकती थी। केवल मेरी ही नहीं, सभी की आँखें उस पर जमी थीं। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी उसी को निहार रही थीं। बाक़ी सभी स्त्रियाँ उससे हेच लगती थीं। उसके सौन्दर्य से प्रभावित हुए बिना कोई रह ही नहीं सकता था।

"क़ायदे से देखा जाये, तो मज़ूर्का नाच के मामले में मैं उसका जोड़ीदार नहीं था, फिर भी ज़्यादा वक़्त मैंने उसी के साथ नाचने में बिताया। किसी झेंप-संकोच के बिना वह सारा कमरा लाँघती और सीधी मेरी ओर चली आती।

मैं भी निमन्त्रण का इन्तज़ार किये बिना उछलकर उसके पास जा पहुँचता। वह मुस्कुराती, मैं उसके दिल की बात भाँप जाता, इसके लिए वह मुस्कुराकर मुझे धन्यवाद देती। पर जब वह मेरा गुप्त नाम न बूझ पाती, तो अपने दुबले-पतले कन्धे झटकती, अपना हाथ दूसरे पुरुष की ओर बढ़ा देती, फिर मेरी ओर देखकर तनिक मुस्कुराती, मानो अफ़सोस कर रही हो और मुझे ढाढ़स बँधा रही हो। मज़ूर्का में वाल्ज़ आया, तो मैं बड़ी देर तक उसके साथ नाचता रहा। नाचते-नाचते उसकी साँस फूलने लगती, वह मुस्कुराती और धीमे-से कहती "Encore."* मैं उसके साथ नाचता जाता। मुझे लगता जैसे कि मैं हवा में तैर रहा हूँ, मुझे अपने शरीर के अस्तित्व की अनुभूति तक न होती।"

"वाह, अनुभूति तक नहीं होती थी, ख़ूब अनुभूति होती होगी, जब उसकी कमर में हाथ डालते होगे। तो अपने ही नहीं, उसके शरीर की भी अनुभूति होती होगी," एक मेहमान ने चुटकी ली।

इवान वसील्येविच का चेहरा सहसा तमतमा उठा और उसने ऊँची आवाज़ में कहा –

"यह तुम अपनी, आजकल के युवकों की बात कर रहे हो। तुम लोग शरीर के सिवा किसी और चीज़ के बारे में सोच ही नहीं सकते। हमारा ज़माना ऐसा नहीं था। ज्यों-ज्यों हमारा प्रेम किसी लड़की के लिए गहरा होता जाता था, हमारी नज़रों में उसका रूप एक देवी के समान होता जाता था। आज तुम्हें केवल टाँगें और टखने और शरीर के अंग-प्रत्यंग ही नज़र आते हैं। तुम्हारी दिलचस्पी केवल अपनी प्रेमिका के नंगे शरीर में रह गयी है। पर मैं, जैसे अलफ़ोंस कार्र ने लिखा है – सच मानो, वह बहुत अच्छा लेखक था – अपनी प्रेयसी को सदा काँसे के वस्त्रों में देखा करता था। उसे उघाड़ने के बजाय हम सदा, नूह के नेक बेटे के समान, उसे छिपाने की चेष्टा किया करते थे, पर यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी..."

"इसकी बातों की परवाह न कीजिये, आप अपनी कहते जाइये," एक अन्य श्रोता ने कहा।

"हाँ, तो मैं उसके साथ नाचता रहा, मुझे वक़्त का कोई अन्दाज़ न रहा। साज़िन्दे बुरी तरह थक गये थे – आप तो जानते हैं कि नाच के ख़ात्मे पर क्या हालत होती है – वे मज़ूर्का की ही धुन बजाते रहे थे। इसी बीच बैठक में ताश खेल रहे बुज़ुर्ग, स्त्रियाँ और दूसरे लोग उठ-उठकर खाने की मेज़ों की ओर जाने लगे थे। नौकर-चाकर इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। तीन बजने को हुए। हम इने-गिने बाक़ी मिनटों का रस निचोड़ लेना चाहते थे। मैंने फिर उससे नाचने का आग्रह किया और हम शायद सौवीं बार कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे

* एक बार और (फ़्रांसीसी)

तक नाचते चले गये।

"'भोजन के बाद मेरे साथ क्वाड्रिल नाचोगी न?' उसे उसकी जगह पर पहुँचाते हुए मैंने पूछा।

"'ज़रूर, अगर माँ-बाप मुझे घर न ले गये', उसने मुस्कुराते हुए कहा।

"'मैं उन्हें ऐसा नहीं करने दूँगा,' मैंने कहा।

"'मेरा पंखा तो दीजिये,' वह बोली।

"'देते हुए अफ़सोस होता है,' उसका सस्ता-सा सफ़ेद पंखा उसके हाथ में देते हुए मैंने कहा।

"'अफ़सोस न हो, इसलिए यह ले लो,' उसने कहा और एक पंख तोड़कर मुझे दे दिया।

"मैंने पंख ले लिया। मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा और रोम-रोम उसके प्रति कृतज्ञ हो उठा। मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। आँखों ही आँखों में मैंने अपने दिल का भाव जताया। उस समय मुझे असीम सुख और आनन्द का अनुभव हो रहा था। मेरा दिल जाने कितना बड़ा हो उठा था। मुझे लगा जैसे मैं पहले वाला युवक ही नहीं रहा। मुझे अनुभव हुआ कि मैं किसी दूसरे लोक का प्राणी हूँ, जो कोई पाप नहीं कर सकता, केवल नेकी ही नेकी कर सकता है। मैंने वह पंख अपने दस्ताने में छिपा लिया और वहीं उसके पास खड़ा रह गया, मेरे पाँव जैसे कील उठे।

"'वह देखो, वे लोग मेरे पिता जी से नाचने का आग्रह कर रहे हैं,' उसने एक ऊँचे-लम्बे, सुघड़-सुडौल आदमी की तरफ़ इशारा करते हुए कहा। कन्धों पर चाँदी के झब्बे लगाये कर्नल की वर्दी पहने, वह घर की मालकिन तथा अन्य महिलाओं के साथ दरवाज़े के पास खड़ा था।

"'वारेन्का, इधर आओ,' सिर पर जड़ाऊ टोपी ओढ़े और महारानी येलिज़ावेता जैसे कन्धों वाली घर की मालकिन ने कहा।

"वारेन्का दरवाज़े की ओर जाने लगी तो मैं भी उसके पीछे-पीछे हो लिया।

"'अपने पिता से कहो, ma chere,* कि तुम्हारे साथ नाचें।' फिर कर्नल की ओर घूमकर मालकिन बोली, 'कृपया नाचिये, प्योत्र व्लादीस्लावोविच।'

"वारेन्का का पिता ऊँचा-लम्बा ख़ूबसूरत, सुडौल तथा ताज़गी लिये बुज़ुर्ग व्यक्ति था। जान पड़ता था कि उसकी तन्दुरुस्ती का पूरा-पूरा ख़याल रखा जाता है। दमकता चेहरा, à la Nicolas I** ऐंठी हुई सफ़ेद मूँछें, सफ़ेद ही क़लमें, जो मूँछों से जा मिली थीं। आगे की ओर कढ़े हुए बालों ने कनपटियाँ ढँक रखी थीं। चेहरे पर लुभावनी, मधुर मुस्कुराहट - बेटी के समान। वह मुस्कुराता तो उसकी

* मेरी प्यारी (फ़्रांसीसी)

** ज़ार निकोलाई प्रथम की तरह (फ़्रांसीसी)

आँखें चमक उठतीं और होंठ खिल उठते। शरीर उसका बड़ा ख़ूबसूरत था, फ़ौजी अफ़सरों की तरह चौड़ी, आगे को उभरी हुई छाती और उस पर कुछेक तमग़े, कन्धे मज़बूत, टाँगें लम्बी और गठी हुईं। वह पुराने ढंग का फ़ौजी अफ़सर था। उसकी चाल-ढाल निकोलाई प्रथम के ज़माने के अफ़सरों की-सी थी।

"हम दरवाज़े के पास पहुँचे तो कर्नल को यह कहकर इंकार करते सुना कि 'मुझे नाचने-वाचने का अभ्यास नहीं रहा'। इस पर भी उसने मुस्कुराते हुए पेटी से तलवार उतारी, पास खड़े एक सेवापरायण युवक को थमा दी, अपने दायें हाथ पर चमड़े का दस्ताना चढ़ाया : 'सब बात नियम के अनुसार होनी चाहिए,' उसने मुस्कुराते हुए कहा और फिर अपनी बेटी का हाथ अपने हाथ में लेकर, थोड़ा-सा घूमकर नाचने की मुद्रा में खड़ा होकर संगीत का इन्तज़ार करने लगा।

"मज़ूर्का की धुन बजने लगी। कर्नल ने एक पाँव से फ़र्श पर ज़ोर से ठोंका दिया और दूसरा पाँव तेज़ी से घुमाकर नाचने लगा। उसकी ऊँची-लम्बी देह कमरे में वृत्त-से बनाती हुई थिरकने लगी। कभी धीरे-धीरे, बड़े बाँकपन से और कभी तेज़-तेज़, ज़ोर से वह एड़ियाँ ठकोरता। वारेन्का लता की तरह लचीली, उसके साथ-साथ तैरती, सफ़ेद रेशमी जूतों वाला पैर उठाती और ताल पर अपने पिता के क़दमों के साथ-साथ कभी लम्बे डग भरती, तो कभी छोटे। सभी मेहमानों की निगाहें उनके एक-एक अंगविक्षेप पर गड़ी रहीं। मेरे हृदय में उस समय सराहना से अधिक गहरे आनन्द की भावना रही। कर्नल के बूट देखकर तो मेरा मन जैसे द्रवित हो उठा। यों तो वे बढ़िया बछड़े के चमड़े के बने थे, परन्तु पंजे फ़ैशन के अनुसार नुकीले नहीं, चपटे थे। ज़ाहिर था कि उन्हें फ़ौज के मोची ने बनाया था। 'कर्नल फ़ैशनदार नहीं, घर के बने साधारण बूट पहनता है, ताकि अपनी चहेती बेटी को अच्छे से अच्छे कपड़े पहना सके और उसे सोसाइटी में ले जा सके,' मैंने मन ही मन सोचा। इसी कारण कर्नल के बूटों को देखकर मेरा मन द्रवित हुआ था। कर्नल किसी ज़माने में ज़रूर ही अच्छा नाचता रहा होगा। अब उसका शरीर बोझिल हो गया था, टाँगों में भी वह लोच न रह गयी थी, वह तेज़ और नाज़ुक मोड़ न ले सकता था, पर कोशिश ज़रूर कर रहा था। फिर भी उसने फ़ुर्ती के साथ हॉल का दो बार चक्कर लगाया। इसके बाद उसने अपने दोनों पाँव तेज़ी से खोले, फिर सहसा उन्हें एकसाथ जोड़कर कुछ कठिनाई के साथ एक घुटने के बल बैठ गया और वारेन्का मुस्कुराते हुए कर्नल के घुटने के नीचे आ गये स्कर्ट को छुड़ाकर बड़े बाँकपन से नाचती हुई कर्नल के इर्द-गिर्द घूम गयी। सभी ने ज़ोर से तालियाँ बजायीं। कर्नल को थोड़ी-सी कठिनाई का अनुभव हुआ, मगर वह उठा और बड़े प्यार से दोनों हाथों में अपनी बेटी का मुँह लेकर उसका माथा चूमा। फिर वह मुझे अपनी बेटी का नाच का साथी मानते हुए उसे मेरी ओर ले आया। पर मैंने

कहा कि मैं उसका नृत्य-साथी नहीं हूँ। इस पर वह दुलार से मुस्कुराया और अपनी तलवार पेटी में बाँधते हुए बोला :

"'कोई बात नहीं, अब तुम इसके साथ नाचो।'

"जिस तरह शराब की बोतल से पहले कुछ बूँदें रिसती हैं। और फिर धारा फूट निकलती है, ठीक वैसे ही मेरे अन्तर से वारेन्का के प्रति प्यार उमड़ पड़ा। इस प्यार ने सारे विश्व को आलिंगन में भर लिया। हीरों की टोपी और उभरी हुई छाती वाली घर की मालकिन, गृह-स्वामी, मेहमानों, नौकर-चाकरों और मुझसे नाराज़ इंजीनियर अनीसिमोव - सभी के प्रति मैंने असीम अनुराग का अनुभव किया। वारेन्का के पिता के प्रति, जिसने घर के बने चपटे पँजों वाले बूट पहन रखे थे और जिसकी मधुर मुस्कान अपनी बेटी की मुस्कान से बहुत मिलती-जुलती थी, मैं उल्लासपूर्ण स्नेह-भाव अनुभव कर रहा था।

"मज़ूर्का समाप्त हुआ। मेज़बानों ने हमें भोजन के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु कर्नल ब. खाने की मेज़ पर नहीं आया। बोला, 'मैं अब और न रुक सकूँगा, क्योंकि मुझे कल सुबह जल्दी उठना है।' मुझे आशंका हुई कि वह वारेन्का को भी अपने साथ ले जायेगा, पर वारेन्का अपनी माँ के साथ रुक गयी।

"भोजन के बाद मैं वारेन्का के साथ क्वाड्रिल नाचा जिसका उसने मुझे पहले से वचन दे रखा था। मैं समझ रहा था कि मेरी ख़ुशी चरम सीमा तक जा पहुँची है। पर नहीं, अब वह और भी अधिक बढ़ने लगी और क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती गयी। हमने प्रेम की कोई बात नहीं की। वह मुझसे प्रेम करती है या नहीं, यह एक सवाल ही बना रहा। पर इस विषय में मैंने न तो उससे कुछ पूछा और न अपने मन से ही। मैं प्रेम करता हूँ, यह मैंने अनुभव किया और मेरे लिए इतना ही काफ़ी था। डर था तो केवल इस बात का कि मेरे सौभाग्य पर कहीं कोई छाया न पड़ जाये।

"मैं घर पहुँचा, कपड़े बदले और सोने की तैयारी करने लगा, मगर नींद कहाँ? हाथ में अभी तक वह पंख और वारेन्का का दस्ताना था। दस्ताना उसने मुझे अपनी माँ के साथ बग्घी में चढ़ते समय दिया था। इन चीज़ों पर निगाह पड़ते ही मुझे उसका चेहरा याद हो आता था। या तो उस समय का, जब नाच के लिए दो पुरुषों में से चुनते हुए उसने मेरा गुप्त नाम बूझ लिया था और मधुर स्वर में कहा था, 'गर्व है न तुम्हारा नाम? और ख़ुश होते हुए हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया था या फिर भोजन के समय का, जब शैम्पेन के छोटे-छोटे घूँट भरते हुए उसने गिलास के ऊपर से मेरी ओर स्नेहपूर्वक देखा था। किन्तु सबसे अधिक तो मैं उसे अपने पिता के साथ नाचते हुए देखता था, उसके साथ-साथ तैरती-सी और अपने प्रशंसकों की ओर गर्व और उल्लास से देखती हुई। यह गर्व और उल्लास का भाव जितना अपने प्रति था, उतना ही अपने पिता के प्रति भी। दोनों

प्राणी, अपने आप ही, बिना किसी चेष्टा के मेरे दिल में समा गये थे और मुझे उनसे स्नेह हो गया था।

"मेरे भाई का देहान्त हो चुका है, पर उस समय हम दोनों एकसाथ रहते थे। मेरे भाई की सोसाइटी में कोई रुचि नहीं थी और वह नाच-पार्टियों में कभी नहीं जाते थे। उन दिनों स्नातक-परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और बड़ा आदर्श-जीवन बिताते थे। उस समय वह तकिये पर सिर रखे गहरी नींद सो रहे थे। आधा चेहरा कम्बल से ढँका था। उन्हें देखकर मेरा दिल दया से भर उठा। वह मेरे सुख से अनभिज्ञ थे और मैं उन्हें उसका भागीदार भी नहीं बना सकता था। मेरा नौकर, पेत्रूशा, मोमबत्ती जलाकर ले आया और कपड़े बदलवाने लगा। लेकिन मैंने उसे भेज दिया। उसकी आँखें नींद से घुटी जा रही थीं और बाल बिखरे हुए थे। वह मुझे बहुत भला लगा। किसी तरह की आहट न हो, इस ख़याल से मैं दबे पाँवों अपने कमरे में चला गया और बिस्तर पर जा बैठा। मैं बेहद ख़ुश था। यहाँ तक कि मेरे लिए सोना असम्भव हो रहा था। मुझे लगा जैसे कमरे में बड़ी गरमी है। वर्दी उतारे बिना मैं चुपचाप बाहर ड्योढ़ी में आ गया, ओवरकोट पहना और दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आया।

"लगभग पाँच बजे मैं नाच से लौटा था, और मुझे लौटे भी लगभग दो घण्टे हो चले थे। इसलिए जब मैं बाहर निकला, तो दिन चढ़ चुका था। मौसम भी बिल्कुल श्रोवटाइड के दिनों का-सा था - चारों तरफ़ धुँध छायी थी, सड़कों पर बर्फ़ पिघल रही थी और छतों से पानी की बूँदें टप-टप गिर रही थीं। उन दिनों ब. परिवार के लोग शहर के बाहर वाले हिस्से में रहा करते थे। उनका मकान एक खुले मैदान के सिरे पर था। दूसरे सिरे पर लड़कियों का एक स्कूल था। एक ओर लोगों के टहलने की जगह थी। मैं अपने घर के सामने वाली छोटी-सी गली लाँघकर बड़ी सड़क पर आ गया। सड़क पर लोग आ-जा रहे थे। बर्फ़-गाड़ियों पर गाड़ीवान लकड़ी के तख़्ते लादे लिये जा रहे थे। गाड़ियों से गहरी लकीरें पड़ रही थीं। घोड़ों पर चमकते साज़ कसे थे। उनके गीले सिर एक लय में हिल रहे थे, गाड़ीवान कन्धों पर छाल की चटाइयाँ ओढ़े और बड़े-बड़े बूट चढ़ाये गाड़ियों के साथ-साथ कीचड़ में धीरे-धीरे चले जा रहे थे। मुझे हर चीज़ प्यारी और महत्त्वपूर्ण लग रही थी, यहाँ तक कि सड़क के दोनों तरफ़ खड़े घर भी, जो धुँध में बड़े ऊँचे नज़र आ रहे थे।

"मैं उस मैदान के पास जा पहुँचा, जहाँ उनका मकान था। मुझे वहाँ एक सिरे पर, जहाँ लोग टहलने जाया करते थे, कोई बड़ी और काली-सी चीज़ नज़र आयी। साथ ही ढोल और बाँसुरी की आवाज़ भी कानों में पड़ी। यों तो हर घड़ी मेरा मन ख़ुशी से नाचता रहा था और मज़ूर्का की धुन जब-तब मेरे कानों में गूँज रही थी, फिर भी यह संगीत कुछ अलग ही लगा - कर्कश और

भद्दा-सा।

"'यह क्या हो सकता है?' मैंने सोचा। फिसलनी सड़क पर मैं उसी आवाज़ की दिशा में बढ़ा। कोई सौ क़दम जाने पर मुझे धुँध में लोगों की भीड़ नज़र आयी। बात साफ़ हुई। वे फ़ौजी सिपाही थे। मैंने सोचा कि सुबह की क़वायद कर रहे होंगे। मेरे साथ-साथ सड़क पर एक लोहार चला जा रहा था। वह एप्रन और जाकेट पहने था। कपड़ों पर जगह-जगह तेल के धब्बे थे। उसके हाथ में बड़ी-सी गठरी थी। मैं उसके साथ हो लिया। पास जाकर मैंने देखा कि सैनिकों की दो क़तारें आमने-सामने खड़ी हैं। उन्होंने काले कोट पहन रखे हैं, उनके हाथों में बन्दूक़ें हैं और वे चुपचाप खड़े हैं। उनके पीछे एक बाँसुरी बजाने वाला और एक ढोल पीटने वाला है और वही कर्कश और भद्दी धुन बजा रहे हैं।

"हम रुक गये।

"'ये क्या कर रहे हैं?' मैंने लोहार से पूछा।

"'ऐ तातार को सज़ा दी जा रही है। उसने फ़ौज से भागने की कोशिश की थी,' लोहार ने ग़ुस्से से जवाब दिया और क़तारों के दूसरे सिरे की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

"मैं भी उसी ओर देखने लगा। दो क़तारों के बीच कोई भयानक चीज़ हमारी ओर बढ़ती आ रही थी। वह एक आदमी था, कमर तक नंगा और उसके हाथ उसे ले जाने वाले दो सैनिकों की बन्दूक़ों के साथ बँधे हुए थे। उनके साथ-साथ ऊँचे-लम्बे क़द का एक अफ़सर चला आ रहा था। वह ओवरकोट पहने था और सिर पर फ़ौजी टोपी थी। यह अफ़सर मुझे परिचित-सा लगा। अपराधी की पीठ पर दोनों तरफ़ से हण्टर पड़ रहे थे। उसका शरीर काँप-काँप जाता और उसके पाँव पिघलती बर्फ़ में बार-बार धँस जाते। इस तरह वह धीरे-धीरे आगे को सरकता रहा। बीच-बीच में वह पीछे की ओर दुबक-सा जाता, तो दोनों फ़ौजी, जो बन्दूक़ों के साथ बाँधे हुए उसे ले जा रहे थे, उसे आगे को धकेल देते और जब वह आगे की ओर भहराने लगाता, तो पीछे की ओर खींच लेते, ताकि वह गिरे नहीं। स्थिर क़दम रखता हुआ ऊँचे-लम्बे क़द का अफ़सर भी उनके साथ-साथ बढ़ता आ रहा था, ज़रा भी पीछे नहीं रहता था। मेरी नज़र उसके दमकते चेहरे, उजली मूँछों और क़लमों पर पड़ी। मैंने उसे फ़ौरन पहचान लिया - वह वारेन्का का बाप था।

"हण्टर के हर वार पर अपराधी का चेहरा दर्द से ऐंठ उठता, वह बेचैन होकर उस ओर देखता, जिधर से हण्टर पड़ा था और सफ़ेद दाँतों की झलक दिखाते हुए बार-बार कुछ शब्द दोहराता। मेरे नज़दीक आने पर ही ये शब्द मुझे ठीक तरह से सुनायी दिये। वह बोल नहीं, सिसक रहा था। जब वह मेरे नज़दीक पहुँचा, तो मैंने सुना, 'रहम करो, भाइयो।', 'भाइयो, कुछ रहम करो।'

पर भाइयों को कोई रहम नहीं आ रहा था। वह ऐन मेरे सामने आ पहुँचा। एक सैनिक ने बड़ी दृढ़ता से आगे बढ़कर तातार की पीठ पर इतने ज़ोर से हण्टर मारा कि उसकी आवाज़ हवा में गूँज गयी। तातार आगे को गिरने वाला था, पर फ़ौजियों ने झटके से उसे थाम लिया। फिर दूसरी तरफ़ से एक हण्टर और पड़ा, इसके बाद फिर इस तरफ़ से, और फिर उस तरफ़ से। कर्नल उसके साथ-साथ चलता रहा। कभी वह अपने पाँवों की ओर देखता और कभी अपराधी की ओर। हवा में गहरी साँस लेता, गाल फुलाता और फिर धीरे-धीरे होंठ फैलाकर मुँह से हवा निकालता। जब यह जुलूस मेरे पास से निकल गया, तो मुझे क्षण-भर के लिए सैनिकों की क़तार के बीच से अपराधी की पीठ की झलक मिली। वह रंग-बिरंगी, गीली, लाल और अस्वाभाविक थी। मुझे विश्वास न हुआ कि यह एक इन्सान का शरीर है।

"'हे भगवान!' मेरे पास खड़ा लोहार बुदबुदाया।

"जुलूस बढ़ता गया। उस गिरते-पड़ते, बार-बार दया की भीख माँगते इन्सान पर दोनों तरफ़ से कोड़े पड़ते गये। ढोल बजते गये, बाँसुरी में से वही तीखी धुन निकलती रही और रोबीला कर्नल उसी तरह रोब-दाब से अपराधी के साथ चलता गया। सहसा कर्नल रुक गया और तेज़ी से एक सैनिक की ओर बढ़ा।

"'मैं तुम्हें चखाऊँगा ढील दिखाने का मज़ा!' उसकी क्रोध-भरी आवाज़ मेरे कानों में पड़ी।

"उसने अपने मज़बूत, चमड़े के दस्ताने से लैस हाथ से नाटे-छोटे, दुबले-पतले सैनिक के मुँह पर तमाचे पर तमाचे जड़ने शुरू कर दिये, क्योंकि सैनिक का हण्टर तातार की लहूलुहान पीठ पर पूरे ज़ोर से नहीं पड़ा था।

"'नये हण्टर लाओ!' कर्नल ने चिल्लाकर कहा, मुड़ा और उसकी नज़र मुझ पर पड़ी। मुझे अनदेखा करते हुए उसने बड़े ग़ुस्से से त्योरी चढ़ाकर झट-से मेरी ओर पीठ कर ली। मुझे बड़ी शर्म महसूस हुई। मेरी समझ में न आया कि मुड़ूँ तो किस ओर को? मुझे लगा कि जैसे मैं कोई घिनौना काम करते पकड़ा गया हूँ। मैं सिर झुकाये तेज़ चाल से घर लौट चला। रास्ते-भर मेरे कानों में ढोल और बाँसुरी की कर्कश आवाज़ गूँजती रही। 'रहम करो, भाइयो!' की दर्द-भरी कराहट और 'मैं तुम्हें चखाऊँगा ढील दिखाने का मज़ा!' - कर्नल की ग़ुस्से और दम्भ से भरी चिल्लाहट कानों के पर्दे फाड़ती रही। मेरा दिल इस तरह दर्द से भर उठा कि मुझे मतली होने लगी, यहाँ तक कि मुझे बार-बार राह में ठिठकना पड़ा। रह-रहकर जी चाहता कि मैं क़ै कर किसी तरह इस दृश्य से उपजी घृणा को अपने अन्दर से बाहर निकाल दूँ। मुझे याद नहीं कि मैं कैसे घर पहुँचा और कैसे जाकर बिस्तर पर पड़ गया। पर ज्यों ही आँख लगने को हुई,

वह दृश्य फिर मेरी आँखों के सामने घूमने लगा, सारी आवाज़ें फिर मुझे सुनायी देने लगीं और मैं उठकर पलंग पर बैठ गया।

"'हो न हो, ज़रूर कोई ऐसी बात है, जिसे वह आदमी जानता है, पर मैं नहीं जानता,' कर्नल के बारे में सोचते हुए मैंने मन ही मन कहा। 'अगर मैं भी वह जान जाता, जो वह जानता है, तो मैं भी वह समझ जाता, जो मैंने देखा है और शायद तब इस तरह मेरा दिल न दुखता। पर हज़ार चेष्टा करने पर भी वह बात मेरी समझ में नहीं आयी, जो वह कर्नल समझता था। नतीजा यह कि कहीं शाम को जाकर मेरी आँख लगी और सो भी तब, जब मैं एक मित्र के घर गया और मैंने अन्धाधुँध शराब पी ली।

"आप क्या समझते हैं कि मैंने इस दृश्य से कोई बुरा नतीजा निकाला? हरगिज़ नहीं। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यदि वह सारा कृत्य ऐसे विश्वास के साथ और हर आदमी द्वारा आवश्यक मानकर किया गया है, तो कोई न कोई बात ऐसी ज़रूर है, जिसका पता बाक़ी सबको तो है, पर केवल मुझे नहीं। मैं भी इस रहस्य का भेद पाने की कोशिश करने लगा। पर वह रहस्य मेरे लिए सदा रहस्य ही बना रहा। और चूँकि मैं उसे समझ नहीं पाया, इसलिए मैं फ़ौज में भर्ती भी नहीं हुआ, हालाँकि मैं फ़ौज की नौकरी करना चाहता था। वैसे फ़ौज की नौकरी ही क्या, मैं तो कोई और नौकरी भी नहीं कर पाया। बस, मैं कुछ भी नहीं बन पाया।"

"हम ख़ूब जानते हैं कि आप क्या कुछ बन पाये हैं," एक मेहमान बोला, "यह कहना ज़्यादा मुनासिब होगा कि अगर आप न होते, तो जाने कितने ही लोग कुछ न बन पाते।"

"यह तो बिल्कुल फ़िज़ूल-सी बात कही है आपने," इवान वसील्येविच ने सचमुच चिढ़कर कहा।

"ख़ैर, तो आपके प्रेम का क्या हुआ?" हमने पूछा।

"मेरा प्रेम? मेरे प्रेम को तो उसी दिन पाला मार गया। जब वह लड़की मुस्कुराती हुई सोच में डूब जाती, जैसा कि अक्सर उसके साथ होता था, तो मैदान में खड़ा कर्नल मेरी आँखों के सामने आ जाता। मैं सकपका उठता और मेरा दिल बेचैन होने लगता। होते-होते मैंने उससे मिलना छोड़ दिया और धीरे-धीरे मेरा प्रेम मर गया। ऐसी ही बातें कभी-कभी समूचे जीवन का रुख़ बदल देती हैं, और आप कहे जा रहे हैं कि परिस्थितियाँ ही सब कुछ करती हैं," उसने अन्त में कहा।

1903

अनु. – भीष्म साहनी

सिवस्तॅपोल का मोर्चा

सुबह की आभा ने सापून पहाड़ी के ऊपर क्षितिज में अभी–अभी अपना रंग भरना शुरू किया है। समुद्र की काली–नीली सतह ने रात की उदासी को उतार फेंका है और अब केवल सूरज की पहली किरणों में उसके ख़ुशी से चमचमा उठने की क़सर है। कच्ची ठण्डी धुँध खाड़ी से रेंगती हुई आ रही है। बर्फ़ अब कहीं नहीं है – चारों ओर काली धरती दिखायी देती है, लेकिन सुबह का कुरकुरा पाला गालों में चिकोटी–सी काटता और पाँव पड़ने पर कचरने की आवाज़ करता है। केवल दूर से आती समुद्र की अनवरत मर्मर ध्वनि, जो सिवस्तॅपोल की तोपों की काँपती हुई इक्की–दुक्की विरल गूँज में डूब जाती है, सुबह की निस्तब्धता को भंग करती है। जहाज़ों से आठ बजने के गजर की दूरागत ध्वनि सुनायी देती है।

उत्तर की ओर दिन की चहल–पहल धीरे–धीरे रात के सन्नाटे का स्थान ले रही है। इधर देखिये, सैनिकों की एक टुकड़ी अपनी बन्दूक़ें खड़खड़ाती रात की गारद को मुक्त करने जा रही है, और उधर एक डॉक्टर तुर्त–फ़ुर्ती अस्पताल की ओर लपका जा रहा है, एक सैनिक अपनी खोह से बाहर रेंगकर बर्फ़ीले पानी में ताँबे–सा तपा अपना मुँह धोता है, और सुबह की लाली से लाल पूर्व की ओर मुँह करके ईश–प्रार्थना करता और जल्द–जल्द सलीब के चिह्न बनाता है। चरमर करती एक ऊँची मज़ारा गाड़ी पास से गुज़रती है जिसमें ऊँट जुते हैं और जो क़रीब–क़रीब ऊपर तक ख़ून से लथपथ लाशों से अटी है। इन्हें क़ब्रिस्तान में दफ़नाने के लिए ले जाया जा रहा है। घाट के निकट पहुँचने पर कोयले, खाद, सीजन और मांस की एक विचित्र गन्ध थपेड़े मारती है। विभिन्न प्रकार की हज़ारों चीज़ें – जलाने की लकड़ी, मांस, मोर्चेबन्दी के लिए मिट्टी–भरे बेपेंदी पीपे, आटे की बोरियाँ, लोहा–लक्कड़ आदि – घाट पर ढेरों पड़ी हैं। विभिन्न रेजीमेण्टों के सैनिक, कुछ थैले और बन्दूक़ लिये और कुछ बिना थैलों और बन्दूक़ों के, रेल–पेल मचाये हैं। वे सिगरेट का धुआँ उड़ाते, कोसते और झल्लाते, घाट के पास खड़े एक स्टीमर पर भारी सामान लाद रहे

हैं। स्टीमर के तूतू से धुआँ निकल रहा है। भाँति-भाँति के लोगों - सैनिकों, नाविकों, सौदागरों, स्त्रियों - से लदी नौकाओं का लंगर डालने अथवा विदा होने के लिए ताँता लगा है।

"ग्राफ़्सकाया तो नहीं जा रहे हैं, श्रीमान? आइये, भीतर आ जाइये, उस पार पहुँचा दूँगा।" दो या तीन पुराने नाविक, जो नौसेना से छुट्टी मिलने पर अब यही धन्धा करते हैं, आवाज़ लगाते और आपकी सेवा करने के लिए अपनी नौकाओं पर खड़े हो जाते हैं।

निकटतम नाव पर आपकी नज़र टिकती है। नाव के पास ही कीचड़ में किसी घोड़े की एक अधसड़ी ठठरी पड़ी है। उसे लाँघकर आप नाव पर चढ़ जाते हैं और पतवार की घिरनी के पास बैठ जाते हैं। नाव घाट छोड़ देती है और चारों ओर समुद्र ही समुद्र दिखायी देता है, जो अब सूरज की धूप में चमचमा रहा है। आपकी ओर मुँह किये ऊँट के बालों का कोट पहने एक बूढ़ा नाविक और सन जैसे बालों वाला एक युवक चुपचाप पूरी लगन से डाँड़ चला रहे हैं। खाड़ी के ओर-छोर में, दूर-दूर तक, भीमाकार धारीदार जहाज़ और चमचमाती नील सतह पर काले धब्बों की भाँति तैरती छोटी नावें नज़र आती हैं। सामने तट पर नगर की हल्के रंग की सुन्दर इमारतें दिखायी देती हैं जिन्हें सुबह के सूरज ने गुलाबी रंग से रँग दिया है। तैरते हुए लट्ठों-बाड़ों और जल-मग्न जहाज़ों के इर्द-गिर्द झागों की सफ़ेद रेखाएँ बन गयी हैं। उन जहाज़ों के मस्तूलों की चोटियाँ, उदास और उपेक्षित, पानी से बाहर निकली हैं। दूर, बिल्लौरी क्षितिज के पास, दुश्मन के बेड़े की छायाएँ अधर में लटकी-सी दिखायी देती हैं। झागदार लहरियाँ और चप्पुओं के पानी में गिरने से बने खारे बुलबुलों के नाचते भँवर नज़र आ रहे हैं। चप्पुओं की तालयुक्त छपाछप, लोगों की पानी पर तिरती आती आवाज़ें और सिवस्तॅपोल में तोपों के दगने की गर्वीली गूँजें, जो बराबर गहरी होती जान पड़ती हैं, सुनायी दे रही हैं।

यह भावना-मात्र कि हम सिवस्तॅपोल में हैं, बरबस हृदय में साहस और गर्व का संचार कर देती है। तथा रगों में ख़ून की रवानी अनायास ही तेज़ हो जाती है।

"अब आप किस्त्येन्तिन जहाज़ के पास से गुज़र रहे हैं, मालिक!" बूढ़ा नाविक आपको बताता है और दाहिनी ओर मुड़कर देखता है कि नौका ठीक दिशा में जा रही है या नहीं।

"अभी भी यह अपनी सब तोपों से लैस है!" जहाज़ के पास से गुज़रते समय उसकी ओर देखते हुए सन जैसे बालों वाला युवक कह उठता है।

"बेशक, बेशक!" जहाज़ के ओर देखते हुए बूढ़ा नाविक भी कहता है। "नया जहाज़ है। कोर्नीलोव इसी पर रहा है।"

"वह देखो, उधर! कहाँ जाकर फटा है!" लम्बी चुप्पी के बाद लड़का चिल्लाकर कहता है। उसकी आँखें धुएँ के एक छोटे, सफ़ेद और विलीन होते हुए बादल पर टिकी हैं जो कि यकायक एक गोले के फटने की तेज़ आवाज़ के बाद दक्खिन खाड़ी पर मँडराने लगा था।

"आज वह नयी बैटरी से गोलाबारी कर रहा है," बूढ़ा नाविक कहता और उपेक्षा के भाव से अपने हाथों पर थूककर उन्हें मलता है। "देखो मिश्का, अब ज़रा ज़ोर लगाओ। हमें उस बजरे से आगे निकलना है।"

और आपकी नौका खाड़ी के चौड़े विस्तार पर अब और भी ज़्यादा तेज़ी से बढ़ चलती है, और गाँठों से लदे भारी बजरे को सचमुच पीछे छोड़ देती है, जिसे कुछ अनगढ़-से सैनिक ऐण्डे-बैण्डे ढंग से खे रहे हैं। हर काट और छाँट की नौकाओं के टिड्डी दल के बीच से रास्ता बनाती आपकी नाव ग्राफ़्सकाया घाट से जा लगती है।

घाट ख़ाकी वर्दी पहने सैनिकों, काली वर्दी पहने नाविकों तथा रंग-बिरंगे कपड़े पहने स्त्रियों से अटा है। ख़ूब शोर मच रहा है। स्त्रियाँ मैदा के पूए बेच रही हैं और रूसी दहकान भाप छोड़ते समोवार लगाये चिल्ला रहे हैं – "गरमागरम स्बीतेन!"* और ठीक यहीं, घाट पर लोहे की तोपें, ज़ंग लगे गोले, तोपगोले और छर्रे चारों ओर बिखरे हैं। कुछ और आगे चलकर एक खुला हुआ बड़ा मैदान है जिसमें भारी-भरकम लट्ठे, तोपगाड़ियाँ और नींद में डूबे सैनिक पड़े हैं। घोड़े, गाड़ियाँ, तोपें, हरे रंग की बारूद-गाड़ियाँ और एक-दूसरे के सहारे टिकी बन्दूक़ों के पुंज खड़े हैं। सैनिकों, नाविकों, अफ़सरों, औरतों, बच्चों और कारबारी लोगों का ताँता बँधा है। घास, बोरों या पीपों से लदी गाड़ियाँ खड़खड़ करती गुज़र रही हैं। जब-तब घोड़े पर सवार कोई कस्साक अथवा अफ़सर या द्राश्की में बैठा कोई जनरल निकल जाता है। दाहिनी ओर की सड़क बैरीकेड से रुकी है जिसकी दरारों से छोटी तोपों के मुँह झाँक रहे हैं। एक नाविक जो पाइप पी रहा है, उनके पास बैठा है। बायीं ओर एक ख़ूबसूरत-सी इमारत है जिसकी ड्योढ़ी पर रोमन अंक बने हैं; उसके बाहर ख़ून से सने स्ट्रेचर लिये सैनिक प्रतीक्षा कर रहे हैं। चारों ओर जिधर भी नज़र डालो, फ़ौजी पड़ाव के अप्रिय चिह्न दिखायी देते हैं। आपके हृदय पर जो पहली छाप यहाँ पड़ेगी, वह निश्चय ही अप्रिय होगी : फ़ौजी छावनी और नागरिक जीवन का तथा एक सुन्दर नगर और खुले आकाश के नीचे वीभत्स पड़ाव का एक अजीब मिश्रण आपको नज़र आयेगा जो सौन्दर्य की भावना का संचार करना तो दूर, बल्कि अपनी भयानक अव्यवस्था से आपको स्तब्ध कर देगा। यहाँ तक कि ऐसा

* एक प्रकार की मीठी मसालेदार पेय वस्तु

मालूम होगा मानो भय ने सभी को जकड़ लिया है और सभी बिना किसी लक्ष्य के इधर-उधर भटक रहे हैं, करने-धरने के लिए उनके पास कुछ नहीं है। लेकिन अपने चारों ओर हरकत करते इन लोगों के चेहरों की ओर अगर आप ज़रा और ध्यान से देखें तो एकदम कुछ और ही नज़र आयेगा। मिसाल के लिए माल ढोने की एक छोटी गाड़ी के इस सैनिक को देखिये जो तीन घोड़ों को थामे उन्हें पानी पिलाने ले जा रहा है और बड़ी निश्चिन्तता से किसी गीत की धुन गुनगुना रहा है। साफ़ मालूम होता है कि वह इस बेढब भीड़ में, जिसके अस्तित्व तक से वह बेख़बर है, न केवल यह कि खो नहीं जायेगा, बल्कि अपने कर्तव्य को भी – अब यह कर्तव्य चाहे घोड़ों को पानी पिलाना हो अथवा तोपों को खींचना – उतने ही शान्त भाव और विश्वास के साथ अबाध गति से पूरा करेगा, कुछ इस तरह मानो यह सब तुला में, या सारांस्क में, हो रहा हो। ऐसा ही भाव उस अफ़सर के चेहरे पर दिखायी देता है जो निरे बुर्राक दस्ताने पहने टहलता हुआ जा रहा है। वह नाविक जो बैरीकेड के पास बैठा पाइप पी रहा है, और वे सैनिक जो भूतपूर्व असेम्बली-भवन की ड्योढ़ी में स्ट्रेचरों के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं, इन सभी के चेहरों पर वही भाव दिखायी देता है। और उस युवती को देखिये जो सड़क को पार कर रही है और धूल-मिट्टी से बचाने के लिए अपनी गुलाबी घाघरे की फुफँदी को ऊपर उठाये बड़ी नफ़ासत से एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर पाँव रख रही है – उसके चेहरे पर भी वही भाव नज़र आता है।

फिर भी यह बात पक्की है कि सिवस्तॅपोल की पहली यात्रा से आपको निराशा होगी। लोगों के चेहरों पर आपको चिन्ता के, तनाव के, अथवा यहाँ तक कि उत्साह और मौत को गले लगाने की तत्परता या भयानक दृढता के, कोई चिह्न नज़र नहीं आयेंगे, इस तरह की कोई चीज़ आपको दिखायी नहीं देगी। अपने चारों ओर केवल साधारण लोग आपको दिखायी देंगे, अपने रोज़ के काम-धन्धे से आते-जाते हुए, और शायद आप अपने आपको लताड़ना भी चाहें कि व्यर्थ ही आपने इतने अधिक उत्साह का परिचय दिया। हो सकता है कि आप सिवस्तॅपोल के रक्षकों की वीरता के उस चित्र के सही होने में भी सन्देह करने लगें जिसे कि आपने "उत्तरी पक्ष" की आवाज़ों, कहानियों और वर्णनों को सुनकर तथा दृश्यों को देखकर अपने दिमाग़ में खड़ा कर लिया था। लेकिन इस तरह के सन्देहों से विचलित होने से पहले क़िलेबन्दियों में पहुँचना और सिवस्तॅपोल के रक्षकों को उन जगहों में जाकर देखना चाहिए जिनकी रक्षा करने के लिए वे लड़ रहे हैं। या फिर सड़क के ठीक उस पार उस इमारत में जाकर देखिये जो कभी असेम्बली-भवन थी और जहाँ अब सिपाही अपने स्ट्रेचर लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह और भी अच्छा होगा। वहाँ आपको सिवस्तॅपोल के रक्षक

तथा भयानक और उदास, गौरवमय और दिलचस्प, लेकिन साथ ही अद्‌भुत और प्रेरणादायक दृश्य देखने को मिलेंगे।

असेम्बली भवन के बड़े हॉल में आप प्रवेश करते हैं। दरवाज़ा खोलते न खोलते चालीस या पचास मरीज़ों पर आँखें जमती हैं और उनकी गन्ध आकर आप से टकराती है। ये मरीज़ वे हैं जिनके अंग काट डाले गये हैं और जो बुरी तरह से घायल हुए हैं। उनमें से कुछ बिस्तरों पर और ज़्यादातर फ़र्श पर पड़े हैं। डरिये नहीं, उस भावना पर ध्यान न दीजिये जिसने आपके पाँव चौखट से बाँध रखे हैं – वह एक बुरी और कुत्सित भावना है। उसकी परवाह न कर सीधे आगे बढ़ चलिये, और इस बात को लेकर ज़रा भी शर्म महसूस मत कीजिये कि आप घायलों का तमाशा देखने आये हैं, शर्म को छोड़ आप सीधे उनके पास पहुँच जाइये और उनसे बातें कीजिये। दुख के मारे वे इस बात के भूखे हैं कि उन्हें सहृदय मानव का चेहरा दिखायी दे। अपने कष्ट के बारे में बातें करना और संवेदना तथा सहानुभूति के शब्द सुनना उन्हें अच्छा लगता है। बिस्तरों के बीच से आप जाइये और किसी ऐसे चेहरे की टोह कीजिये जो कम कठोर और पीड़ा की मार से कम त्रस्त हो, ताकि आप उसके पास जाने और उससे बातें करने का साहस कर सकें।

"घाव कहाँ लगा है आपके?"

एक क्षीणकाय बूढ़े सैनिक से, जिसकी सहृदयतापूर्ण आँखें अपने बिस्तरे से इस तरह आपकी ओर देख रही थीं, मानो आपको अपने पास आने का बुलावा दे रही हों, हिचकिचाते हुए और डरे हुए-से स्वर में आप पूछते हैं। "डरे हुए स्वर में" इसलिए कि दुखपूर्ण दृश्य, न जाने क्यों, हृदय में गहरी सहानुभूति का ही नहीं बल्कि भय का संचार करता है, यह भय कि जो दुखी है, उसे कोई चोट न लगने पाये। उसके प्रति एक गहरी श्रद्धा हृदय में जन्म लेती है।

"टाँग में," वह जवाब देता है, लेकिन जिस कम्बल से वह ढँका है, उसकी सलवटें बताती हैं कि वह टाँग जँघा तक काट डाली गयी है।

"अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ," वह कहता है। "बस, अस्पताल से छुट्टी मिलने का इन्तज़ार कर रहा हूँ।"

"आपको घायल हुए काफ़ी दिन हो गये?"

"क़रीब छह सप्ताह, श्रीमान।"

"अब भी दर्द मालूम होता है?"

"नहीं, अब दर्द नहीं मालूम होता। अब सब ठीक है। केवल कभी-कभी जब मौसम ख़राब होता है, मेरी पिण्डली में कुछ पीड़ा-सी मालूम होती है। अन्यथा सब ठीक है।"

"आप कैसे घायल हुए?"

"यह पाँचवीं **बासचोन*** की घटना है, श्रीमान, उस समय की जब कि पहली बमबारी हुई थी। अपनी बन्दूक़ को साधे मैं अगले ढूह की ओर बढ़ ही रहा था कि मेरी टाँग में गोली आ लगी। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो मैं किसी गड्ढे में गिर गया हूँ। देखने पर पता चला कि मेरी टाँग ग़ायब है।"

"शुरू के क्षणों में दर्द नहीं मालूम हुआ?"

"नहीं, बस ऐसा लगा मानो किसी गरम चीज़ ने टाँग को सूँत दिया हो।"

"और इसके बाद?"

"इसके बाद भी कोई ख़ास बुरा नहीं मालूम हुआ, केवल उस समय को छोड़कर जब खाल को ताना जाने लगा। तब काफ़ी तकलीफ़ हुई। लेकिन मुख्य चीज़ तो यह है श्रीमान कि दुख के बारे में *ज़्यादा न सोचो*। सोचना ही मुसीबत है। न सोचो तो कुछ नहीं होता। आदमी *सोचता* है, इसीलिए उसे दुख इतना अधिक सताता है।"

इसी समय धारीदार भूरे कपड़े पहने और काला रूमाल बाँधे एक स्त्री आपके निकट आती है और बातों में शामिल हो जाती है। वह आपको सैनिक के बारे में, उसके दुख के बारे में और उस विकट स्थिति के बारे में बताती है जिसमें कि वह चार सप्ताह से पड़ा हुआ है। वह बताती है कि सैनिक कब और कैसे घायल हुआ, किस प्रकार उसने स्ट्रेचर-वाहकों से रुकने के लिए कहा जिससे कि वह हमारी बैटरी को गोला दाग़ते देख सके, किस प्रकार "बड़े नवाब" ने उससे बातें कीं और उसे पच्चीस रूबल भेंट किये, और यह कि किस प्रकार वह ज़िद्द करता है कि उसे फिर क़िलेबन्दी के मोर्चे पर भेज दिया जाये, कहता है कि वह ख़ुद लड़ने के योग्य नहीं रहा तो क्या, अन्य युवकों को सिखा तो सकता है। एक ही साँस में वह यह सब बता जाती है। बोलते समय कभी वह आपकी तरफ़ देखती है और कभी सैनिक की ओर, जो इस तरह मुँह फेर लेता है मानो कुछ सुन ही नहीं रहा है, और अपने तकिये पर से पट्टी के कपड़े का टुकड़ा उठाकर अपने-आपको उसी में उलझा लेता है। स्त्री की मुग्ध आँखें एक अद्भुत आवेश की चमक से थिरकने लगती हैं।

"यह मेरी पत्नी है, श्रीमान!" सैनिक क्षमा-याचना करता हुआ-सा कहता है, कुछ ऐसे स्वर में जो यह कहता प्रतीत होता है : "इसका बुरा न मानना। आप तो जानते ही हैं कि ऊल-जलूल बातों से स्त्रियों को दूर रखना विधाता के भी बस की बात नहीं है।"

सिवस्तॅपोल के रक्षकों को अब आप कुछ समझना शुरू करते हैं और जाने क्यों इस आदमी की उपस्थिति में एक अजीब दुविधा और संकोच का अनुभव

---

* फ़्रांसीसी "बास्त्यों" (क़िलेबन्दी के आगे निकले नुकीले भाग या व्यूहाग्र कोण) का रूसी सिपाहियों द्वारा विकृत उच्चारण।

होता है। अपनी संवेदना और सराहना को व्यक्त करने के लिए आप बहुत कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन शब्द पकड़ में नहीं आते। अथवा यह कहिये कि जो शब्द दिमाग़ में आते हैं वे ओछे मालूम होते हैं और आप इस आदमी की मूक, अपने-आपसे बेख़बर महानता, दृढता, अपने गुणों के बारे में उसकी झिझक के सामने चुपचाप अपना माथा झुका लेते हैं।

"ख़ुदा आपको जल्द अच्छा करे," अन्त में इतना ही आप उससे कह पाते हैं और दूसरे मरीज़ की ओर बढ़ जाते हैं जो फ़र्श पर पड़ा है और बेहद पीड़ा से त्रस्त है, मानो मौत की प्रतीक्षा कर रहा है।

उसके बाल सुनहरे, चेहरा सूजा हुआ और पीला है। वह कमर के बल लेटा है, और उसकी बायीं बाँह पीछे की ओर इस तरह फेंकी हुई है जिससे उसके दारुण कष्ट का पता चलता है। उसका पपड़ी जमा हुआ मुँह खुला है जिसके रास्ते घरघराहट की आवाज़ करता हुआ वह कष्ट से साँस ले रहा है। उसकी जस्ती नीली आँखें ऊपर को उलट गयी हैं और उसकी दाहिनी बाँह का पट्टी बँधा ठूँठ चुरेमुरे कम्बल के नीचे से दिखायी पड़ रहा है। सड़ते हुए मांस की गन्ध दिमाग़ को और भी ज़्यादा भन्ना देती है और ऐसा मालूम होता है मानो रोगी के अंगों में व्याप्त जानलेवा हरारत ख़ुद आपके शरीर में भी प्रवेश कर गयी हो।

"यह बेहोश है?" आप उसी स्त्री से पूछते हैं जो आपके साथ-साथ चली आयी है और कुछ ऐसी कोमल दृष्टि से आपकी ओर देख रही है मानो आप उसके प्रियजनों में से हों।

"नहीं, उसकी सुनने की शक्ति अभी भी मौजूद है," वह जवाब देती है, और इसके बाद फुसफुसाकर कहती है : "लेकिन इसकी हालत बेहद ख़राब है। मैंने इसे आज चाय दी थी – अजनबी होने से ही कोई तरस खाना छोड़ नहीं देता – लेकिन इसने शायद ही मुँह से लगायी हो।"

"क्यों, जी कैसा है?" आप उससे पूछते हैं।

आपकी आवाज़ सुनकर घायल व्यक्ति की आँखें टेरने लगती हैं, लेकिन वह आपको देख या समझ नहीं पाता।

"मेरे हृदय में जैसे लपटें उठ रही हैं।"

कुछ ही और आगे एक बूढ़े सैनिक पर आपकी नज़र पड़ती है जो अपनी क़मीज़ बदल रहा है। उसका चेहरा और बदन कत्थई रंग का है। वह केवल हड्डियों का ढाँचा-भर दिखायी देता है। उसकी एक बाँह ग़ायब है। उसे कन्धे से काट डाला गया है। वह अच्छी तरह बैठ सकता है, अच्छा भी हो गया है, लेकिन उसकी जीवनहीन पथराई-सी आँखें, बुरी तरह क्षीण उसका शरीर, और उसके चेहरे पर पड़ी गहरी झुर्रियाँ साफ़ बताती हैं कि इस दयनीय जीव के जीवन का श्रेष्ठम भाग मुसीबतों की भेंट चढ़ चुका है।

दूसरी ओर, एक बिस्तरे पर, एक स्त्री का पीड़ा से त्रस्त कोमल चेहरा दिखायी देता है – जिस पर मौत का पीलापन छाया है और गाल बुख़ार से धधक रहे हैं।

"यह हमारे नाविकों में से एक की पत्नी है," आपकी पथ-प्रदर्शिका बताती है। "अपने पति के लिए क़िले पर खाना ले जा रही थी। तभी, पाँच तारीख़ को, टाँग में एक गोला आ लगा।"

"इसकी भी टाँग काट डाली गयी?"

"हाँ, ठीक घुटने के ऊपर से काटी गयी है।"

और अब, अगर आपके हृदय के स्नायु कमज़ोर नहीं हैं तो, बायीं ओर के दरवाज़े को पार कर उस कमरे में चलिये जहाँ घावों की मरहम-पट्टी और चीर-फाड़ की जाती है। वहाँ आपको सर्जन दिखायी देंगे जिनकी बाँहें कोहिनी तक ख़ून से लथपथ हैं, जिनके चेहरे पीले और कठोर हैं। वे एक बिस्तरे के पास खड़े कुछ कर रहे हैं जिस पर क्लोरोफ़ार्म से बेहोश किया हुआ एक घायल पड़ा है। उसकी आँखें एकदम खुली हैं और अटपटे शब्द उसके मुँह से निकल रहे हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि सरसाम में होता है। कभी-कभी उसके मुँह से सीधे-सादे प्यार भरे सम्बोधन भी प्रकट हो जाते हैं। सर्जन अंग काटने के घिनौने पर हितकर काम में जुटे हैं। एक तेज़ हँसिये जैसा चाकू सफ़ेद, स्वस्थ मांस में प्रवेश करता है, घायल के मुँह से यकायक निकली भयानक, ख़ून जमा देने वाली चीख़ सुनायी देती है और वह ज़ोरों से गालियाँ बकता हुआ होश में आ जाता है। सर्जन का सहायक कटी बाँह को एक कोने में फेंक देता है। कमरे के दूसरे हिस्से में एक अन्य अभागा स्ट्रेचर पर लेटा हुआ अपने साथी की बाँह को कटते हुए देखकर तड़पता-कराहता है – काया कष्ट से इतना नहीं जितना कि उस यातना की कल्पना से जो कि चीर-फाड़ के समय होगी।

इस कमरे में भयानक और हृदय को चीर देने वाले दृश्य आपको दिखायी देंगे। युद्ध को आप ऐसे रूप में नहीं देखेंगे जो सैनिक प्रदर्शनों के समय दिखायी देता है – जब सैनिक बहुत ही बढ़िया पाँतों में, क़दम से क़दम मिलाये, संगीत और नगाड़े की आवाज़ के साथ मार्च करते हैं, झण्डे हवा में लहराते हैं और जनरल घोड़ों पर थिरकते हैं। नहीं, युद्ध को यहाँ आप उसके असली रूप में देखेंगे – एक ऐसे रूप में जिसमें ख़ून है, हाहाकार है, मौत है...

वेदना के इस घर से बाहर निकलने पर आप निश्चय ही राहत की एक भावना का अनुभव करेंगे, गहरी साँस लेकर ताज़ी हवा अपने फेफड़ों में भरना चाहेंगे और अपने को स्वस्थ तथा भला-चंगा देखकर ख़ुश होंगे; लेकिन उन दुखों का ख़याल आपको अपनी नगण्यता का भान करा देगा और आप अब शान्त तथा स्थिर होकर, बिना किसी हिचक के, क़िले की ओर बढ़ चलेंगे।

"इतने अधिक दुख और इतनी अधिक मौतों की तुलना में मेरे जैसे तुच्छ कीड़े के दुखों और मौत की क्या गिनती है?"

लेकिन स्वच्छ आकाश, चमचमाते हुए सूरज, सुन्दर नगर, खुले हुए गिरजे और हर ओर सैनिक लोगों की चहल-पहल तथा भीड़भाड़ देखकर शीघ्र ही आपके हृदय का प्रकृत हलकापन लौट आयेगा, छोटी-मोटी चिन्ताएँ फिर आपको घेर लेंगी और वर्तमान के सिवा अन्य बातों का आपको ध्यान ही नहीं रहेगा।

रास्ते में गिरजे से विदा होता एक मातमी जुलूस दिखायी देता है। गुलाबी रंग के ताबूत में किसी अफ़सर के शव को दफ़नाने के लिए ले जाया जा रहा है। झण्डे और पताकाएँ हवा में लहरा रही हैं, बैण्ड बज रहा है। या फिर क़िले से गोलाबारी की आवाज़ सुनायी देती है। इन सबका पहले वाले विचारों से कोई तालमेल नहीं मिलता। मातमी जुलूस एक बहुत ही सुन्दर सैनिक समारोह की भाँति मालूम होता है, ध्वनियाँ सैन्य संगीत की भाँति सुन्दर हैं; और आप इस जुलूस और इन ध्वनियों को मृत्यु और हाहाकार के उन सुस्पष्ट विचारों से सम्बद्ध नहीं कर सकते जो कि मरहम-पट्टी केन्द्र में आपके रोम-रोम में समा गये थे।

गिरजे और बैरीकेड को पार करने के बाद आप नगर के सबसे ज़्यादा चहल-पहल वाले भाग में प्रवेश करते हैं। सड़क के दोनों ओर दुकानों की सजधज, कहवाख़ाने, व्यापारी, फ़ीतों से कढ़ी मख़मली टोपियाँ या रूमाल बाँधे स्त्रियाँ, और चुस्त-दुरुस्त अफ़सर – सभी से नागरिकों की दृढ़ता, आत्मविश्वास और निश्चिन्तता की भावना का परिचय मिलता है।

अगर आप यह सुनना चाहते हैं कि नाविक और अफ़सर क्या बातें करते हैं, तो दाहिनी ओर के कहवाख़ाने में चलिये। निश्चय ही पिछली रात की घटनाएँ, छोकरी फेनिया की करतूतें, चौबीस तारीख़ की लड़ाई, आदि उनकी बातों का विषय बन चुकी हैं। उनकी बातों से आपको मालूम होगा कि मांस के कबाब कितने महँगे और ख़राब मिलते हैं और किस प्रकार यह या वह साथी मारा गया।

"शैतान की मार, हमारी जगह तो आज अच्छा-ख़ासा नरक बन गयी है!" सुनहरी बालों वाला, दाढ़ी घुटा और बुना हुआ रूमाल बाँधे एक नाटा समुद्री अफ़सर मोर के जैसे षड्ज सप्तक से निकली गहरी आवाज़ में कहता है।

"आपकी जगह कौन-सी है?" दूसरा पूछता है।

"चौथा व्यूहमुख," युवक अफ़सर जवाब देता है।

"चौथा व्यूहमुख!" – यह सुनते ही सुनहरी बालोंवाले इस अफ़सर को आप और भी ज़्यादा दिलचस्पी और यहाँ तक कि कुछ हद तक भय के साथ देखने लगते हैं। लापरवाही की उसकी अतिरंजित भावना, उसका अंग-संचालन,

उसकी ज़ोरदार आवाज़ और ठहाका मारकर हँसना, जिसे आप एक अटपटा दिखावा–मात्र समझ बैठे थे, अब आपको "अहसान नाखुदा का उठाये मेरी बला" वाली वह भावना मालूम होती है जो कि, ख़तरे को गले से लगाने के बाद, एकदम नवयुवक लोगों में आजकल सिर उभारती है। आप शायद आशा करेंगे कि अब वह बमबारी तथा गोलियों की बौछार का ज़िक्र करेगा जिनकी वजह से चौथा व्यूहमुख नरक मालूम होता है। लेकिन नहीं, वह ऐसा नहीं करता। चौथे व्यूहमुख को नरक बनाने वाली जिस चीज़ का नाम सामने आता है, वह है कीचड़।

"आप बैटरी के पास तक नहीं पहुँच सकते," घुटनों तक कीचड़ से सने अपने जूतों की ओर संकेत करके वह बताता है।

"मेरा सबसे बढ़िया गोलन्दाज़ आज मारा गया – गोली एकदम माथे के आर–पार हो गयी!" दूसरा कहता है।

"कौन था वह – मित्यूख़िन तो नहीं?"

"नहीं... ऐ बैरा, क्या वह कबाब आज ले आओगे या बैठे रहें कल तक? कमीना!" – यह बैरे को सम्बोधित कर... "नहीं, मित्यूख़िन नहीं, अब्रोसिमोव। बहुत ही बढ़िया आदमी था वह। छह घावों का सेहरा उसके सिर बँधा था।"

एक अन्य मेज़ के कोने पर पैदल सेना के दो अफ़सर बैठे हैं। जिनके सामने कबाब और मटर की तश्तरियाँ तथा खट्टी क्रीमियाई मदिरा की एक बोतल रखी है जिस पर "बोर्घो" का झूठा लेबल लगा है। इनमें से एक युवक है जिसके ख़ाकी कोट पर लाल कॉलर लगा है और कन्धों के फ़ीतों पर दो–दो सितारे। वह दूसरे को, जो कि बड़ी उम्र का है और जिसके कोट का कॉलर काला तथा कन्धों के फ़ीतों पर कोई सितारा नहीं है, आल्मा की लड़ाई के बारे में बता रहा है। पहला नशे में कुछ धुत्त हो चला है, बताते–बताते वह रुक जाता है और उसकी आँखों में हिचकिचाहट झलकने लगती है, मानो वह इस दुविधा में हो कि उसकी बातों का विश्वास किया जा रहा है या नहीं। दरअसल बात यह थी कि उस समूची मुठभेड़ में उसने जो हिस्सा लिया था, वह इतना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था और जिन दृश्यों का वह वर्णन कर रहा था वे इतने रोंगटे खड़े करने वाले थे कि उन पर सहज ही विश्वास नहीं होता था। ऐसा मालूम होता था, मानो वह निरे सत्य से बहककर बहुत दूर चला गया है। लेकिन इन कहानियों को आप जाने दीजिये। रूस के हर हिस्से में बहुत दिनों तक बहुत बार इन्हें आप सुनेंगे। आप तो इस बात के लिए उतावले हैं कि जल्द से जल्द चौथे व्यूहमुख पहुँचें जिसके बारे में आपने इतने विभिन्न प्रकार से इतना कुछ सुना है। जब भी कोई इस बात का ज़िक्र करता है कि वह चौथे व्यूहमुख हो आया है, तो उसकी आवाज़ लामुहाला एक ख़ास ख़ुशी और गर्व से गूँजने लगती है, और

जब कोई कहता है कि मैं चौथे व्यूहमुख जा रहा हूँ तो उसकी आवाज़ में अवश्य ही विचलित हृदय का एक हल्का-सा कम्पन या अतिरंजित लापरवाही का पुट नज़र आयेगा। अगर कोई किसी को फटकार बताना चाहता है तो वह उससे कहता है : "तुम्हें चौथे व्यूहमुख भेज देना चाहिए"; और जब आपको स्ट्रेचर पर पड़ा कोई आदमी मिलता है और आप पूछते हैं : "कहाँ से?" तो बहुत करके यही उत्तर मिलता है : "चौथे व्यूहमुख से!"

चौथे व्यूहमुख के बारे में, वस्तुतः दो सर्वथा भिन्न मत हैं। एक तो उन लोगों का जो कभी वहाँ नहीं गये और जिनके लिए वहाँ जाना निश्चित मौत के मुँह में जाना है, और दूसरा उन लोगों का जो वहाँ रहते हैं, जैसे सुनहरी बालों वाला वह जहाज़ी अफ़सर, जो चौथे व्यूहमुख के बारे में बताते समय, केवल इस बात का ज़िक्र करता है कि वहाँ कीचड़ है या सूखा, खन्दकों में गरमी है अथवा ठण्ड, आदि-आदि।

उस आधा घण्टे के भीतर, जो कि आपने कहवाख़ाने में बिताया है, मौसम बदल जाता है। समुद्र पर जो धुँध छा गयी थी, अब घनीभूत होकर भूरे, ठण्डे और नम बादलों की चादर बन गयी है और उसने सूरज को ढँक लिया है। बारिश और बर्फ़ की ठण्डी, भयानक, झड़ी लगी है जो छतों, पगडण्डियों और सैनिकों के बरान-कोटों को गीला कर रही है...।

एक अन्य बैरीकेड को पीछे छोड़ने के बाद आप एक दरवाज़े में से गुज़रते हैं और दाहिनी ओर मुड़कर एक चौड़ी सड़क पर आ जाते हैं। इस बैरीकेड के उस पार सड़क के दोनों ओर के घर जनशून्य हैं। दुकानों पर साइनबोर्ड नहीं हैं, और दरवाज़ों पर तख़्ते चढ़े हैं। खिड़कियाँ टूटी हुई हैं। एक घर का कोना उड़ गया है और दूसरे की छत ध्वस्त है। इमारतें बड़ी उम्र के उन सैनिकों की भाँति मालूम होती हैं जो अभावों और कठिनाइयों को सह चुके हों। ऐसा मालूम होता है मानो वे गर्व और थोड़ी हिक़ारत से आपकी ओर देख रही हों। रास्ते में तोप के गोलों से ठोकर लगती है और चट्टानी धरती में उनके गिरने से बने पानी-भरे गड्ढों में पाँव धँस जाते हैं। सैनिकों, कस्साकों और अफ़सरों की टुकड़ियाँ राह में मिलती और पीछे छूटती जाती हैं। रह-रहकर कोई स्त्री या बच्चा दिखायी दे जाता है, लेकिन स्त्री फ़ीतेदार टोपी नहीं पहने है। वह किसी नाविक की पत्नी है और पुराना ऊनी कोट तथा फ़ौजी बूट पहने है। सड़क पर कुछ दूर और चलने तथा हल्के ढलवान से उतरने पर चारों ओर एक भी घर नहीं दिखायी देता, घरों के बजाय मलवे, काठ-कठंगड़, मिट्टी, लट्ठों और पत्थरों के अजीब ढूह नज़र आते हैं। सामने ही एक पहाड़ी की गहरी ढलान पर खाइयों से कटा-छँटा एक काला कीचड़-भरा स्थल अधर में लटका है। यही वह चौथा व्यूहमुख है... यहाँ बहुत ही कम लोग दिखायी देते हैं, और स्त्रियाँ तो

बिल्कुल ही नज़र नहीं आतीं। सैनिक तेज़ी से निकल जाते हैं, सड़क ख़ून से रँगी है। स्ट्रेचर लिये चार सैनिक कहीं न कहीं ज़रूर दिखायी पड़ जायेंगे! स्ट्रेचर पर एक पीला चेहरा और ख़ून में सना उसका फ़ौजी कोट दिखायी देगा। अगर पूछिये कि कहाँ घाव लगा है, तो स्ट्रेचर-वाहक आपकी ओर देखने का कष्ट तक नहीं करेंगे और झुँझलाकर जवाब देंगे कि टाँग या बाँह में – अगर घाव हल्का हुआ तो; वरना गहरी ख़ामोशी के साथ गुज़र जायेंगे – अगर स्ट्रेचर पर कोई सिर नहीं दिखायी देता है और जिस आदमी को वे ले जा रहे हैं, वह मर गया है या बुरी तरह घायल हो गया है।

पहाड़ी पर चढ़ते समय जब कोई तोप का गोला चीख़ता-सनसनाता एकदम पास से गुज़रेगा तो एक अप्रिय सनसनी का आप अनुभव करेंगे। तब अनायास ही, और सर्वथा भिन्न रूप में, गोलाबारी की उस ध्वनि का अर्थ आपकी समझ में आ जायेगा जिसे आपने नगर में सुना था। आपके मस्तिष्क में कोई मधुर और कोमल स्मृति कौंध जायेगी, और जो कुछ आप देख रहे हैं उसके बजाय अपने बारे में आप अधिक सोचना शुरू कर देंगे। चारों ओर के वातावरण की तरफ़ से आपका ध्यान उचट जायेगा, और ढुलमुलपन की एक मनहूस भावना आपको अपने वश में कर लेगी। लेकिन पस्त कर देने वाली उस नन्ही आवाज़ के बावजूद, जिसे आप ख़तरे की स्थिति में अपने भीतर यकायक सुनने लगते हैं, और ख़ास तौर से उस समय जब आप एक सैनिक को अपने अस्त्र झुलाते हुए तरल कीचड़ के बीच ढलवान पर से रपटते और ठहाके के साथ अपने सामने से कुदकते हुए देखते हैं, तो आप उस आवाज़ का मुँह बन्द कर देते हैं, अनायास ही आपका सीना तन जाता है और अपने सिर को ऊँचा उठाकर आप फिसलनी मटियाली पहाड़ी पर चढ़ने लगते हैं। मुश्किल से कुछ ही दूर चढ़ते न चढ़ते दायें और बायें स्तुत्ज़र से गोलियाँ हवा में सनसनाने लगती हैं, और आप मन ही मन सोचते हैं कि सड़क के बजाय उसके समानान्तर जाने वाली खाई के रास्ते जाना क्या अधिक अच्छा नहीं होगा? लेकिन वह खाई घुटनों तक तरल, पीले रंग की, दुर्गन्ध-युक्त कीचड़ से भरी है। इससे पहाड़ी पर चढ़ने के लिए सड़क को ही आप ज़्यादा पसन्द करेंगे, इसलिए और भी अधिक कि हर कोई *सड़क से ही जाता* नज़र आता है। क़रीब दो सौ क़दम आगे बढ़ने के बाद आप अब ऐसे स्थल पर पहुँचते हैं जिसे गोलों ने छलनी कर दिया है, कीचड़ की जहाँ भरमार है और मिट्टी के बेपेंदी पीपों और तटबन्दी से जो घिरा है। यहाँ बारूद के पीपे मौजूद हैं, मंच और खन्दकें बनी हैं जिनकी छतों पर लोहे की ढली हुई तोपें तैनात हैं और उनके गोले क़ायदे से चुने हुए रखे हैं। ऐसा मालूम होता है मानो ये सब चीज़ें यहाँ बेमतलब या बिना किसी कारण के जमा हैं। नाविकों का एक दल बैटरी के आस-पास घूमघाम रहा है, और इस स्थल के

बीच में एक ध्वस्त तोप कीचड़ में आधी धँसी है। पैदल सेना का एक सैनिक बन्दूक़ लिये बैटरी–क्षेत्र को पार कर रहा है। कीचड़ में धँसे पाँवों को उठाने में उसे काफ़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। समूचे स्थल में गोबर–कण्डे, हथगोले जो फूटने से रह गये, तोप के गोले और छावनी का कूड़ा–कचरा चिपचिपी कीचड़ के बीच छितरा पड़ा है। प्रत्यक्षतः एकदम अपने पास ही तोप के गोले के धम्म–से गिरने की आवाज़ आप सुनते हैं; और चारों ओर गोलियाँ सनसनाती हुई मालूम होती हैं। वे तरह–तरह की आवाज़ें करती हैं – कुछ मक्खियों की भाँति भनभनाती हैं, और कुछ – जिनकी गति तेज़ है – सीटी–सी बजाती या किसी वाद्य–यन्त्र के तार की भाँति "पिंग" की आवाज़ करती सर्र–से निकल जाती हैं। तोपों के गोलों की गड़गडाहट का तो कुछ कहना ही नहीं। वह सभी को स्तब्ध कर देती है और उसे सुनकर रूह क़ब्ज़ हो जाती है।

"सो यही है वह चौथा व्यूहमुख! यह एक भयानक – सचमुच में भयानक जगह है!" आप अपने मन में सोचते हैं और गर्व की एक नन्ही चेतना तथा अवरुद्ध भय के एक भारी बोझ का अनुभव करते हैं। लेकिन आपको निराशा होगी। असल में यह चौथा व्यूहमुख नहीं है, वहाँ अभी तक आप पहुँचे नहीं हैं। यह तो याज़्नोव्स्की मोर्चेबन्दी है – जो ख़तरे से अपेक्षाकृत मुक्त है, और ज़रा भी भयावह नहीं है। चौथे व्यूहमुख तक पहुँचने के लिए दाहिनी ओर मुड़कर आपको भी उसी संकरी खाई के रास्ते चलना होगा जिससे कि अभी–अभी झुककर दोहरा हुआ एक पैदल सैनिक गया है। इस खाई में आपको और भी ज़्यादा स्ट्रेचर, एक नाविक और कुदाली लिये सैनिक दिखायी देंगे, सुरंगों के पलीते और दलदली खोहें नज़र आयेंगी जिनमें दो से ज़्यादा आदमी रेंगकर नहीं समा सकते। इनके अलावा यहाँ आपको कृष्णसागर बटालियनों के स्काउट दिखायी देंगे – अपने जूते बदलते हुए, खाना खाते हुए, पाइपों से धुआँ उड़ाते और विविध प्रकार का अपना जीवन बिताते हुए। और हर कहीं, सभी काट–छाँट और आकार–प्रकार के लोहे के टुकड़े, छावनी का कूड़ा–कचरा तथा उसी दुर्गन्धपूर्ण कीचड़ की भरमार है। तीन सौ क़दम और चलने पर आप एक अन्य बैटरी–क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। यह एक छोटा–सा चौरस स्थल है – गोलों से छलनी हुआ, रेत–भरे पीपों से लदा–फँदा, मिट्टी के ढूहों–गड्ढों से घिरा, चौतरों पर तोपों से लैस और चहारदीवारी से रक्षित। एक ढूह की ओट में चार या पाँच नाविक ताश खेलते नज़र आते हैं और एक समुद्री अफ़सर, आपको एक नया उत्सुक दर्शक समझकर, ख़ुशी से आपको घुमाता और आपकी दिलचस्पी की हर चीज़ के बारे में बताता है। यह अफ़सर पीले काग़ज़ में तम्बाकू लपेटकर सिगरेट बनाने के लिए अपनी तोप पर बैठ जाता है, या गोलाबारी के एक स्थल से दूसरे स्थल का चक्कर इतने शान्त भाव से लगाता है और चारों ओर

अधिकाधिक तेज़ी से सनसनाती गोलियों के बावजूद इतने कृत्रिम अन्दाज़ में बातें करता है कि घबराहट को विदा कर आप भी शान्त हो जाते हैं। आप उससे सवाल करने लगते हैं और जो कुछ वह कहता है उसे पूरे ध्यान से सुनते हैं। अफ़सर आपको बताता है – लेकिन केवल आपके पूछने पर ही – कि पाँच तारीख़ की गोलाबारी के समय क्या हश्र बरपा हुआ था, किस प्रकार केवल एक ही तोप आग उगलने लायक़ रह गयी थी और केवल आठ आदमी जीवित बचे थे, लेकिन इस सबके बावजूद अगले दिन – छह तारीख़ की सुबह को उसकी सभी तोपों ने फिर दुश्मन को भूनना शुरू कर दिया था। वह आपको बताता है कि किस प्रकार पाँच तारीख़ को, नाविकों की एक खन्दक के ऊपर दुश्मन का गोला आकर गिरा और ग्यारह आदमियों की चिन्दियाँ बिखर गयीं। एक छेद में से – जो कि निशाना साधने के लिए बनाया गया है। – वह आपको दुश्मन की खाइयाँ दिखाता है जो यहाँ से दो अथवा तीन सौ फ़ुट से ज़्यादा दूर नहीं हैं। लेकिन एक बात का डर है। वह यह कि दुश्मन पर नज़र डालने के लिए जब आप उस छेद में से झाँकने का प्रयत्न करते हैं तो सनसनाती गोलियों के असर के मारे आप कुछ देख नहीं पाते; और अगर आप कुछ देखने में समर्थ हो सकें तो यह जानकर आपको अचरज होगा कि वह सफ़ेद चट्टानी दीवार ही, जो कि आपके इतना नज़दीक है और जिसमें से धुएँ के छोटे-छोटे गोले निकल तथा फूट रहे हैं, दुश्मन है। सैनिक और नाविक उसे – दुश्मन को – *वह* कहकर पुकारते हैं।

यह बिल्कुल सम्भव है कि समुद्री अफ़सर बहादुरी के जोम में आकर या केवल जी बहलाने की ख़ातिर, आपको भी निशानेबाज़ी का एक छोटा-सा नमूना दिखाना चाहे। वह हुक्म देता है : "तोपची और उसके दल को तैयार करो!"

हँसते-खेलते चौदह नाविक पाँत बाँधे बाहर निकलते हैं। एक अपना पाइप जेब में खोंस रहा है, दूसरा बिस्कुट के बाक़ी बचे हिस्से को अपने मुँह के हवाले कर रहा है। टोपीदार कीलें लगे अपने जूतों को खटखटाते वे चबूतरे पर चढ़ जाते हैं और तोप में गोले भरना शुरू कर देते हैं। इन लोगों के चेहरों को ज़रा ध्यान से देखिये। उनके अन्दाज़ और हरकतों पर नज़र रखिये। उनके तपे हुए चौड़े चेहरों की प्रत्येक रेखा, प्रत्येक मांसपेशी, उनके कन्धों की चौड़ाई, घुटने तक के जूतों में कसी उनकी सुडौल टाँगें, उनकी प्रत्येक शान्त, निरावेग, और दुविधाहीन निश्चल हरकत, उन मुख्य गुणों का परिचय देती हैं जिनमें रूसियों की शक्ति – उनकी सादगी और अडिगता – निहित है।

सहसा एक भीषण गड़गड़ाहट न केवल कानों को ही बल्कि समूचे शरीर को सन्न कर देती है और सिर से लेकर पाँव तक एक कँपकँपी-सी दौड़ जाती

है। इसके बाद गोले की दूर होती हुई चीख़ सुनायी देती है और बारूद का घना धुआँ आपको, चबूतरे को और उस पर हरकत करते नाविकों को घेर लेता है। गोला दगने के बारे में नाविकों की तरह-तरह की टीका-टिप्पणी आप सुनते हैं। और उनकी आवेशपूर्ण भाव-भंगिमा का आपको ऐसा आभास मिलता है जिसकी कि शायद आप आशा नहीं करते थे – ग़ुस्से और दुश्मन से बदला लेने की प्रबल कामना का, जो हर आदमी के हृदय में हिलोरें ले रही है।

"ठीक **एम्ब्राझूर** * पर निशाना लगा। दो का तो सफाया हो ही गया होगा। अरे देखो, लाशों को हटाया जा रहा है!" वे ख़ुशी से चिल्लाते हैं।

"*वह* अब पागल हो उठेगा और क्षण बीतते-न-बीतते वार करेगा!" दूसरा कहता है।

और सचमुच, कुछ ही क्षण बाद, आग की एक लपक और धुएँ के एक बादल पर आपकी नज़र पड़ती है। बुर्जी पर खड़ा सन्तरी चिल्लाकर कहता है : "गोला!" और एक गेंद आपके पास से सनसनाती हुई छपाक से धरती से टकराती और कीचड़ तथा पत्थरों का फ़व्वारा उछाल देती है। बैटरी कमाण्डर का पारा तेज़ हो जाता है और वह दूसरी ओर फिर तोप दाग़ने का आदेश देता है। दुश्मन इसका जवाब देता है और आप दिलचस्प भावों से रोमांचित हो उठते हैं, और दिलचस्प बातें देखने-सुनने का आपको मौक़ा मिलता है। सन्तरी फिर चिल्लाता है : "गोला!" और आप एक बार फिर गोले की चीख़, उसके गिरने का धमाका और कीचड़ का फ़व्वारा छूटता हुआ देखते हैं। यह भी हो सकता है कि सन्तरी चिल्लाकर कहे : "मोर्टर!" और आप एकरस तथा किसी हद तक सुहावनी भनभनाहट सुनें जो ज़रा भी भयानकता का आभास नहीं देती – अधिकाधिक तेज़ गति से निकट आते हुए शेल की भनभनाहट। और इसके बाद एक काली गेंद आपको दिखायी देगी, जो एक भारी धमाके के साथ ज़मीन से टकरायेगी ओर उसके भीषण विस्फोट की ध्वनि से आपके कान गूँज उठेंगे। लोहे की छेपटियाँ और टुकड़े, चीख़ते और सीटी-सी बजाते, चारों ओर छिटकेंगे, पत्थरों की बौछार होगी और आप कीचड़ से लथपथ हो जायेंगे। और इस समूचे दौरान में भय और ख़ुशी की एक मिली-जुली भावना का आप अनुभव करेंगे। क्षण-भर के लिए आपको यह पक्का यक़ीन हो जाता है कि शेल आपकी ओर ही आ रहा है और यह कि वह निश्चय ही आपके जीवन का अन्त कर देगा। लेकिन आपका गर्व आपको सँभाल लेता है और उस वेदना को कोई नहीं देख पाता जो छुरी की तरह आपके हृदय को बेध रही है। लेकिन जब शेल आपको छुए बिना ही पास से निकल जाता है तो आपमें तुरन्त स्फूर्ति आ

* तोप का मुँह निकालने के लिए दीवार में डाली गयी सेंध।

जाती है और एक आह्लादपूर्ण तथा अत्यन्त सुखद भावना आपके रोम-रोम में छलछलाने लगती है। क्षण-भर के लिए ही सही, लेकिन ख़तरे में आप एक अजीब आकर्षण का अनुभव करते हैं, जीवन-मृत्यु का यह खेल आपको मुग्ध कर लेता है और आप यह चाहने लगते हैं कि गोला या शेल आपके नज़दीक, और भी ज़्यादा नज़दीक गिरे। तभी, अपनी ज़ोरदार और खुरदुरी आवाज़ में सन्तरी एक बार फिर चिल्लाता है : "मोर्टर!" और एक बार फिर शेल के आने की चीख़, उसके गिरने की आवाज़ और फटने का धमाका सुनायी देता है। लेकिन इन आवाज़ों के साथ किसी मानव-प्राणी के कराहने की आवाज़ आपको अचरज में डाल देती है। स्ट्रेचर लाया जाता है और ठीक उसी समय आप भी घायल के पास पहुँच जाते हैं। कीचड़ और ख़ून में पड़ा वह एक अजीब, क़रीब-क़रीब अमानवीय दृश्य प्रस्तुत करता है। उसके सीने का एक हिस्सा उड़ गया है। कुछ क्षणों तक उसके कीचड़ में लिथड़े चेहरे पर केवल भय तथा वेदना का बनावटी-सा दिखने वाला तथा असामयिक भाव नज़र आता है जो कि ऐसी हालत में बहुधा लोगों के चेहरों पर छा जाता है। लेकिन जब स्ट्रेचर आ जाता है और वह खुद उठकर उस पर चढ़ जाता है तथा जो बाज़ू घायल नहीं है, उसके बल लेट जाता है तो यह भाव एक प्रकार के उल्लास और अव्यक्त उदात्त विचार का रूप धारण कर लेता है – उसकी आँखों में चमक दौड़ जाती है, वह अपने दाँतों को भींच लेता है, कोशिश करके अपना सिर ऊँचा कर लेता है। और जब स्ट्रेचर को उठाया जाता है तो वह स्ट्रेचर-वाहकों को रोककर अपने साथियों की ओर मुड़ता है और काँपती आवाज़ में उनसे कहता है : "मुझे माफ़ करना, बँधुओ!" वह कुछ और भी कहना चाहता है, साफ़ मालूम होता है कि वह किसी कोमल भाव को व्यक्त करने की कोशिश कर रहा है, लेकिन समर्थ नहीं हो पाता, पहले वाली बात को ही दोहराकर रह जाता है : "मुझे माफ़ करना, बँधुओ!" एक नाविक साथी उसके पास तक जाता है, उसके सिर पर अपनी टोपी पहना देता है – घायल सैनिक इसके लिए अपना सिर उठाता है। इसके बाद, अपनी बाँहों को झुलाता हुआ, शान्त और निश्चल भाव से वह अपनी तोप के पास लौट आता है।

"इसी तरह प्रतिदिन हमारे सात या आठ आदमी कम हो जाते हैं," आपके चेहरे पर भय के आसार देखकर समुद्री अफ़सर जवाब देता है और जम्हाई लेकर पीले काग़ज़ में तम्बाकू लपेटते हुए एक और सिगरेट तैयार करने लगता है...

हाँ तो अब आप सिवस्तॅपोल के रक्षकों को गोले बरसाते और उनकी मार सहते देख चुके हैं। इसके बाद जब आप वापस लौटते हैं तो, कारण चाहे जो भी हो, रास्ते-भर सिर के ऊपर सनसनाती गोलियों और गोलों की ज़रा भी चिन्ता

नहीं करते। आपके क़दम शान्त और उल्लसित भाव से ध्वस्त युद्ध-क्षेत्र का समूचा पथ पार करते हैं। मुख्य चीज़ वह सुखद विश्वास है जिसे आप वहाँ से अपने साथ लाते हैं – यह विश्वास कि सिवस्तॅपोल घुटने नहीं टेक सकता, और केवल यही नहीं कि वह घुटने नहीं टेक सकता, बल्कि यह भी कि रूसी लोगों की आत्मा को कहीं भी, किसी जगह भी, डिगाना असम्भव है। और इस असम्भवता को आपने अनगिनत मोड़ों-चौरोहों, रक्षा-दीवारों और पेंचदार खाई-खन्दकों, सुरंगों और तोपों के अम्बारों में नहीं – उन बेतुके और बेमानी अम्बारों में नहीं – जैसा कि आपको मालूम हुआ था – बल्कि सिवस्तॅपोल के रक्षकों की आँखों में, उनकी वाणी में, उनके हर अन्दाज़ में, और उस चीज़ में देखा है जिसे उनकी आत्मा कहा जाता है। जो कुछ भी वे करते हैं, बहुत ही सादगी और सहज भाव से करते हैं। उन्हें देखकर ज़रा भी सन्देह नहीं रहता कि जो कुछ वे कर रहे हैं, उससे सौ-गुना ज़्यादा और कर सकते हैं... कुछ भी उनके लिए असम्भव नहीं है। आप अनुभव करते हैं कि उनके कृत्यों के पीछे किसी तुच्छता, महत्त्वाकांक्षा या अपने-आपको भुलाने की वह भावना नहीं जिसने कि आपको अनुप्राणित किया था, बल्कि कोई दूसरी भावना है – इनसे कहीं अधिक प्रबल और आवेगमयी। इस भावना ने ही उन्हें गोली-गोलों की बौछारों के बीच शान्त रहने की क्षमता प्रदान की है, उन्हें ऐसी परिस्थितियों में रहना सिखाया है जिसमें जीवन का एक भी नहीं लेकिन मौत के सौ अवसर आते रहते हैं और जिसमें निरन्तर श्रम करना, जागरूक रहना और गन्दगी को सिर पर ओढ़ना पड़ता है। किसी तरह भी एक तमगे़ या उपाधि के लिए, या दण्ड के भय से लोग इतनी भयावह परिस्थितियों को बरदाश्त नहीं कर सकते। कोई अन्य ज़्यादा शुभ और ऊँची भावना उन्हें अनुप्राणित करती है। सिवस्तॅपोल के घेरे के प्रारम्भिक दिनों की कहानियाँ – उन दिनों की कहानियाँ जबकि न क़िलेबन्दियाँ थीं, न सेनाएँ थीं, क़िले को बचाये रखने की कोई भौतिक सम्भावना तक नहीं थी, और इतने पर भी किसी को ज़रा भी यह सन्देह नहीं था कि वह दुश्मन के सामने घुटने टेक देगा। यही दिन थे जब कोर्नीलोव ने – उस वीर ने जिस पर प्राचीन यूनान तक गर्व कर सकता है – अपनी सेनाओं का मुआइना करते समय कहा था : "जवानो हम मर जायेंगे, पर सिवस्तॅपोल को घुटने नहीं टेकने देंगे!" और हमारे रूसी लोगों ने, जो कभी डींग नहीं मारते, जवाब में कहा था : "हम मर मिटेंगे, जय हो!" – सिवस्तॅपोल के उन दिनों की कहानियाँ अनगिनत सुन्दर ऐतिहासिक दन्त-कथाएँ न रहकर अब आपके लिए प्रामाणिक बन जाती हैं, सत्य का रूप धारण कर लेती हैं। अब आप उन लोगों को, जिन्हें देखकर आप अभी-अभी लौटे हैं – उन वीरों को जिन्होंने कठिनतम दिनों में हिम्मत नहीं हारी, बल्कि जो और भी ऊँचे उठे और किसी

एक नगर के लिए नहीं, बल्कि अपनी मातृभूमि पर जान न्योछावर करने के लिए तैयार हो गये, अच्छी तरह समझ पायेंगे और उनकी तस्वीर आपके मस्तिष्क में स्पष्ट होकर उभरेगी। सिवस्तॅपोल का यह महाकाव्य, जिसमें रूसी जनता ने वीर नायक की भूमिका अदा की, अपनी गहरी छाप से दीर्घकाल तक रूस को अनुप्राणित करता रहेगा...

साँझ का धुँधलका धरती पर उतर रहा है। आकाश भूरे बादलों से आच्छादित है। छिपता हुआ सूरज एकाएक बादलों के पीछे से झाँकता है और अपनी रक्तिम किरणों से गुलाबी बादलों को, समुद्र की हरी सतह को जिसके विशाल शान्त वक्ष पर धब्बों की भाँति छितरे जहाज़ और नौकाएँ हिचकोलें खा रही हैं, और नगर की सफ़ेद इमारतों तथा उसके बाज़ारों में चलते-फिरते लोगों को रँग देता है। रेजीमेण्ट का बैण्ड सड़क पर वाल्त्स की एक प्राचीन धुन बजा रहा है, जो पानी पर से तैरती हुई, दुर्ग से छूटने वाली गरज के साथ मिलकर एक अलौकिक संगीत की सृष्टि करती है।

सिवस्तॅपोल,
25 अप्रैल, 1885

अनु. – नरोत्तम नागर



मिख़ाईल सल्तिकोव-श्चेद्रीन

(1826–1889)

"मनमानी, कपटभाव, झूठ, लुटेरापन, ग़द्दारी और मूर्खता के विरुद्ध आवाज़ उठाना ही मेरे साहित्य-सृजन का स्थायी विषय बना रहा है..." मिख़ाईल सल्तिकोव-श्चेद्रीन ने अपने कृतित्व के बारे में लिखा है। उनकी सबसे अधिक विख्यात रचना है – 'श्रीमान गोलोव्योव'। इसमें एक ज़मींदार-परिवार की कहानी कही गयी है। किन्तु दरअसल इसमें ज़ारकालीन रूस के समूचे ज़मींदार वर्ग की परोपजीविता का गहन तथा निर्मम भण्डाफोड़ किया गया है।

'क़िस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा' (1869) लोक-कथा की शैली में लिखा गया है। श्चेद्रीन द्वारा जीवन के अन्तिम वर्षों में लिखे गये 'क़िस्से' मानो महान रूसी व्यंग्यकार के पूरे कृतित्व का, जिन्होंने रूसी क्रान्तिकारी जनवादी चिन्तन के विकास में बड़ा योगदान किया, निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं।

क़िस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा

कहते हैं कि कभी किसी ज़माने में दो अफ़सर थे। दोनों ही थे बड़े तरंगी और मनमौजी। जाने एक बार उन्हें क्या तरंग आयी, क्या धुन समायी कि दोनों एक ऐसे द्वीप में जा पहुँचे जहाँ आदमी का नामो-निशान भी नहीं था।

दोनों अफ़सरों ने उम्र-भर किसी दफ़्तर में नौकरी की थी। वे वहीं जन्मे, वहीं उनका पालन-पोषण हुआ और उसी दफ़्तरी घेरे में बन्द रहे। परिणाम यह कि कूपमण्डूक हो गये, न कुछ जानें न समझें। सिर्फ़ इन शब्दों तक ही दौड़ थी उनकी – "अपनी वफ़ादारी का यक़ीन दिलाता हूँ।"

कुछ वक़्त गुज़रा, उस दफ़्तर की ज़रूरत न रही, उसे बन्द कर दिया गया। इन दोनों अफ़सरों की वहाँ से छुट्टी हो गयी। जब करने-धरने को कुछ न रहा, तो दोनों पीटर्सबर्ग की पोद्याचेस्काया सड़क पर आ बसे। दोनों ने अलग-अलग मकानों में डेरा जमाया, दोनों ने अलग-अलग बावर्चिन रखी और दोनों अपनी पेंशन पाने लगे। एक दिन अचानक हुआ क्या कि दोनों एक ऐसे द्वीप में जा पहुँचे, जहाँ न आदमी था, न आदमज़ाद। आँख खुली तो क्या देखते हैं कि दोनों एक ही रज़ाई ओढ़े पड़े हैं। ज़ाहिर है कि शुरू में तो दोनों एक-दूसरे का मुँह ताकते रहे, कुछ न समझ पाये कि क़िस्सा क्या है। फिर ऐसे बतियाने लगे मानो कुछ हुआ ही न हो।

"महानुभाव, अभी-अभी एक अजीब-सा सपना देखा है, मैंने," एक अफ़सर ने कहा। "देखता क्या हूँ कि एक ऐसे द्वीप में जा पहुँचा हूँ, जहाँ आदमी का नाम है, न निशान"

इतना कहकर वह एकदम उछल पड़ा। दूसरा अफ़सर भी उछला।

"हाय राम। यह क्या माज़रा है! कहाँ हैं हम?" दोनों अफ़सर एकसाथ ही चिल्ला उठे। बिल्कुल परायी-परायी-सी थी उनकी आवाज़।

यह जानने के लिए कि सपना है या सत्य, वे लगे एक-दूसरे को छूने। मगर

वे जितना अपने को यह समझाने की कोशिश करते कि वह सपने से अधिक कुछ नहीं था, उतना ही उन्हें अफ़सोस के साथ यह मानने के लिए मजबूर होना पड़ता कि वह ठोस हक़ीक़त है।

उनके सामने एक तरफ़ तो समुद्र और दूसरी तरफ़ ज़मीन का छोटा-सा टुकड़ा था। ज़मीन के इस टुकड़े के आगे भी जहाँ तक नज़र जाती थी, सागर ही लहराता हुआ दिखायी दे रहा था। दफ़्तर बन्द होने के बाद दोनों अफ़सरों के रोने का यह पहला मौक़ा था।

दोनों अफ़सरों ने ध्यान से एक-दूसरे को देखा। क्या देखते हैं कि वे सोने के समय की पोशाक पहने हैं और दोनों के गले में चमचमा रहे हैं सरकारी तमग़े।

"अब अगर गरम-गरम कॉफ़ी आ जाये, तो कैसा मज़ा रहे!" एक अफ़सर कह ही उठा। मगर तभी उसे याद हो आया कि उसके साथ कैसा भद्दा मज़ाक़ हुआ है, जो न कभी किसी ने देखा होगा, न सुना होगा। वह दूसरी बार रो पड़ा।

"मगर अब हम करेंगे तो क्या?" आँसू बहाते हुए वह कहता गया। "क्या झटपट रिपोर्ट लिखकर तैयार की जाये? पर क्या लाभ होगा उससे?"

"देखिये मैं बताऊँ, महानुभाव," दूसरे अफ़सर ने जवाब दिया, "आप जायें पूरब को मैं जाऊँगा पश्चिम को। शाम को फिर इसी जगह मिलेंगे। हो सकता है कि कोई सूरत निकल आये!"

चुनाँचे पूरब और पश्चिम की ढूँढ़-तलाश शुरू हुई। उन्हें याद आया कि कैसे एक बार एक बड़े अफ़सर ने समझाया था – "अगर पूरब का पता लगाना चाहते हो, तो उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हो जाओ। तुम्हारे दायें हाथ को होगा पूरब।" अब उत्तर की खोज शुरू हुई, इधर घूमे और उधर मुड़े, सभी दिशाओं में घूम-घूमकर हार गये। मगर चूँकि सारी उम्र तो गुज़री थी दफ़्तर के घेरे में बन्द रहकर, इसलिए न पूरब मिला, न उत्तर।

"देखिये महानुभाव, ऐसा करते हैं कि आप जायेंगे दायें को और मैं जाऊँगा बायें को। यह ज़्यादा ठीक रहेगा।" एक अफ़सर ने दूसरे से कहा। यह सुझाव देने वाला अफ़सर दफ़्तर में काम करने के अलावा फ़ौजियों के बच्चों के स्कूल में कुछ अर्से तक सुलेख का अध्यापक भी रहा था। इसकी बदौलत वह कुछ अधिक समझदार था।

तय किया और दोनों चल दिये। दायें हाथ को जाने वाले अफ़सर ने देखा कि पेड़ हवा में झूल रहे हैं, फलों से टहनियाँ लदी हैं। अफ़सर का मन हुआ कि फल खाये, बेशक एक सेब ही। मगर वे इतने ऊँचे थे कि उन तक पहुँच पाना बहुत कठिन था। फिर भी उसने चढ़ने की कोशिश की, मगर कुछ हाथ न लगा। क़मीज़ तार-तार होकर रह गयी। अफ़सर एक सोते के निकट पहुँचा। देखा

कि वहाँ बड़ी प्यारी-प्यारी मछलियाँ हैं, वैसी जैसी कि फोन्तान्का सड़क के तालाब में। इधर-उधर छपछपा रही थीं वे अठखेलियाँ करती हुई।

"काश कि पोद्याचेस्काया सड़क वाले मेरे घर में ऐसी मछलियाँ होतीं?" अफ़सर ने सोचा और उसके मुँह में पानी भर आया।

अफ़सर पहुँचा जंगल में – वहाँ जंगली मुर्ग़े सीटियाँ बजा रहे थे, तीतर-बटेर कट-कट करते और ख़रगोश फुदकते फिर रहे थे।

"हे भगवान! जिधर देखो ख़ुराक! जहाँ देखो ख़ुराक!" अफ़सर ने कुछ ऐसे महसूस किया कि उबकायी आयी कि आयी।

आख़िर करता तो क्या! मिलने के लिए तय की हुई जगह पर ख़ाली हाथ लौटना पड़ा। वहाँ पहुँचा तो देखा कि दूसरा अफ़सर पहले से ही वहाँ विराजमान था।

"कहिये, महानुभाव, कुछ काम बना?"

"'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती' अख़बार की एक पुरानी कापी हाथ लगी है, बस और कुछ नहीं।"

दोनों अफ़सर फिर से सोने के लिए लेट गये। मगर पेट में तो चूहे कूद रहे थे, नींद भला कैसे आती। कभी उन्हें यह ख़याल परेशान करता कि कौन उनकी जगह पेंशन वसूलेगा, तो कभी दिन के वक़्त देखे हुए फल, मछलियाँ, मुर्ग़े, तीतर-बटेर और ख़रगोश उनकी आँखों के सामने घूमने लगते।

"कौन इस बात की कल्पना कर सकता था, महानुभाव, कि इन्सान की ख़ुराक अपनी असली शक्ल में हवा में उड़ती और पानी में तैरती फिर रही है, पेड़ों पर लदी पड़ी है?" एक अफ़सर ने कहा।

"हाँ," दूसरे अफ़सर ने जवाब दिया, "मानना ही पड़ता है और मैं अब तक यही समझता रहा हूँ कि पावरोटी जिस शक्ल में सुबह कॉफ़ी के साथ मिलती है, वह उसी शक्ल में तैयार पैदा होती है।"

"तो नतीजा यह निकला कि मिसाल के तौर पर यदि कोई बटेर खाना चाहता हो, तो सबसे पहले उसे पकड़े, उसकी गर्दन पर छुरी चलाये, उसे साफ़ करे और भूने... मगर यह सब किया जाये तो कैसे?"

"बिल्कुल सही कहा आपने," दूसरा अफ़सर बोला। "यह सब हो तो कैसे?"

दोनों चुप हो गये और सोने की कोशिश करने लगे। मगर क्या मज़ाल की भूख नींद को पास भी फटकने दे। आँखों के सामने तो घूम रहे थे जंगली मुर्ग़े, बत्तख़ें और सूअर – धीमी-धीमी आँच पर सेंके हुए – खीरों, अचारों और दूसरे सलादों से सजे हुए।

"मेरा तो ऐसे मन होता है कि अपने जूते खा जाऊँ," एक अफ़सर ने कहा।

“अगर काफ़ी अर्से तक पहने हुए हों, तो दास्ताने भी कुछ बुरे न रहते!” दूसरे अफ़सर ने गहरी साँस लेकर कहा।

अचानक दोनों अफ़सरों ने एक–दूसरे को बुरी तरह से घूरा। दोनों की आँखों में ख़ून की प्यास चमकी, दोनों के दाँत बजे और छाती से घरघरायी–सी आवाज़ निकली। दोनों धीरे–धीरे एक–दूसरे की तरफ़ बढ़ने लगे और पलक झपकते में एक दूसरे को फाड़ खाने के लिए झपट पड़े। कपड़े चिथड़े होकर इधर–उधर गिरने लगे, वे ज़ोरों से चीख़ने–चिल्लाने लगे। स्कूल में सुलेख का अध्यापक रह चुकने वाले अफ़सर ने अपने साथी का तमग़ा झपट लिया और आन की आन में उसे निगल गया। मगर जब उन्होंने ख़ून बहता देखा, तो जैसे उन्हें होश आया।

“राम, राम!” दोनों ने एकसाथ ही कहा। “ऐसे तो हम दोनों एक–दूसरे को नोच खायेंगे!”

“मगर हम यहाँ आ कैसे फँसे! कौन था वह बदमाश जिसने हमारे साथ ऐसा भद्दा बर्ताव कर डाला!”

“महानुभाव, किसी तरह बातचीत द्वारा वक़्त काटना चाहिए, वरना यहाँ ख़ून ही ख़ून नज़र आयेगा।” एक अफ़सर ने कहा।

“तो शुरू कीजिये!” दूसरे अफ़सर ने जवाब दिया।

“मसलन इस मसले पर आपका क्या विचार है – सूरज पहले निकलता है और फिर छिपता है, इसके उलट क्यों नहीं होता?”

“आप भी बड़े अजीब आदमी हैं, महानुभाव! आप भी तो पहले उठते हैं, फिर दफ़्तर जाते हैं, वहाँ क़लम घिसते हैं और फिर आराम करते हैं।”

“मगर क्यों भला इसके उलट न हो – मैं पहले नींद का मज़ा लूँ, तरह–तरह के सपने देखूँ और फिर बिस्तर से उठूँ?”

“हूँ, हाँ, मगर मैं जब तक दफ़्तर में काम करता था, तो हमेशा इसी तरह सोचा करता था – लो सुबह हो गयी, फिर दिन होगा, फिर शाम का खाना खाया जायेगा और फिर आराम किया जायेगा।”

खाने का ज़िक्र आते ही दोनों पर फिर उदासी छाने लगी और यह बातचीत यहीं ख़त्म हो गयी।

“मैंने किसी डॉक्टर से सुना था कि इन्सान बहुत समय तक अपने शरीर में संचित रसों के सहारे ज़िन्दा रह सकता है,” एक अफ़सर ने फिर से बातचीत शुरू की।

“यह कैसे हो सकता है?”

“जी, ऐसे ही होता है – शरीर में संचित रसों से दूसरे रस पैदा होते हैं। इन रसों से आगे और रसों का जन्म होता है। इसी तरह यह चक्र तब तक चलता जाता है, जब तक कि ये रस पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाते...”

"जब वे समाप्त हो जाते हैं, तब?"

"तब कोई न कोई ख़ुराक मिलनी ही चाहिए।"

"छि:!"

मतलब यह कि बातचीत चाहे कोई भी क्यों न शुरू करते, वह घूम-फिरकर खाने से जा जुड़ती और उनकी भूख और अधिक चमक उठती। उन्होंने बातचीत बन्द करने का फ़ैसला किया। तभी उन्हें 'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती' अख़बार की पुरानी कापी का ध्यान आया। लगे दोनों उसे बड़े चाव से पढ़ने।

एक अफ़सर ने उत्तेजित आवाज़ में पढ़ना शुरू किया –

"हमारी प्राचीन राजधानी के माननीय राज्यपाल ने कल एक शानदार दावत की। सौ व्यक्ति खाने पर हाज़िर थे और प्रबन्ध ऐसा था कि बस कमाल! आश्चर्यचकित कर देने वाली इस दावत में सभी देशों के एक से एक बढ़िया उपहार उपस्थित थे। ये उपहार मानो एक-दूसरे से भेंट करने आये थे। कैसी-कैसी जायक़ेदार चीज़ें थीं वहाँ – शेक्स्ना नदी की सुनहरी स्तेर-ल्याद मछली, काकेशिया के जंगलों के तीतर-बटेर और फ़रवरी के महीने में हमारे उत्तर में दुर्लभ स्ट्राबेरियाँ भी।"

"छि: छि:, हे भगवान! महानुभाव, इसके सिवा क्या कोई दूसरी ख़बर नहीं खोज सकते थे?" दूसरा अफ़सर खीझकर चीख़ उठा। अपने साथी के हाथ से अख़बार छीनकर वह ख़ुद पढ़ने लगा –

"तूला नगर से ख़बर मिली है – कल ऊपा नदी में स्टरजन मछली के पकड़े जाने की ख़ुशी में स्थानीय क्लब में एक शानदार समारोह मनाया गया (इस नदी में स्टरजन मछली का पकड़ा जाना एक ऐसी अनोखी घटना है, जिसकी बड़े-बूढ़ों तक को याद नहीं। इतना ही नहीं, प्रदेश के थानेदार और मछली में बड़ी समानता थी)। इस मछली को लकड़ी की एक बहुत बड़ी तश्तरी में रखकर मेज़ पर टिकाया गया। इसके चारों तरफ़ खीरे लगे हुए थे और मुँह में सब्ज़ी थी। डॉ. पी. साहब के हाथ में इस समारोह का प्रबन्ध था। उन्होंने इस बात की भरसक कोशिश की कि हर व्यक्ति को इस मछली का टुकड़ा चखने को मिले। चटनियाँ ऐसी लज़ीज़ थीं कि हर आदमी होंठ चाटता रह गया।"

"क्षमा कीजिये, महानुभाव, किन्तु लगता यही है कि विषय का चुनाव करने में आपने भी सावधानी से काम नहीं लिया।" पहले अफ़सर ने कहा और उसके हाथ से अख़बार लेकर ख़ुद पढ़ने लगा –

"व्यात्का नगर से समाचार मिला है – यहाँ के एक पुराने निवासी ने मछली का शोरबा बनाने की एक नयी विधि खोज निकाली है। एक बड़ी ट्रेट मछली

लेकर उसकी खाल इस तरह उधेड़ें कि दर्द के मारे उसकी कलेजी फैल जाये। तब..."

दोनों अफ़सर सिर थामकर बैठ गये। वे जिस भी चीज़ की तरफ़ अपना ध्यान लगाते, वही उन्हें खाने-पीने की याद दिलाती। सच तो यह है कि स्वयं उनके विचार उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे। कारण कि वे भुने हुए मांस के ख़्याल को जितना अधिक अपने दिमाग़ से निकालने की कोशिश करते, उन्हें उसकी उतनी ही अधिक याद सताती।

सुलेख का अध्यापक रह चुकने वाले उस अफ़सर के दिमाग़ के अचानक कल्पना की उड़ान भरी...

"महानुभाव!" उसने ख़ुश होकर कहा। "अगर हम कोई देहाती ढूँढ़ लायें, तो कैसा रहे?"

"क्या मतलब आपका... कैसा देहाती?"

"यही आम देहाती... जैसे कि होते हैं आम गँवार देहाती! वह अभी हमारे लिए पावरोटी ला देगा, मछलियाँ और परिन्दे पकड़ लायेगा!"

"हुँ... देहाती... ख़्याल तो अच्छा है। मगर जब यहाँ कोई है ही नहीं, तो आयेगा कहाँ से?"

"देहाती न हो – यह कैसे हो सकता है! देहाती हर जगह होते हैं, ज़रूरत है सिर्फ़ उन्हें खोजने की! यहीं, कहीं न कहीं, छिपा बैठा होगा वह कामचोर!"

इस ख़्याल से दोनों अफ़सर ख़ुशी के मारे उछल पड़े, जोश में आकर झटपट उठे और देहाती की तलाश में चल दिये।

देर तक वे जहाँ-तहाँ भटकते रहे, मगर कोई देहाती न मिला। आख़िर उन्हें मोटे आटे की रोटी और कच्चे चमड़े की गन्ध आयी। वे उसी तरफ़ चल दिये। देखते क्या हैं कि एक पेड़ के नीचे एक लम्बा-तड़ंगा आदमी पड़ा है, पेट फुलाये, सिर के नीचे बाँह का तकिया बनाये। बहुत ही बेशर्मी से हरामख़ोरी कर रहा था पड़ा हुआ। अफ़सर तो उसे इस तरह कामचोरी करते देखकर आगबबूला हो उठे।

"उठ रे आलसी!" दोनों अफ़सर उसे डाँटने-डपटने लगे। "इसके तो कान पर जूँ भी नहीं रेंगती। अरे देखता नहीं, यहाँ दो अफ़सर पिछले दो दिनों से भूख से दम तोड़ रहे हैं! उठकर लग जा काम से!"

देहाती उठकर खड़ा हुआ। देखता क्या है कि अफ़सर तो गरममिज़ाज आदमी हैं। उसका निकल भागने को मन हुआ, मगर अफ़सर उस पर ऐसे टूट पड़े कि निकल भागना मुमकिन न रहा।

जुट गया वह उनकी सेवा में।

पहला काम तो उसने यह किया कि पेड़ पर चढ़ गया और अफ़सरों के

लिए ख़ूब पके हुए दस-दस सेब तोड़ लाया। ख़ुद अपने लिए उसने एक खट्टा-सा सेब रख लिया। फिर उसने ज़मीन खोदी और उसमें से आलू निकाले। इसके बाद उसने लकड़ी के दो टुकड़े लिये, उन्हें रगड़कर उनमें से आग पैदा की। फिर उसने अपने बालों का जाल बुना और एक बटेर फाँस लिया। आख़िर उसने आग जलाकर तरह-तरह के इतने खाने तैयार कर दिये कि ख़ुद अफ़सर भी यह सोचे बिना न रह सके – इस निकम्मे को भी कुछ हिस्सा तो मिलना ही चाहिए।

अफ़सरों ने इस देहाती को तरह-तरह के यत्न करते देखा, उनके दिल बाग़-बाग़ हो गये। वे यह तक भूल गये कि एक दिन पहले तो वे भूख से मरे जा रहे थे। अब उन्हें ख़याल आया कि अफ़सर होना क्या अच्छी बात है, हर जगह काम निकाला जा सकता है!

"अफ़सर साहब, आप ख़ुश तो हैं न?" आलसी गँवार ने उनसे पूछा।

"हाँ, हम ख़ुश हैं, दोस्त! बहुत मेहनत से काम किया है तुमने!" अफ़सरों ने जवाब दिया।

"इजाज़त हो तो मैं अब थोड़ा आराम कर लूँ?"

"हाँ, हाँ, तुम्हें इजाज़त है आराम करने की। मगर जाने से पहले एक रस्सी बनाकर दे जाओ।"

देहाती ने झटपट जंगली सन इकट्ठा किया, उसे पानी में भिगोकर नर्माया, पीट-पीटकर उसकी मूँज बना डाली। शाम होते तक रस्सी तैयार हो गयी। अफ़सरों ने इसी रस्सी से देहाती को पेड़ से बाँध दिया कि कहीं भाग न जाये। वे ख़ुद आराम करने के लिए लेट गये।

एक दिन गुज़रा, दूसरा दिन गुज़रा। इसी बीच देहाती ऐसा होशियार हो गया कि लगा अंजलि में शोरबा तैयार करने! हमारे अफ़सरों की ख़ूब मज़े में कटने लगी, मोटे-ताज़े हो गये, तोंद बढ़ने लगी और रंग निखर आया। अब वे आपस में बातचीत करते – यहाँ तो हर चीज़ तैयार मिलती है और इसी बीच पीटर्सबर्ग में हमारी पेंशनें हैं कि जमा होती चली जा रही हैं।

"क्या ख़याल है आपका, महानुभाव, यह जो बाबुल की मीनार* की चर्चा की जाती है, वह हक़ीक़त है या कोरा मनगढ़न्त क़िस्सा?" नाश्ते के बाद एक अफ़सर ने दूसरे से पूछा।

"मेरे ख़याल में तो हक़ीक़त ही है, महानुभाव! वरना दुनिया में बहुत-सी

---

* बाबुल की मीनार का निर्माण बाइबिल में पायी जाने वाली एक पौराणिक कथा है। इस कथा का सार यह है कि बाबुल की मीनार के निर्माता उसे इतनी ऊँची बनाना चाहते थे कि वह आकाश को छू सके। मगर भगवान ने निर्माताओं को दण्ड देते हुए उनकी भाषा ऐसी गड़बड़ा दी कि वे एक-दूसरे की बात समझने में असमर्थ हो गये। – सं.

अलग-अलग भाषाओं के होने का क्या कारण हो सकता है!"

"तब तो यह भी सही है कि प्रलय हुआ था?"

"बेशक प्रलय हुआ था, वरना प्रलय के पहले के जानवरों के अस्तित्व को कैसे स्पष्ट किया जा सकता है? और फिर 'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती' लिखता है कि..."

"अब अगर 'मोस्कोव्स्किये वेदोमोस्ती' की कापी पढ़ डाली जाये, तो कैसा रहे।?"

समाचारपत्र की कापी ढूँढ़ी गयी, दोनों साहब इतमीनान से छाया में जा बैठे और शुरू से आख़िर तक उसे पढ़ गये। उन्होंने मास्को, तूला, पेंज़ा और रियाज़ान की दावतों का पूरा विवरण पढ़ा, मगर इस बार उन्हें उबकायी नहीं आयी!

***

बहुत दिन बीते या थोड़े, आख़िर को अफ़सर वहाँ रहते-रहते उदास हो गये। रह-रहकर उन्हें पीटर्सबर्ग में रह जाने वाली बावर्चिनों की याद सताने लगी। कभी-कभी तो वे छिप-छिपकर आँसू भी बहाने लगे।

"महानुभाव, जाने इस वक़्त क्या हो रहा होगा पोद्याचेस्काया सड़क पर?" एक अफ़सर ने दूसरे से पूछा।

"उसकी चर्चा न कीजिये, महानुभाव! दिल टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है!" दूसरे अफ़सर ने जवाब दिया।

"वैसे तो यहाँ भी ख़ूब मज़ा है - ऐसा मज़ा कि बयान से बाहर! मगर फिर भी मेढ़े को भेड़ से अलग होकर चैन नहीं मिलता और फिर वर्दी का भी तो कुछ कम ग़म नहीं!"

"ग़म-सा ग़म है वह! वर्दी भी चौथे दर्जे के अफ़सर की। उसकी तो सिलाई देखकर ही सिर चकराने लगता है!"

अब वे दोनों लगे देहाती पर इस बात के लिए ज़ोर डालने कि जैसे भी हो वह उन्हें पोद्याचेस्काया सड़क पर उनके घर पहुँचा दे। और लीजिये! देहाती तो उनकी पोद्याचेस्काया सड़क भी जानता है। वह वहाँ जा चुका है, मूँछों को शराब-शहद से भिगो चुका है, मगर उनके मज़े से वंचित रहा है।

"हम पोद्याचेस्काया के ही तो अफ़सर हैं!" अफ़सरों ने ख़ुश होकर कहा।

"जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, हुज़ूर, तो आपने घर के बाहर रस्से के सहारे लटककर दीवार या छत रँगने वाले और मक्खी की तरह नज़र आने वाले किसी आदमी को देखा होगा? मैं वही हूँ, सरकार!" देहाती ने बताया।

अब देहाती दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डालकर यह सोचने लगा कि कैसे उन

अफ़सरों को खुश करे, जो उस निकम्मे से इतनी मेहरबानी से पेश आये थे और उन्होंने उस देहाती के काम पर नाक-भौंह नहीं सिकोड़ी थी। सोच-सोचकर उसने यह किया कि एक जहाज़ बना डाला। जहाज़ तो ख़ैर, उसके बनाये क्या बन पाता, पर एक ऐसी नाव ज़रूर बना डाली कि सागर-समुद्र के पार पोद्याचेस्काया सड़क पर सही-सलामत पहुँचा जा सके।

"देख रे बदमाश, कहीं हमें डुबो मत देना!" उस नाममात्र के जहाज़ को लहरों पर डोलते हुए देखकर अफ़सरों ने उसे डाँटा।

"तसल्ली रखिये, हुज़ूर! कोई पहली बार थोड़े ही है," उसने जवाब दिया कि सफ़र की तैयारी कर ली।

देहाती ने हंसों के नर्म-नर्म पंख इकट्ठे करके उन्हें नाव की तली में बिछाया और अफ़सरों को इस नर्म बिस्तर पर लिटा दिया। फिर उसने भगवान का नाम लिया, सलीब बनायी और नाव बढ़ा दी। रास्ते में जब तूफ़ान आते, तेज़ हवाएँ चलतीं, तो अफ़सरों की जान निकलती और वे देहाती को उसके आलस, उसकी कामचोरी के लिए ऐसी जली-कटी सुनाते कि न क़लम लिख सके और न ज़ुबान बयान कर सके। मगर देहाती था कि नाव बढ़ाता गया, बढ़ाता गया और अफ़सरों को नमकीन मछलियाँ खिलाता गया।

आख़िर नेवा-मैया नज़र आयी, उसके आगे दिखायी दी प्रसिद्ध साम्राज्ञी येकातेरीना की नहर और फिर वहीं तो थी बड़ी पोद्याचेस्काया सड़क! तो पहुँच गये वे सकुशल अपने घर! बावर्चिनें तो हक्की-बक्की रह गयीं। कैसे मोटे-ताज़े हो गये हैं उनके साहब, कैसा निखार है चेहरे पर, कैसे रंग में, कैसे मज़े में नज़र आ रहे हैं वे! अफ़सरों ने कॉफ़ी पी, पावरोटियाँ खायीं और वर्दियाँ चढ़ा लीं। वर्दियाँ डाँटकर वे पहुँचे सरकारी ख़ज़ाने में, वहाँ जो पेंशन की रक़म मिली, तो इतनी अधिक कि न लिखी जाये, न बयान की जाये!

साहब लोगों ने देहाती को भुलाया नहीं। उसे वोदका का जाम भरकर भेजा और चाँदी के पाँच कोपेक इनाम में दिये। जा, मज़े कर मियाँ देहाती!

1869

अनु. - मदनलाल 'मधु'



अन्तोन चेख़व

(1860–1904)

"विश्व को देखने के अपने गुण की दृष्टि से चेख़व 19वीं शताब्दी के क्लासिक लेखकों की पाँत में शामिल हैं, उस पाँत में जो पुश्किन के जगमगाते नाम से आरम्भ होती है," सोवियत लेखक कोन्स्तान्तीन फ़ेदिन ने कहा। चेख़व ने रूसी टुटपुँजियाँ लोगों के जीवन और उनके रंग-ढंग से बारे में हास्यपूर्ण कहानियों के साथ 19वीं शताब्दी के 9वें दशक में अपना सृजन-पथ आरम्भ किया। 10वें दशक में रचे गये लघु-उपन्यासों, कहानियों और नाटकों में चेख़व ने इसी विषय को गम्भीरतापूर्वक विशद और गहन रूप दिया और यह दिखाया कि एक ढर्रे की सामान्य और नीरस ज़िन्दगी से दबा-कुचला हुआ व्यक्ति कैसे नष्ट हो जाता है और उसे यह तक नहीं पता चलता कि "जीवन की तुच्छ बातें" उसकी आत्मा का हनन करती जा रही हैं।

'दुलहन' (1903) अन्तोन चेख़व की अन्तिम कहानी थी जिसमें नायिका कूपमण्डूकी जीवन से सदा के लिए अपने नाता तोड़ने के निर्णय पर पहुँचती है।

दुलहन

1

रात के दस बज चुके थे और बग़ीचे में पूरा चाँद चमक रहा था। शूमिन परिवार में दादी मार्फ़ा मिख़ाइलोव्ना की आज्ञानुसार आयोजित शाम की प्रार्थना अभी-अभी ख़त्म हुई थी, और नाद्या को जो एक मिनट के लिए बग़ीचे में निकल आयी थी, दिखायी पड़ रहा था कि खाने के कमरे में रात का भोजन परोसा जा रहा है। उसकी दादी फूली-फूली रेशमी पोशाक पहने मेज़ के चारों ओर मँडरा रही थीं; पादरी अन्द्रेई नाद्या की माँ नीना इवानोव्ना से बातें कर रहे थे। अब खिड़की के पीछे नीना इवानोव्ना बत्ती की रोशनी में न जाने क्यों, नवयुवती-सी दिख रही थी। माँ के पास पादरी अन्द्रेई का लड़का अन्द्रेई अन्द्रेइच खड़ा हुआ ध्यान से बातचीत सुन रहा था।

बग़ीचे में ठण्डक और ख़ामोशी थी, गहरी निश्चल छायाएँ ज़मीन पर पसर रही थीं। बहुत दूर से, शायद शहर के बाहर से मेंढकों के टर्राने की आवाज़ आ रही थी। हवा में मई की, सुहावनी मई की उमंग थी। ताज़ी हवा में साँस गहरी आती थी; और यह ख़याल आता कि यहाँ नहीं, कहीं शहर से बहुत दूर, आसमान के नीचे, पेड़ों की चोटियों के ऊपर, खेतों और झाड़ियों में एक विशेष वसन्ती जीवन – रहस्यमय और अत्यन्त सुन्दर, अमूल्य और पवित्र जीवन – आरम्भ हो रहा है जो कमज़ोर, पापी मानव की पहुँच से बाहर है। जाने क्यों रोने को जी चाहता था।

नाद्या तेईस साल की हो गयी थी; सोलह साल की उम्र से ही वह व्यग्रता के साथ शादी के सपने देख रही थी, और अब आख़िरकार खाने के कमरे में खड़े नौजवान अन्द्रेई अन्द्रेइच से उसकी सगाई हो चुकी थी। वह अन्द्रेई को पसन्द करती थी, शादी की तारीख़ सातवीं जुलाई तय कर दी गयी थी लेकिन उसे कोई ख़ुशी नहीं महसूस हो रही थी, न रात में अच्छी तरह नींद आती, उसकी उमंग ग़ायब हो गयी थी... नीचे के रसोईघर की खुली खिड़की से

छुरी-काँटों की खनखनाहट सुनायी पड़ रही थी, दरवाज़ा बराबर भड़भड़ा रहा था। मुर्ग़ा भूनने और मसालेदार चेरी की ख़ुशबू आ रही थी। ऐसा मालूम होता था कि यह सब बिना बदले अनन्त काल तक ऐसे ही चलता रहेगा!

मकान से कोई निकला और ओसारे में खड़ा हो गया। यह अलेक्सान्द्र तिमोफ़ेइच या जैसा कि सब कोई उसे पुकारते थे, साशा था, जो मास्को से क़रीब दस रोज़ पहले आया था। बहुत दिन हुए नाद्या की दादी की दूर की कुलीन रिश्तेदार, छोटे क़द की, दुबली-पतली, रुग्ण विधवा मरीया पेत्रोव्ना दादी से मदद माँगने के लिए मिलने आया करती थी। उसी का एक लड़का था साशा। पता नहीं क्यों लोगों का कहना था कि वह एक अच्छा कलाकार था और जब उसकी माँ मरी, तो दादी ने पुण्य के लिए मास्को के कोमिसारोव तकनीकी स्कूल में उसे भेज दिया। एक या दो साल बाद उसने अपना तबादला चित्रकला विद्यालय में करा लिया, जहाँ वह लगभग पन्द्रह साल रहा। अन्त में वह वास्तु-शिल्प विभाग की अन्तिम परीक्षा में किसी तरह उत्तीर्ण हो गया; उसने वास्तु-शिल्पी की हैसियत से कभी काम नहीं किया, बल्कि मास्को के एक लिथो-छापेख़ाने में नौकरी कर ली। वह क़रीब-क़रीब हर गरमी में आमतौर से काफ़ी बीमार होकर दादी के यहाँ आराम करने और स्वास्थ्य-लाभ के लिए आता था।

गले तक बटन लगाये वह एक लम्बा कोट और पुरानी-सी किरमिच की पतलून पहने हुए था, जिसके पायंचों के किनारों में छूँछके निकल रहे थे, और उसकी क़मीज़ पर इस्त्री नहीं थी। उसके चेहरे पर ताज़गी नहीं थी। वह दुबला, बड़ी-बड़ी आँखों, लम्बी हड्डीली उँगलियों और दाढ़ी वाला, साँवले रंग का, परन्तु सुन्दर युवक था। शूमिन परिवार में उसे लगता जैसे वह अपने ही लोगों के बीच है। उसके ठहरने का कमरा भी यहाँ साशा का कमरा ही कहलाता था।

ओसारे से उसने नाद्या को देखा और उसके पास चला गया।

"यहाँ बहुत सुहावना है," उसने कहा।

"हाँ, बहुत सुहावना है, तुम्हें पतझड़ तक यहाँ ठहरना चाहिए।"

"हाँ, लगता है ठहरना ही पड़ेगा। मैं शायद सितम्बर तक यहाँ ठहरूँगा।"

वह अकारण हँसा और उसके बग़ल में बैठ गया।

"मैं यहाँ बैठी माँ को देख रही हूँ," नाद्या ने कहा। "यहाँ से वह बहुत ही युवा मालूम पड़ रही है। यह ठीक है कि मेरी माँ में कमज़ोरियाँ हैं," उसने ज़रा रुककर आगे कहा, "मगर फिर भी वह अनूठी औरत है।"

"हाँ, वह बहुत अच्छी है..." साशा ने सहमति प्रकट की। "अपनी तरह से तुम्हारी माँ बहुत अच्छी और दयालु है, लेकिन... मैं कैसे समझाऊँ? मैं आज सवेरे तड़के रसोईघर में गया था और मैंने वहाँ चार नौकरों को फ़र्श पर सोते

देखा, बिना बिस्तर, बिछाने के लिए सिर्फ़ चिथड़े ... बदबू, खटमल, तिलचट्टे... बिल्कुल बीस साल पहले की तरह, ज़रा भी बदले बिना। दादी को दोष नहीं देना चाहिए, वह बुड्ढी हैं; लेकिन तुम्हारी माँ, जिन्हें फ़्रेंच भाषा आती है और जो नाटकों में भाग लेती हैं... उन्हें तो समझना चाहिए।"

साशा की आदत थी कि बोलते समय सुनने वाले की ओर दो लम्बी, पतली-सी उँगलियाँ उठाया करता था।

"यहाँ मुझे हर चीज़ अजीब लगती है," उसने कहा। "मैं इनका आदी नहीं हूँ - कोई कभी काम नहीं करता है। तुम्हारी माँ रानी की तरह टहलने के अलावा कुछ नहीं करती हैं, दादी भी कुछ नहीं करती हैं और न तुम। और तुम्हारा वह मंगेतर, वह भी कुछ नहीं करता है।"

नाद्या पिछले साल यह सब कुछ सुन चुकी थी और उसे लगता था कि दो साल पहले भी उसने यही सब सुना था। नाद्या को पता था कि साशा सिर्फ़ इसी तरह सोच सकता है। एक वक़्त था कि जब ये बातें नाद्या को अच्छी चुहल लगती थीं, लेकिन अब किसी वजह से उसे चिढ़ लग रही थी।

"यह पुराना पचड़ा है, मैं इसे सुनते-सुनते ऊब गयी हूँ," नाद्या ने उठते हुए कहा। "क्या तुम कोई नयी बात नहीं सोच सकते?"

वह हँसा और उठ खड़ा हुआ, और दोनों घर में वापस चले गये। ख़ूबसूरत, लम्बी और छरछरी वह साशा के बग़ल में चल रही थी और बहुत सजी-धजी, बहुत हृष्ट-पुष्ट लग रही थी। उसे ख़ुद इस बात का अहसास था और साशा के लिए अफ़सोस व न जाने क्यों उसे कुछ झेंप भी लग रही थी।

"तुम बहुत बेकार बातें करते हो," उसने कहा। "देखो, तुमने अभी मेरे अन्द्रेई के बारे में कहा है, लेकिन तुम उसे ज़रा भी नहीं जानते हो।"

"मेरा अन्द्रेई... तुम्हारे अन्द्रेई की चिन्ता नहीं, मुझे तुम्हारी जवानी की फ़िक्र है।"

जब वे हॉल में पहुँचे, उस वक़्त सब खाने के लिए बैठ ही रहे थे। नाद्या की दादी - दुहरे बदन की, मोटी भौंहों और मूँछों वाली असुन्दर बूढ़ी औरत ज़ोर से बात कर रही थीं। दादी की आवाज़ और बात करने के ढंग से ज़ाहिर होता था कि घर की असली मालकिन वही हैं। बाज़ार में कई दुकानें उनकी थीं, और खम्भों और बग़ीचे वाला मकान भी उन्हीं का था। लेकिन हर रोज़ सवेरे वह रो-रोकर भगवान से प्रार्थना करतीं कि भगवान सर्वनाश से उनकी रक्षा करे। उनकी बहू, नाद्या की माँ गेहुएँ रंग की नीना इवानोव्ना कमर पर कसी पोशाक पहने, बिना कमानी का चश्मा लगाये और सब उँगलियों में हीरे की अँगूठियाँ पहने हुए थी; पादरी अन्द्रेई, पोपले और दुबले, जो हमेशा ऐसे लगते थे जैसे कोई मज़ाक़िया बात कहने जा रहे हों, और उनका लड़का अन्द्रेई अन्द्रेइच -

नाद्या का मंगेतर – तगड़ा, ख़ूबसूरत, घुँघराले बालों वाला नौजवान, जो एक अभिनेता या कलाकार ज़्यादा लगता था, ये तीनों सम्मोहन-विद्या के बारे में बातें कर रहे थे।

"तुम यहाँ एक हफ़्ते में भले-चंगे हो जाओगे," दादी ने साशा से कहा। "लेकिन तुम्हें ज़्यादा खाना चाहिए। ज़रा अपनी ओर तो देखो," उन्होंने आह भरी, "क्या शक्ल बना रखी है। आवारा पुत्र हो न..."

"कुकर्म में अपनी सम्पत्ति उड़ा दी... और कंगाल हो गया..." पादरी अन्द्रेई ने धीरे-धीरे बोलते हुए बाइबिल के शब्द कहे। उनकी आँखें हँस रही थीं।

"मैं अपने पिता को प्यार करता हूँ," अन्द्रेई अन्द्रेइच ने अपने पिता का कन्धा छूते हुए कहा।

किसी ने कुछ नहीं कहा। साशा एकाएक हँसा और उसने नेपकिन से अपने होंठ दबा लिये।

"तो आपको सम्मोहन में विश्वास है?" पादरी अन्द्रेई ने नीना इवानोव्ना से पूछा।

"मैं नहीं कह सकती कि मैं इसमें यक़ीन करती हूँ," नीना इवानोव्ना ने गम्भीर, लगभग कठोर भाव दर्शाते हुए जवाब दिया, "लेकिन मुझे यह मानना पड़ता है कि प्रकृति में बहुत कुछ अगम्य और रहस्यमय है।"

"मैं आपसे सहमत हूँ, हालाँकि मैं यह और जोड़ दूँ कि हम लोगों की धार्मिक आस्था रहस्य का क्षेत्र काफ़ी कम कर देती है।"

एक बहुत ही बड़ा और चर्बीदार मुर्ग़ मेज़ पर परोसा गया। पादरी अन्द्रेई और नीना इवानोव्ना बातों में मशग़ूल रहे। नीना इवानोव्ना की उँगलियों के हीरे चमक रहे थे, फिर आँखों में आँसू चमकने लगे, वह बहुत भावुक हो गयी थी।

"मैं आप के साथ तर्क करने का साहस तो नहीं करती हूँ," उसने कहा, "लेकिन आप सहमत होंगे कि ज़िन्दगी में बहुत-सी अनबूझ पहेलियाँ हैं।"

"एक भी नहीं, मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ।"

खाने के बाद अन्द्रेई अन्द्रेइच ने वायलिन बजाया। संगत में नीना इवानोव्ना पियानो बजा रही थी। अन्द्रेई अन्द्रेइच ने विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग से दस साल पहले डिग्री प्राप्त की थी, परन्तु न वह नौकरी करता था और न उसका कोई निश्चित धन्धा था, सिवा इसके कि कभी-कभी वह सहायतार्थ संगीत-कार्यक्रमों में वायलिन बजाता था। शहर में वह एक संगीतज्ञ के रूप में मशहूर था।

अन्द्रेई अन्द्रेइच वाद्य बजा रहा था और सब ख़ामोशी से सुन रहे थे। मेज़ पर समोवार से हौले-हौले भाप निकल रही थी और अकेला साशा चाय पी रहा था। जैसे ही बारह बजे वायलिन का एक तार टूट गया। सब हँस पड़े और विदाई

की भड़भड़ी शुरू हो गयी।

अपने मंगेतर से शुभ रात्रि कहकर नाद्या ऊपर चली गयी, जहाँ वह अपनी माँ के साथ रहती थी (नीचे के हिस्से में दादी रहती थीं)। नीचे हॉल में बत्तियाँ बुझायी जा रही थीं, लेकिन साशा बैठा चाय पीता रहा। वह हमेशा देर तक चाय पीता था, मास्को के रिवाज़ के मुताबिक़ एक के बाद एक छह-सात गिलास चाय। कपड़े उतारकर बिस्तर पर लेटने के बहुत देर बाद तक नाद्या को नौकरों के मेज़ साफ़ करने की आवाज़ और दादी की डाँट-डपट सुनायी पड़ती रही। आख़िरकार घर में ख़ामोशी छा गयी। सिर्फ़ कभी-कभी नीचे साशा के कमरे में खाँसने की गहरी आवाज़ आती थी।

2

ज़रूर दो बजे होंगे जब नाद्या जग गयी, पौ फटने लगी थी। दूर चौकीदार की लाठी की आवाज़ सुनायी पड़ रही थी। नाद्या को नींद नहीं आ रही थी, बिस्तर ज़रूरत से ज़्यादा मुलायम जान पड़ रहा था। गत कई रातों की तरह मई की इस रात को भी वह बिस्तर में बैठ गयी और विचारों में खो गयी। ये विचार पिछली रात की ही तरह एक ही जैसे और निरर्थक थे और उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। अन्द्रेई अन्द्रेइच का ख़याल आया कि किस तरह वह नाद्या से मिलने-जुलने लगा और फिर उससे शादी का प्रस्ताव रखा, और कैसे नाद्या ने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और बाद में धीरे-धीरे इस अच्छे और चतुर आदमी की क़द्र करने लगी। लेकिन जब शादी को महीना-भर रह गया था, तो न मालूम क्यों वह डर और घबराहट महसूस करने लगी थी, जैसे कि उस पर कोई अनजान बोझ पड़ने वाला हो।

"ठक-ठक, ठक-ठक..." चौकीदार की अलसायी आहट सुनायी पड़ रही थी, "ठक-ठक... ठक-ठक..."

पुरानी बड़ी खिड़की से बग़ीचा और उसके पीछे फूलों से लदी बकाइन की झाड़ियाँ, ठण्डी हवा में उनींदी और अलसायी-सी दिख रही थीं। और एक सफ़ेद घना कुहासा हौले-हौले बकाइन की झाड़ियों पर छाता जा रहा था मानो उन्हें अपने दामन में समेटने चला हो। दूर पेड़ों से उनींदे कौवों की आवाज़ सुनायी पड़ रही थी।

"हे ईश्वर, क्यों मेरा दिल इतना भारी हो रहा है?"

क्या शादी से पहले सब लड़कियाँ ऐसा ही महसूस करती हैं? कौन जाने? या यह साशा का प्रभाव है? लेकिन साशा तो बरसों से उन्हीं पुरानी बातों को बराबर दोहरा रहा है मानो रटी हुई हों। और जब भी कुछ कहता है, तो बहुत

भोला और अजीब लगता है। मगर वह साशा का विचार अपने दिमाग़ से निकाल क्यों नहीं पा रही? क्यों?

चौकीदार बहुत देर पहले ही गश्त ख़त्म कर चुका था। पेड़ों की चोटियों पर और खिड़की के नीचे चिड़ियों ने चहचहाना शुरू कर दिया था, बग़ीचे का कुहासा दूर हो गया था, हर चीज़ वसन्त की धूप से चमक रही थी, हर चीज़ मुस्कुराती हुई-सी लग रही थी। थोड़ी देर में सारा बग़ीचा सूर्य की प्यारी गरमी से सजीव हो उठा, पेड़ों की पत्तियों पर ओस हीरों की तरह चमक रही थी और पुराना उपेक्षित बग़ीचा आज के सवेरे में तरुण और उल्लासित हो उठा था।

दादी जाग चुकी थीं। साशा अपनी रूखी खाँसी खाँसने लगा था। नीचे से नौकरों के समोवार लाने और इधर-उधर कुर्सियाँ हटाये जाने की आवाज़ आ रही थी।

समय धीरे-धीरे गुज़र रहा था। नाद्या उठकर बहुत देर से बग़ीचे में टहल रही थी, मगर अभी भी सवेरा ही चल रहा था।

नीना इवानोव्ना, आँखों में आँसू भरे, हाथ में मिनरल वाटर का गिलास लिये हुए आयी। उसे स्पिरिटिज़्म और होम्योपैथी में दिलचस्पी थी, वह काफ़ी पढ़ती थी और उसे अपने मन में उठने वाली शंकाओं के बारे में बात करने का शौक़ था। और नाद्या का ख़याल था कि इन सबमें कोई रहस्यमय गूढ़ महत्त्व है। उसने अपनी माँ का चुम्बन किया और उसके बग़ल में चलने लगी।

"तुम किस बात पर रोती रही हो, माँ?" उसने पूछा।

"मैंने कल रात एक बूढ़े आदमी और उसकी बेटी के बारे में किताब पढ़ी थी। बूढ़ा किसी दफ़्तर में नौकरी करता था और उसका अफ़सर बूढ़े की लड़की से प्रेम करने लगा। मैंने किताब अभी ख़त्म नहीं की है, लेकिन एक स्थल पर मैं रुलाई न रोक सकी," नीना इवानोव्ना ने कहा और गिलास से एक घूँट भरा। "मुझे आज सवेरे याद आयी और फिर रुलाई आ गयी।"

"और मैं आजकल बहुत उदास हूँ," नाद्या ने ज़रा रुककर कहा। "मुझे नींद क्यों नहीं आती?"

"मुझे नहीं मालूम, बिटिया। जब मैं सो नहीं सकती हूँ, तो मैं अपनी आँखें कसकर बन्द कर लेती हूँ, इस तरह, और कल्पना करती हूँ कि आन्ना कारेनिना कैसे चलती थी और किस तरह बोलती थी या मैं किसी ऐतिहासिक बात की कल्पना करने की कोशिश करती हूँ, किसी पुराने ज़माने की बात की कल्पना..."

नाद्या को महसूस हुआ कि उसकी माँ उसे नहीं समझ पायी, उसे समझने में असमर्थ और अयोग्य है। इससे पहले कभी उसने यह बात महसूस नहीं की थी। इस एहसास से वह डर गयी, उसे कहीं छिपने की इच्छा हुई; और वह

अपने कमरे में चली गयी।

दो बजे सब खाना खाने बैठे। आज बुध यानी व्रत का दिन था और दादी के खाने में बिना गोश्त का शोरबा और दलिये के साथ मछली परोसी गयी।

दादी को चिढ़ाने के लिए साशा बिना गोश्त का और गोश्त का शोरबा दोनों खा रहा था। वह सारा वक़्त मज़ाक़ करता रहा। लेकिन उसके लतीफ़े लम्बे और हमेशा नैतिकता गर्भित होते थे और बिल्कुल पुरमज़ाक़ नहीं मालूम पड़ते थे; कोई हँसी की बात कहने के पहले वह अपनी दो लम्बी, हड़ीली और निर्जीव-सी उँगलियाँ उठाता और तभी यह बात याद आती कि वह बहुत बीमार है और शायद ज़्यादा दिन ज़िन्दा न रहे, और इतना दुख मन में उमड़ पड़ता कि रोना आ जाता।

भोजन के बाद दादी अपने कमरे में आराम करने चली गयीं। नीना इवानोव्ना थोड़ी देर पियानो बजाती रही और फिर वह भी उठकर कमरे के बाहर चली गयी।

"ओह, प्यारी नाद्या," साशा ने खाने के बाद अपनी रोज़मर्रा की बात छेड़ते हुए कहा, "काश तुम मेरी बात सुनतीं!"

वह एक पुराने फ़ैशन की आरामकुर्सी में धँसी, आँखें बन्द किये बैठी थी, और साशा कमरे में क़दम नाप रहा था।

"काश तुम चली जाओ और पढ़ो," उसने कहा। "केवल सुविज्ञ और सन्त व्यक्ति दिलचस्प होते हैं, केवल उन्हीं की ज़रूरत होती है। जितने ही ज़्यादा ऐसे आदमी होंगे, उतनी ही शीघ्र पृथ्वी पर स्वर्ग आयेगा। तब धीरे-धीरे तुम्हारे इस शहर में हर चीज़ उलट-पलट हो जायेगी; हर चीज़ बदल जायेगी मानो कोई जादू हो गया हो। और फिर यहाँ शानदार भव्य इमारतें, सुन्दर उद्यान, बढ़िया फ़व्वारे और बहुत ही अच्छे, असाधारण लोग होंगे... लेकिन यह मुख्य बात नहीं है। मुख्य बात यह है कि लोग भीड़ नहीं होंगे, जैसा कि इस शब्द के मानी हम समझते हैं। अपनी मौजूदा शक्ल में यह बुराई ग़ायब हो जायेगी, क्योंकि हर व्यक्ति की आस्था होगी और वह जानता होगा कि उसे जीवन में क्या करना है, और कोई भी भीड़ से समर्थन नहीं चाहेगा। प्यारी, अच्छी नाद्या, चली जाओ! दिखा दो सबको कि इस सुस्त, पापी और गतिरुद्ध ज़िन्दगी से तुम ऊब गयी हो। कम से कम तुम अपने को तो दिखा दो!"

"असम्भव, साशा, मैं शादी करने जा रही हूँ।"

"रहने दो! क्या ज़रूरत है इस शादी की?"

वे बग़ीचे में चले गये और टहलने लगे।

"कुछ भी हो, मेरी प्यारी, तुम्हें सोचना ही पड़ेगा, समझना होगा कि तुम लोगों की बेकार की ज़िन्दगी कितनी घृणास्पद, कितनी अनैतिक है," साशा

बोलता रहा। "तुम्हारी माँ, तुम्हारी दादी और तुम आलसी जीवन बिता सको, इसके लिए दूसरे कमरतोड़ काम करते हैं। तुम लोग दूसरों की ज़िन्दगी नष्ट कर रहे हो, क्या यह अच्छा है, क्या यह हेय नहीं है?"

नाद्या कहना चाहती थी, "हाँ, तुम ठीक कहते हो," बताना चाहती थी कि वह उसे समझती थी, लेकिन उसकी आँखों में आँसू भर आये, वह ख़ामोश हो गयी, लगा जैसे कि अपने में सिमट गयी हो और अपने कमरे में चली गयी।

दिन ढले अन्द्रेई अन्द्रेइच आया और सदा की भाँति बहुत देर तक वायलिन बजाता रहा। वह प्रकृति से चुप्पा था, और उसे वायलिन बजाना शायद इसीलिए प्रिय था, क्योंकि बजाते वक़्त उसे बोलना नहीं पड़ता था। दस बजने के बाद घर जाने के लिए अपना कोट पहनकर उसने नाद्या को अपनी बाँहों में भर लिया और उसके कन्धों, बाँहों और चेहरे पर गरम चुम्बनों की बौछार कर दी।

"मेरी प्यारी, मेरी प्रियतमा, मेरी सुन्दरी!" वह फुसफुसा रहा था। "मैं कितना ख़ुश हूँ! कहीं मैं ख़ुशी से पागल न हो जाऊँ!"

और नाद्या को लगा कि वह बहुत पहले ही ये सारी बातें सुन चुकी है या किसी पुराने जीर्ण-शीर्ण उपन्यास में पढ़ चुकी है।

हॉल में साशा अपनी पाँचों लम्बी उँगलियों की नोकों पर तश्तरी सँभाले हुए चाय पी रहा था। दादी अकेली ताश खेल रही थीं। नीना इवानोव्ना पढ़ रही थी। दीपक की रोशनी थिरक रही थी और हर चीज़ स्थिर और सुरक्षित मालूम हो रही थी। नाद्या ने शुभ रात्रि कहा और अपने कमरे में चली गयी। बिस्तर पर लेटते ही वह सो गयी लेकिन पिछली रातों की तरह ऊषा की पहली किरण के साथ ही वह जाग गयी। वह सो नहीं सकी, उसके दिल में बेचैनी और एक बोझ-सा था। वह उठकर बैठ गयी और घुटनों पर सिर रखकर सोचने लगी – अपने मंगेतर के बारे में, अपनी शादी के बारे में... किसी कारण से उसे याद आया कि माँ अपने स्वर्गीय पति को प्यार नहीं करती थी और अब उसके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं था और वह पूरी तरह से दादी यानी अपनी सास पर निर्भर थी। और नाद्या बहुत सोचने पर भी यह नहीं समझ पा रही थी कि क्यों वह अब तक अपनी माँ को अनूठी समझती आयी थी, और क्यों उसने यह नहीं देखा था कि वह एक मामूली दुखी औरत है।

नीचे साशा भी जाग चुका था, उसकी खाँसी सुनायी दे रही थी। वह एक अजीब भोला व्यक्ति है, नाद्या ने सोचा, और उसके सारे सपनों में कुछ बेतुकापन है – उन शानदार और बढ़िया उद्यानों और फ़व्वारों के सपनों में। लेकिन उसके भोलेपन में, बेतुकेपन में भी इतनी सुन्दरता है कि ज्यों ही नाद्या ने यह सोचा कि शायद उसे सचमुच जाकर पढ़ना चाहिए, त्यों ही उसके दिल में, उसके अन्तरतम में ताज़गी देने वाली ठण्डक भर गयी और वह आह्लादविभोर

हो उठी।

“पर नहीं, इसके बारे में न सोचना ही अच्छा है,” वह फुसफुसायी, “इसके बारे में सोचना ही नहीं चाहिए...”

“ठक-ठक, ठक-ठक...” दूर से चौकीदार की आवाज़ आ रही थी, “ठक-ठक, ठक-ठक...”

3

जून के मध्य में साशा एकाएक ऊब गया और मास्को वापस जाने की बातें करने लगा।

“मैं इस शहर में नहीं रह सकता,” वह रुखाई से कहता। “न नल है और न परनाले का इन्तज़ाम! मुझे खाना खाते भी घिन होती है – रसोई इतनी गन्दी है...”

“थोड़ा और इन्तज़ार करो, आवारा पुत्र!” दादी न जाने क्यों बुदबुदाते हुए कहतीं, “सातवीं तारीख़ को शादी है!”

“मैं नहीं रुकना चाहता।”

“तुम तो यहाँ सितम्बर तक रहना चाहते थे।”

“और अब मैं नहीं चाहता। मुझे काम करना है!”

गर्मियाँ ठण्डी और भीगी निकलीं। पेड़ हमेशा टपटपाते रहते। बग़ीचा उदास और अप्रिय मालूम होता। सचमुच काम करने को जी चाहता था। ऊपर-नीचे हर कमरे से अनजानी औरतों की आवाज़ें सुनायी पड़तीं। दादी के कमरे में सिलाई की मशीन खटखट करती। यह सब दहेज़ की तैयारी के शोर-ग़ुल का हिस्सा था। नाद्या के लिए जाड़े के ओवरकोट ही छह बन रहे थे और उनमें सबसे सस्ता – दादी के शब्दों में – तीन सौ रूबल का था! इस शोर-शराबे से साशा को चिढ़ हो रही थी। वह अपने कमरे में मुँह फुलाये बैठा रहता। लेकिन फिर उसे ठहरने के लिए राजी कर लिया गया और उसने पहली जुलाई से पहले न जाने का वादा कर लिया।

वक़्त जल्दी गुज़र गया। सेण्ट प्योत्र के दिन खाना खाने के बाद अन्द्रेई अन्द्रेइच नाद्या के साथ मोस्कोव्स्काया सड़क पर गया – एक बार फिर वह मकान देखने, जो नवदम्पति के लिए किराये पर लिया गया था और कब से तैयार कर दिया गया था। यह मकान दुमंज़िला था, लेकिन अभी ऊपर का तल्ला ही सजाया गया था। चमकते हुए फ़र्श वाले हॉल में मुड़ी हुई लकड़ी की कुर्सियाँ, एक बड़ा पियानो और स्वरलिपि रखने के लिए स्टैण्ड था। ताज़े रंग की बू आ रही थी। दीवाल पर सुनहरे चौखटे में मढ़ा हुआ एक बड़ा तैल-चित्र

टँगा हुआ था – नग्न स्त्री और उसके पास रखा टूटे हत्थे वाला बैंगनी रंग का फूलदान।

"बहुत सुन्दर तस्वीर है!" अन्द्रेई अन्द्रेइच ने सम्मान भरी उसास के साथ कहा, "यह शिश्माचेव्स्की की कृति है।"

आगे बैठक थी, जिसमें एक गोल मेज़, एक सोफ़ा और चमकीले नीले रंग के कपड़े में मढ़ी हुई आरामकुर्सियाँ थीं। सोफ़े के ऊपर पादरी अन्द्रेई का एक बड़ा चित्र था। चित्र में पादरी साहब अपने सब तमग़े और अपना ख़ास टोप लगाये हुए थे। फिर वे लोग खाने के कमरे में गये और वहाँ से सोने के कमरे में। यहाँ मद्धिम रोशनी में अग़ल-बग़ल दो बिस्तर लगे हुए थे, और ऐसा लगता था कि इस कमरे को सजाने वालों ने यह समझ लिया था कि यहाँ जीवन हमेशा सुखी रहेगा, सुख के अलावा यहाँ और कुछ हो ही नहीं सकता। अन्द्रेई अन्द्रेइच नाद्या को कमरे दिखाता रहा तथा सारा वक़्त नाद्या की कमर में हाथ डाले रहा। वह अपने को कमज़ोर, दोषी समझ रही थी, उसे उन तमाम कमरों, बिस्तरों तथा कुर्सियों से घृणा हो रही थी। नंगी औरत से तो उसे मतली आ रही थी। अब वह साफ़ तौर पर समझ रही थी कि अन्द्रेई अन्द्रेइच के लिए उसके मन में प्यार नहीं रहा है, शायद वह कभी उसे प्यार नहीं करती थी। हालाँकि वह रात-दिन इसके बारे में सोचती रहती थी, पर वह ठीक समझ नहीं पा रही थी और समझ भी नहीं सकती थी कि यह कैसे कहे, किससे कहे और कहे ही क्यों। वह उसकी कमर में हाथ डाले था, उससे इतनी दयालुता से, इतनी नम्रता से बातें कर रहा था, अपने इस घर में घूमता हुआ इतना ख़ुश था। और नाद्या को सिर्फ़ ओछापन, जाहिल, भौंड़ा, असह्य ओछापन दिखलायी पड़ रहा था और अपनी कमर में अन्द्रेई अन्द्रेइच का हाथ उसको लोहे के घेरे की तरह ठण्डा और सख़्त मालूम हो रहा था। किसी भी क्षण वह भाग जाने को, सिसकियाँ भरने को, खिड़की से बाहर कूद पड़ने को तैयार थी। अन्द्रेई अन्द्रेइच उसको ग़ुसलख़ाने में ले गया, दीवाल में जड़े हुए एक नल को दबाया और पानी बह निकला।

"देखा?" उसने कहा और हँस पड़ा। "मैंने एक सौ बाल्टियों की टँकी बनवायी है ताकि हमारे ग़ुसलख़ाने में पानी आता रहे।"

वे थोड़ी देर अहाते में टहलते रहे और फिर सड़क पर निकल आये और किराये की घोड़ागाड़ी में बैठ गये। सड़क पर धूल के बादल उड़ने लगे और लगा कि पानी बरसने वाला है।

"तुम्हें सर्दी तो नहीं लग रही?" अन्द्रेई अन्द्रेइच ने धूल से आँखें बचाते हुए पूछा।

उसने जवाब नहीं दिया।

"याद है कल साशा मेरे कुछ काम न करने पर भर्त्सना कर रहा था?" उसने थोड़ी देर रुककर कहा। "हाँ, वह ठीक था! एकदम ठीक था! मैं कुछ नहीं करता और न कुछ कर सकता हूँ। ऐसा क्यों है, प्रिये, क्या कारण है कि टोपी में बैज लगाकर दफ़्तर जाने के विचार-मात्र से मुझे मतली आने लगती है? क्या कारण है कि किसी वकील को, लैटिन के शिक्षक या परिषद के सदस्य को देखकर ही मेरा दिल ख़राब हो जाता है। आह रूस-माता! रूस-माता! तुम अपने वक्ष पर कितने आलसियों और बेकारों को वहन करती हो! मेरी तरह के कितने लोगों को, कष्टभोगी रूस-माता!"

और अपनी निष्क्रियता को वह एक सर्वव्यापी परिघटना बता रहा था, उसमें समय का रुख़ देख रहा था।

"जब हमारी शादी हो जायेगी," वह कह रहा था, "हम देहात में चले जायेंगे, प्रिये, वहाँ हम काम करेंगे। हम वहाँ बग़ीचे और झरने वाला एक छोटा-सा ज़मीन का टुकड़ा ख़रीद लेंगे और मेहनत करेंगे, जीवन का प्रेक्षण करेंगे... आह, कितना सुन्दर होगा यह!"

उसने अपना टोप उतार लिया। उसके बाल हवा में लहराने लगे। नाद्या उसकी बातें सुनते हुए सोच रही थी, "हे ईश्वर! मैं घर जाना चाहती हूँ! हे ईश्वर!" घर के पास ही घोड़ागाड़ी पैदल जा रहे पादरी अन्द्रेई से आगे निकली।

"अरे देखो, वह पिताजी जा रहे हैं!" अन्द्रेई अन्द्रेइच ने ख़ुशी से कहा और अपना टोप हिलाया। "मैं अपने पिता को प्यार करता हूँ, वाक़ई प्यार करता हूँ," उसने घोड़ागाड़ी का किराया देते हुए कहा।

अप्रसन्नता और अस्वस्थता अनुभव करती हुई नाद्या घर में गयी। वह बस यही सोच रही थी कि सारी शाम मेहमान रहेंगे और उसे उनकी ख़ातिर-तवाज़ा करनी होगी, मुस्कुराना होगा, वायलिन सुननी पड़ेगी, हर तरह की बेवक़ूफ़ी भरी बातें सुननी पड़ेंगी और सिर्फ़ शादी की बातें करनी पड़ेंगी। दादी फूला-फूला रेशमी पोशाक पहने शान से अकड़ी समोवार के पास बैठी हुई थीं, वह बहुत घमण्डी मालूम हो रही थीं, जैसा कि वह हमेशा मेहमानों के आने पर लगती थीं। पादरी अन्द्रेई चेहरे पर चालाकी भरी मुस्कुराहट लिये कमरे में आये।

"मुझे आप को स्वस्थ देखकर प्रसन्नता और पवित्र सन्तोष प्राप्त हुआ है," उन्होंने दादी से कहा। यह समझना मुश्किल था कि उन्होंने गम्भीरता से ऐसे कहा है या मज़ाक़ में।

4

खिड़कियों के शीशों और छत से हवा टकरा रही थी। सीटियों की-सी

आवाज़ सुनायी पड़ रही थी और चिमनी में घरभुतना अपना उदास गीत गुनगुना रहा था। रात का एक बजने वाला था। घर का हर आदमी बिस्तर पर लेट चुका था, पर कोई भी सोया न था और नाद्या को लग रहा था कि नीचे से वायलिन बजाये जाने की आवाज़ आ रही है। बाहर से ज़ोर की खड़खड़ सुनायी दी। ज़रूर ही कहीं झिलमिली क़ब्ज़े से उखड़ गयी थी। एक मिनट बाद सिर्फ़ शमीज़ पहने नीना इवानोव्ना मोमबत्ती लिये कमरे में आयी।

उसने पूछा, "यह आवाज़ कैसी थी, नाद्या?"

नाद्या की माँ, बालों की चोटी बाँधे, झेंप भरी मुस्कुराहट लिये इस तूफ़ानी रात में अधिक बूढ़ी, मामूली सूरत और छोटे क़द वाली मालूम हो रही थी। नाद्या को याद आया कि कैसे वह अभी हाल ही तक अपनी माँ को अनूठी महिला समझती थी और उसकी बातें सुनने में गर्व महसूस करती थी। और अब किसी भी तरह उसे याद नहीं आ रहा था कि वे शब्द थे क्या – उसे जो शब्द याद आ रहे थे, वे मामूली और अनावश्यक प्रतीत होते थे।

ऐसा लगता था कि चिमनी के भीतर भारी आवाज़ों में गाया जा रहा है, लगता है कि "हे मेरे परमात्मा!" शब्द भी सुनायी पड़ रहे थे। नाद्या बिस्तर में उठकर बैठ गयी और उसने अचानक सिसकियाँ भरते हुए सिर थाम लिया।

"माँ, माँ," वह चिल्लायी, "मेरी प्यारी माँ! काश तुम जानतीं कि मेरे ऊपर क्या गुज़र रही है! मैं तुमसे अनुरोध करती हूँ, प्रार्थना करती हूँ, मुझे चली जाने दो!"

"कहाँ?" भौचक्की होकर नीना इवानोव्ना ने पूछा और बिस्तर के किनारे बैठ गयी। "कहाँ जाना चाहती हो?"

नाद्या देर तक रोती-बिसूरती रही, एक भी शब्द बोलने में वह असमर्थ थी।

"मुझे इस शहर से चली जाने दो!" आख़िरकार उसने कहा। "शादी न होनी चाहिए और न होगी। समझो भी न! मैं उस आदमी से प्यार नहीं करती हूँ... मैं उसके बारे में बात करना भी सहन नहीं कर सकती हूँ।"

"नहीं, मेरी बच्ची, नहीं," नीना इवानोव्ना ने जल्दी से कहा, वह बहुत डर गयी थी। "अपने को शान्त करो। तुम्हारा मिज़ाज ठीक नहीं है। यह गुज़र जायेगा। ऐसा होता भी है। शायद तुम अन्द्रेई से झगड़ आयी हो, लेकिन प्रेमियों के झगड़े का अन्त चुम्बनों में होता है।"

"जाओ, माँ, जाओ," नाद्या रो पड़ी।

"हाँ," नीना इवानोव्ना ने थोड़ा रुककर कहा। "कल तक तुम एक छोटी बच्ची थी और अब तुम दुल्हन हो। प्रकृति सदैव परिवर्तनशील है। इसके पहले कि तुम समझ सको तुम स्वयं माँ बन जाओगी, बूढ़ी हो जाओगी और मेरी तरह

तुम्हारी भी ज़िद्दी बेटी होगी।"

"माँ, अच्छी माँ, तुम तो समझदार हो, तुम दुखी हो," नाद्या ने कहा। "तुम बहुत दुखी हो; तुम ऐसी घिसी-पिटी बातें क्यों करती हो? क्यों, ईश्वर के लिए?"

नीना इवानोव्ना ने बोलने की कोशिश की, लेकिन एक शब्द भी नहीं बोल सकी, केवल सिसकियाँ भरती रही और अपने कमरे में लौट गयी। एक बार फिर चिमनी से भारी आवाज़ों का रुदन सुनायी दिया और एकाएक नाद्या भयभीत हो गयी। वह बिस्तर से कूदकर अपनी माँ के कमरे में भाग गयी। नीना इवानोव्ना की आँखें रोने से सूज गयी थीं, वह नीले रंग का कम्बल ओढ़े हुए एक किताब हाथ में लिये लेटी हुई थी।

"माँ, मेरी बात सुनो!" नाद्या ने कहा, "सोचो, मुझे समझने की कोशिश करो, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ। सिर्फ़ सोचो कि हमारा जीवन कितना ओछा और अपमानजनक है। मेरी आँखें खुल गयी हैं। मैं अब सब समझ रही हूँ। और तुम्हारा अन्द्रेई अन्द्रेइच क्या है? वह बिल्कुल भी अक्लमन्द नहीं है, माँ! हे ईश्वर, ज़रा सोचो, माँ, वह बेवक़ूफ़ है!"

नीना इवानोव्ना एक झटके से उठकर बैठ गयी।

"तुम और तुम्हारी दादी मुझे सताती रहती हो!" उसने हिचकी भरते हुए कहा। "मैं जीना चाहती हूँ, जीना!" उसने दोहराया और दो-एक बार छाती पर मुक्के मारे। "मुझे आज़ाद कर दो! मैं अभी भी जवान हूँ, मैं जीना चाहती हूँ। तुमने मुझे बुढ़िया बना दिया है!"

वह फूट-फूटकर रोती हुई कम्बल के नीचे सिकुड़कर लेट गयी। वह छोटी-सी, बेवक़ूफ़ और दयनीय लग रही थी। नाद्या ने अपने कमरे में जाकर कपड़े पहन लिये और फिर सुबह के इन्तज़ार में खिड़की के पास बैठ गयी। सारी रात वह बैठी सोचती रही और कोई सारी रात झिलमिली खटखटाता रहा और सीटी बजाता रहा।

दूसरे दिन सवेरे दादी ने शिकायत की कि हवा से सारे सेब गिर गये हैं और आलूबुख़ारे का एक पुराना पेड़ टूट गया है। सुबह उदास, धुँधली थी। ऐसा दिन, जब कि सुबह से लैम्प जलाने की तबीयत होने लगती है। हर आदमी ठण्ड की शिकायत कर रहा था, खिड़कियों के शीशों पर पानी की बूँदें टप-टप कर रही थीं। नाश्ते के बाद नाद्या साशा के कमरे में गयी और बिना बोले कोने में रखी हुई आरामकुर्सी के सामने घुटनों के बल गिर पड़ी और अपने चेहरे को हाथों से ढाँप लिया।

"क्या हुआ?" साशा ने पूछा।

"मैं इस तरह नहीं रह सकती," उसने कहा। "मैं नहीं जानती कि मैं यहाँ

पहले किस तरह रहती थी, मैं बिल्कुल नहीं समझ सकती। मैं अपने मंगेतर से घृणा करती हूँ, अपने आप से घृणा करती हूँ और मैं इस काहिल और खोखली ज़िन्दगी से घृणा करती हूँ..."

"हाँ, हाँ," साशा ने कहा, वह अभी तक समझा नहीं था कि बात क्या है। "कोई नहीं... यह ठीक है... यह अच्छा है।"

"यह ज़िन्दगी मेरे लिए घृणित है," नाद्या ने आगे कहा, "मैं एक दिन भी और यहाँ रहना बरदाश्त नहीं कर सकती हूँ। मैं कल चली जाऊँगी। ईश्वर के लिए, मुझे अपने साथ ले चलो!"

साशा आश्चर्य में एक क्षण उसकी ओर देखता रहा। आख़िरकार बात उसकी समझ में आ गयी और वह एक बच्चे की तरह ख़ुश हो गया, अपनी बाँहें हिलाने और जूतों से ताल देने लगा जैसे आनन्द के मारे नाच रहा हो।

"वाह! वाह!" उसने अपने हाथ मलते हुए कहा, "हे भगवान, कितनी अच्छी बात है।"

वह उसकी तरफ़ निर्निमेष आँखों से, उत्साह से देखती रही, जैसे मुग्ध हो गयी हो और प्रतीक्षा में थी कि वह फ़ौरन ही कोई ख़ास और असाधारण महत्त्व की बात कहेगा। साशा ने अभी तक उससे कुछ नहीं कहा था, लेकिन उसे अनुभव हो रहा था कि कुछ नवीन और विस्तृत, कोई अनोखी चीज़ उसके सामने आ रही है, जो वह पहले नहीं जानती थी, और वह साशा को आशा से देखती रही। वह हर चीज़ के लिए तैयार थी, मृत्यु के लिए भी।

"मैं कल जा रहा हूँ," कुछ देर सोचकर उसने कहा, "तुम मुझे छोड़ने के लिए स्टेशन तक आओगी... मैं तुम्हारा सामान अपने सन्दूक़ में रख लूँगा और तुम्हारे लिए टिकट ख़रीद लूँगा और जब तीसरी घण्टी बजे, तो तुम गाड़ी में चढ़ जाना और हम चले जायेंगे। मास्को तक मेरे साथ चलो और वहाँ से पीटर्सबर्ग ख़ुद अकेली जाना। क्या तुम्हारे पास पासपोर्ट है?"

"हाँ।"

"तुम इसके लिए कभी भी नहीं पछताओगी, तुम्हें कभी अफ़सोस नहीं होगा, क़सम से," साशा ने उत्साह से कहा। "तुम चली जाओगी और अध्ययन करोगी, और बाद में अपने आप रास्ता निकल आयेगा। तुम अपनी ज़िन्दगी को उलट-पलट दोगी, हर चीज़ बदल जायेगी। सबसे बड़ी बात तो ज़िन्दगी में फेर लाना है, बाक़ी सब बेकार है। अच्छा तो हम लोग कल जा रहे हैं?" – "हाँ, हाँ! भगवान के वास्ते, हाँ!"

नाद्या का विचार था कि वह उद्वेलित हो गयी है और उसका मन कभी इतना बोझिल नहीं था, उसे पूरा यक़ीन था कि जाने तक उसका मन पीड़ित रहेगा, दुखद विचार उसके दिमाग़ पर छा जायेंगे। लेकिन वह ऊपर अपने कमरे

में पहुँचकर बिस्तर पर लेटी ही थी, कि गहरी नींद सो गयी और आँसू भरे चेहरे और होंठों पर मुस्कुराहट लिये शाम तक सोती रही।

5

घोड़ागाड़ी मँगायी जा चुकी थी। नाद्या कोट पहने और टोप लगाये आख़िरी मरतबा अपनी माँ और उन सब चीज़ों को, जो अभी तक उसकी थीं, देखने ऊपर गयी। वह अपने कमरे में थोड़ी देर बिस्तर के पास खड़ी रही, बिस्तर अभी तक गरम था, चारों ओर देखा और फिर चुपचाप अपनी माँ के कमरे में गयी। नीना इवानोव्ना सो रही थी और उसके कमरे में सन्नाटा था। माँ के बाल ठीक करने और उसे चूमने के बाद एक-दो मिनट तक खड़ी रही... तब धीरे-धीरे नीचे उतर गयी।

बारिश की झड़ी लगी हुई थी। पानी से भीगी घोड़ागाड़ी ओसारे के सामने खड़ी थी। गाड़ी की छतरी उठी हुई थी।

"तुम्हारे लिए वहाँ जगह नहीं है, नाद्या," नौकर गाड़ी में सामान रखने लगे तो दादी ने कहा। "क्या ज़रूरत पड़ी है तुम्हें ऐसे ख़राब मौसम में उसे छोड़ने जाने की। अच्छा हो घर पर ही रहो। ज़रा बारिश को तो देखो!"

नाद्या ने कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन कह न सकी। साशा ने उसे गाड़ी में बिठाया और कम्बल से उसके पैर ढँक दिये। और ख़ुद भी उसकी बग़ल में बैठ गया।

"विदा, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे!" दादी ओसारे से चिल्लायीं। "मास्को पहुँचकर चिट्ठी लिखने का ख़याल रखना, साशा!"

"अच्छी बात है, विदा दादी!"

"स्वर्ग की देवी तुम्हारी रक्षा करे!"

"क्या मौसम है!" साशा ने कहा।

नाद्या ने अब रोना शुरू किया। उसे अब जाकर ज्ञान हुआ कि वह निश्चय ही चली जायेगी। अभी तक उसको इसका वास्तव में विश्वास नहीं हो रहा था, अपनी माँ के पास खड़ी थी, तब भी नहीं, दादी से विदा लेते समय भी नहीं। विदा, मेरे शहर! तमाम बातें जल्दी-जल्दी उसके दिमाग़ में घूम गयीं – अन्द्रेई, उसके पिता, नया मकान और फूलदान वाली नंगी औरत। लेकिन अब उसे इन बातों से डर नहीं लगा और न उसे मन पर बोझा ही मालूम हुआ। ये छोटी और क्षुद्र बातें हो गयी थीं। यह सब अतीत में दूर ही दूर खोता जा रहा था और जब वे रेल में सवार हुए और गाड़ी चल दी, तो उसका सम्पूर्ण अतीत – इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण – सिमट, सिकुड़कर ज़रा-सा रह गया; और एक शानदार

भविष्य, जिसकी अभी तक केवल रेखा ही दिखायी देती थी, उसके सामने उभरता जा रहा था। गाड़ी की खिड़कियों पर पानी की बूँदें टप-टप कर रही थीं। हरे-भरे खेतों, तेज़ी से गुज़रने वाले तार के खम्भों तथा तारों पर बैठी चिड़ियों के सिवा और कुछ नहीं दिखायी पड़ रहा था, और एकाएक वह आनन्दविभोर हो उठी – उसे याद आया कि वह आज़ाद होने और पढ़ने के लिए जा रही है, जैसे कभी पुराने ज़माने के लोग भागकर कज़्ज़ाकों में मिल जाते थे। वह हँस रही थी, रो रही थी और प्रार्थना कर रही थी।

"सब कुछ ठीक है!" साशा मुस्कुराते हुए कह रहा था, "सब कुछ!"

6

पतझड़ समाप्त हुआ और उसके बाद जाड़ा भी। नाद्या को अब घर की याद बहुत सताती और वह हर रोज़ अपनी दादी और माँ के बारे में सोचती। उसे साशा का भी ख़याल आता। घर से सौहार्दपूर्ण, शान्त पत्र आते, जिससे लगता था कि सारी बातें क्षमा कर दी गयी हैं और भुलाई जा चुकी हैं। मई की परीक्षाओं के बाद वह स्वस्थ और सानन्द घर को रवाना हो गयी। साशा से मिलने के लिए वह मास्को में रुकी। वह बिल्कुल वैसा ही था जैसा कि साल-भर पहले – दाढ़ी, अस्तव्यस्त बाल, वही लम्बा कोट और किरमिच की पतलून; उसकी आँखें हमेशा की भाँति बड़ी और सुन्दर थीं। लेकिन वह बीमार और सताया हुआ लग रहा था। वह अधिक बूढ़ा और दुबला दिखायी दे रहा था और लगातार खाँसता था। नाद्या को वह नीरस और तनिक ग्रामीण लग रहा था।

"अरे, यह तो नाद्या है!" ख़ुशी से हँसते हुए वह चिल्लाया। "मेरी प्यारी, मेरी लाड़ली!"

वे दोनों साथ-साथ तम्बाकू के धुएँ और रंग व स्याही की दमघोट बदबू वाले लिथो-छापेख़ाने में कुछ देर बैठे; फिर साशा के कमरे में चले गये, वहाँ तम्बाकू की बू भरी हुई थी, कूड़ा-करकट फैला हुआ था और चारों तरफ़ गन्दगी थी। मेज़ पर ठण्डे समोवार के पास एक टूटी प्लेट रखी हुई थी, जिसमें भूरा-सा एक कागज़ का टुकड़ा था और मेज़ व फ़र्श मरी हुई मक्खियों से भरे हुए थे। यहाँ की हर चीज़ बतला रही थी कि साशा अपनी निजी ज़िन्दगी का ज़रा भी ख़याल नहीं करता, अस्तव्यस्त रहता है और उसे आरामदेह जीवन के प्रति उपेक्षा है। और यदि कोई उससे उसके व्यक्तिगत सुख और निजी जीवन के बारे में पूछे, उसके प्रति प्रेम की बात करे, तो उसकी समझ ही में कुछ नहीं आयेगा और वह सिर्फ़ हँस देगा।

"हाँ, सब ठीक ही रहा," नाद्या ने जल्दी से कहा। "माँ मुझसे मिलने के लिए पतझड़ में पीटर्सबर्ग आयी थीं, उनका कहना था कि दादी नाराज़ नहीं हैं,

सिर्फ़ मेरे कमरे में आती रहती हैं, दीवालों पर सलीब का चिह्न बनाती रहती हैं।"

साशा ख़ुशदिल मालूम हो रहा था, लेकिन खाँस रहा था और फटी आवाज़ में बातें कर रहा था और नाद्या उसकी ओर ताकती रही। वह सोच रही थी कि क्या वह वास्तव में बहुत बीमार है या यह उसकी कल्पना है।

"साशा, मेरे प्यारे!" उसने कहा, "तुम तो सचमुच बीमार हो।"

"मैं ठीक हूँ, ज़रा अस्वस्थ हूँ पर कोई गम्भीर बात नहीं..."

"ईश्वर के लिए," नाद्या ने बेचैन आवाज़ में कहा, "तुम डॉक्टर को दिखाने के लिए क्यों नहीं जाते? तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान क्यों नहीं रखते? मेरे प्यारे, अच्छे साशा!" उसने कहा और उसकी आँखों में आँसू भर आये और किसी वजह से अन्द्रेई अन्द्रेइच, फूलदान वाली नंगी औरत और उसके सारे अतीत का चित्र, जो बचपन की तरह बहुत धुँधला और दूर प्रतीत होता था, उसके दिमाग़ में घूम गया। वह रो उठी क्योंकि अब उसे साशा साल-भर पहले की तरह मौलिक, चतुर और दिलचस्प नहीं मालूम हुआ। "साशा, प्रिय, तुम बहुत बीमार हो, तुम्हें पीला और क्षीण न देखने के लिए मैं क्या कुछ करने को तैयार नहीं। मैं तुम्हारी बहुत उऋणी हूँ। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि तुमने मेरे लिए कितना काम किया है! वास्तव में, साशा, तुम मेरे जीवन में सबसे घनिष्ठ और प्रिय व्यक्ति हो।"

वे बैठे हुए बातें करते रहे। और अब पीटर्सबर्ग में एक जाड़ा व्यतीत करने के बाद नाद्या को लग रहा था कि साशा की बातचीत में, उसकी मुस्कुराहट और उसकी सम्पूर्ण आकृति में कोई ऐसी चीज़ थी, जो पुराने फ़ैशन की, पिछड़ी-गुज़री हुई है, जो शायद क़ब्र में पहुँच चुकी है।

"मैं परसों वोल्गा पर सैर करने के लिए जा रहा हूँ," साशा ने कहा, "और फिर कुमीस* पीने जाऊँगा। मेरा एक दोस्त और उसकी बीवी मेरे साथ जा रहे हैं। दोस्त की बीवी अद्भुत औरत है। मैं उसे समझाने की कोशिश करता रहता हूँ कि वह पढ़े। मैं चाहता हूँ कि वह अपनी ज़िन्दगी को उलट-पलट दे।"

कुछ देर बातें करके वे स्टेशन चले गये। साशा ने उसे चाय पिलायी और उसके लिए कुछ सेब ख़रीदे और जब गाड़ी चली और वह मुस्कुराता हुआ अपना रूमाल हिला रहा था, तो नाद्या उसके पैर देखकर ही समझ गयी कि वह कितना बीमार है और उसके ज़्यादा दिन ज़िन्दा रहने की आशा नहीं है।

नाद्या अपने शहर में दोपहर को पहुँची। जब वह स्टेशन से अपने घर जा रही थी, तो उसे सड़कें अस्वाभाविक रूप से चौड़ी लग रही थीं और मकान

* घोड़ी के दूध का पेय, जो सेहत के लिए अच्छा होता है। – सं.

छोटे और ज़मीन से सटे-सटे। उसे कोई भी आदमी न दिखायी पड़ा सिवा पियानोसाज़ जर्मन के, जो अपना मटमैला ओवरकोट पहने हुए था। मकान धूल से सने हुए मालूम पड़ रहे थे। दादी ने, जो अब वाक़ई बूढ़ी हो गयी थीं और पहले ही की भाँति मोटी और असुन्दर थीं, नाद्या की कमर में बाँहें डाल दीं और नाद्या के कन्धे पर सिर रखकर बहुत देर तक रोती रहीं, गोया वह अपने को अलग न कर पा रही हों। नीना इवानोव्ना की भी उम्र बहुत ज़्यादा लगने लगी थी और उसका चेहरा उतरा हुआ था, मगर वह अब भी कमर पर कसी पोशाक पहने थी और उसकी उँगलियों पर हीरे चमक रहे थे।

"मेरी प्यारी!" उसने ऊपर से नीचे तक काँपते हुए कहा, "मेरी दुलारी!"

फिर वे बैठ गयीं और चुपचाप रोती रहीं। यह सहज ही देखा जा सकता था कि दादी और माँ दोनों समझती थीं कि अतीत हमेशा के लिए खो गया है। उनका सामाजिक रुतबा, पहले का मान-सम्मान, घर में मेहमान बुलाने का हक़ ख़त्म हो चुका है। वे उन आदमियों की तरह महसूस कर रही थीं, जिनकी आरामदेह और बिना परेशानी की ज़िन्दगी में किसी रात पुलिस वाले आयें और तलाशी लें और यह पता लगे कि घर के मालिक ने ग़बन या जालसाज़ी की है, और फिर हमेशा के लिए आरामदेह और बिना परेशानी की ज़िन्दगी ख़त्म!

नाद्या ऊपर गयी और देखा वही पुराना बिस्तर, सफ़ेद, मामूली पर्दों वाली वही खिड़कियाँ, खिड़की से बग़ीचे का वही दृश्य – धूप से नहाया हुआ, ख़ुश, ज़िन्दा। उसने अपनी मेज़ छुई, बैठ गयी और कुछ सोचती रही। उसने अच्छा खाना खाया और फिर स्वादिष्ट, गाढ़ी मीठी क्रीम वाली चाय पी। मगर उसे कुछ कमी-सी महसूस हो रही थी। कमरों में एक खोखलापन नज़र आ रहा था, छत बहुत नीची लगी। रात में, जब वह सोने गयी और उसने कम्बल ओढ़ा, तो उसे गरम और बहुत नर्म बिस्तर में लेटना न जाने क्यों उपहासास्पद लगा।

नीना इवानोव्ना एक मिनट के लिए आयी और अपराधी की तरह सहमी-सी चारों तरफ़ देखती हुई बैठ गयी।

"अच्छा, नाद्या," उसने कहा, "क्या तुम ख़ुश हो? वाक़ई ख़ुश हो?"

"ख़ुश हूँ, माँ।"

नीना इवानोव्ना ने उठकर नाद्या और खिड़कियों के ऊपर क्रास का चिह्न बनाया।

"और मैं जैसा कि तुम देख रही हो, धार्मिक हो गयी हूँ," उसने कहा। "मैं दर्शन का अध्ययन कर रही हूँ और सोचती रहती हूँ, सोचती रहती हूँ... और बहुत-सी चीज़ें अब मेरे लिए दिन की रोशनी की तरह साफ़ हो गयी हैं। मुझे लगता है कि सबसे महत्त्व की बात यह है कि जीवन मानो एक प्रिज़्म से गुज़रे!"

“माँ, दादी कैसी हैं?”

“ठीक ही लगती हैं। जब तुम साशा के साथ चली गयी थीं और दादी ने तुम्हारा तार पढ़ा, तो वह ज़मीन पर गिर पड़ीं। उसके बाद वह तीन दिन तक बिस्तर पर पड़ी रहीं और फिर वह रोने और प्रार्थना करने लगीं। लेकिन अब वह ठीक हैं।”

नीना इवानोव्ना उठकर कमरे में चहलक़दमी करने लगी।

“ठक-ठक...” चौकीदार की आहट आयी, “ठक-ठक, ठक-ठक...”

“सबसे महत्त्व की बात यह है कि जीवन मानो एक प्रिज़्म से गुज़रे,” उसने कहा, “दूसरे शब्दों में अपनी चेतना में जीवन को सरल तत्वों में विभाजित कर देना चाहिए, सात मौलिक रंगों की तरह और हर तत्व का अलग-अलग अध्ययन करना चाहिए।”

फिर नीना इवानोव्ना ने और क्या कहा और वह कब चली गयी नाद्या को नहीं मालूम था, क्योंकि वह फ़ौरन ही सो गयी थी।

मई गुज़री और जून आया। नाद्या घर की आदी हो गयी। दादी समोवार के पास बैठी हुई चाय पिलातीं और ठण्डी साँसें भरती रहतीं। नीना इवानोव्ना शाम को अपने दर्शन के बारे में बातें करती। वह अब भी एक आश्रित की तरह घर में रहती और थोड़े से कोपेक की भी ज़रूरत पड़ने पर दादी के सामने हाथ पसारती। घर में मक्खियाँ भरी थीं और छत दिनोदिन नीचे आती प्रतीत हो रही थी। इस डर से कि कहीं पादरी अन्द्रेई और अन्द्रेई अन्द्रेइच से मुलाक़ात न हो जाये दादी और नीना इवानोव्ना कभी बाहर नहीं निकलती थीं। नाद्या बग़ीचे और गलियों में टहलती और मकानों और गन्दली चहारदीवारों को देखती और उसे लगता कि शहर कब का बूढ़ा हो गया है, इसके दिन बीत चुके हैं और अब यह अपने अन्त की प्रतीक्षा में है या फिर ताज़गी और जवानी के आरम्भ की प्रतीक्षा में। काश यह नया और उज्ज्वल जीवन जल्दी आ जाये, जब हम सिर ऊँचा कर क़िस्मत की आँखों में आँखें डालकर देख सकें यह जानते हुए कि हम सही हैं, ख़ुश और आज़ाद रह सकें! ऐसी ज़िन्दगी देर-सबेर आकर रहेगी। आख़िर तो वह वक़्त आयेगा ही जब दादी के मकान का कुछ भी नहीं रहेगा, जहाँ सारी व्यवस्था ही ऐसी है कि चार नौकर तहख़ाने के एक गन्दे कमरे में ही रह सकते हैं, और आख़िर वह वक़्त भी तो आयेगा, जब इस मकान का चिह्न भी शेष नहीं रहेगा, जब इसका अस्तित्व भूल जायेगा और कोई इसे याद भी नहीं करेगा। नाद्या का एकमात्र मनबहलाव पड़ोस के घर के बच्चे थे जो, जब वह बग़ीचे में टहलती तो चहारदीवारी पर हाथ मारकर हँसते हुए चिल्लाते –

“दुल्हन! दुल्हन!”

सारातोव से साशा का ख़त आया। उसने अपनी टेढ़ी-मेढ़ी हल्की-फुलकी लिखावट में लिखा था कि वोल्गा की सैर बहुत सफल रही है। लेकिन वह सारातोव में ज़रा बीमार पड़ गया है, उसकी आवाज़ ग़ायब हो गयी है और पिछले पन्द्रह दिन से वह अस्पताल में है। नाद्या समझ गयी कि इसके क्या मानी हैं और एक आशंका, एक विश्वास-सा उसके दिल में बैठ गया। वह खीज रही थी कि आशंका और ख़ुद साशा के विचार से वह अब पहले की भाँति द्रवित नहीं हो पा रही है। उसे ज़िन्दा रहने की, पीटर्सबर्ग जाने की इच्छा हो रही थी, और साशा के साथ दोस्ती अतीत की चीज़ मालूम हो रही थी, जो प्रिय होने पर भी बहुत दूर हो गयी थी। वह सारी रात सो नहीं सकी और सवेरे खिड़की पर जाकर बैठ गयी, उसके कान बाहर से आने वाली आवाज़ों पर लगे हुए थे। और वास्तव में नीचे से बातचीत की आवाज़ आयी – दादी घबराहट के साथ किसी से जल्दी-जल्दी कुछ पूछ रही थीं, फिर कोई रो दिया... जब नाद्या नीचे गयी, तो दादी कमरे के कोने में खड़ी हुई प्रार्थना कर रही थीं और उनका चेहरा आँसुओं से भरा हुआ था। मेज़ पर एक तार पड़ा हुआ था।

दादी का रोना सुनते हुए नाद्या कमरे में बहुत देर तक इधर से उधर चक्कर काटती रही। फिर तार उठाकर पढ़ा। तार में लिखा था कि कल सुबह सारातोव में अलेक्सान्द्र तिमोफ़ेइच यानी साशा क्षय से मर गया।

दादी और नीना इवानोव्ना मृतक के लिए प्रार्थना करवाने के लिए गिरजाघर गयीं और नाद्या बहुत देर तक कमरों में सोचती हुई चक्कर काटती रही। वह अच्छी तरह समझती थी कि साशा की इच्छानुसार उसकी ज़िन्दगी उलट-पलट हो गयी थी, वह यहाँ पर अकेली, परायी-सी थी, किसी को उसकी यहाँ ज़रूरत नहीं थी। और यहाँ पर कोई चीज़ नहीं थी, जिसे वह चाहती हो। विगत छीनकर ख़त्म कर दिया गया था मानो वह आग में जलकर भस्म हो गया था और राख हवा में बिखेर दी गयी थी। वह साशा के कमरे में गयी और वहाँ खड़ी रही।

"विदा, प्यारे साशा!" उसने मन ही मन कहा। उसकी कल्पना में उसके सामने नयी, वृहत और विशाल ज़िन्दगी थी और यह ज़िन्दगी, अभी तक अस्पष्ट और रहस्यमय, उसे बुला रही थी, आगे खींच रही थी।

वह ऊपर सामान बाँधने चली गयी और दूसरे दिन सवेरे अपने घरवालों से विदा लेकर प्रसन्नचित्त और उमंगों से भरी हुई शहर से चली गयी – कभी भी वापस न लौटने के विश्वास के साथ।

1903

अनु. – कृष्ण कुमार

व्यथा का भार

साँझ का झुटपुटा फैल चला है। घने और नम बर्फ़ के गाले सड़क के अभी-अभी जलाये गये लैम्पों के इर्द-गिर्द अलस भाव से मँडरा रहे हैं, और छतों पर, घोड़ों की पीठों पर, लोगों के कन्धों और टोपियों पर मुलायम तहों में छाते जा रहे हैं। कोचवान आयोना पोतापोव बर्फ़ से एकदम सफ़ेद हो गया है और प्रेत की भाँति मालूम होता है। उसका बदन, जहाँ तक मानव-शरीर के लिए सम्भव है, झुककर दोहरा हो गया है। वह अपने कोच-बक्स पर बैठा है और उसके बदन में ज़रा भी हरकत नहीं है। लगता है मानो बर्फ़ का पूरा ढूह भी आकर उसके ऊपर लद जाये, तब भी वह उसे झटकने की ज़रूरत न महसूस करेगा। उसका टुइयाँ-सा घोड़ा भी बिल्कुल सफ़ेद हो गया है और निश्चल खड़ा है। उसकी निश्चलता, उसकी उभरी हुई नोक-नुकीली हड्डियों, और सरकण्डे-ऐसी उसकी सीधी टाँगों की वजह से, नज़दीक से भी देखने पर वह पैसे-पैसे बिकने वाला साँचे में ढला खाण्ड का खिलौना-सा लगता है। निश्चय ही वह किसी गहरी सोच में डूबा हुआ है। अगर आपको हलमाची से, जीवन की परिचित बेरंग परिस्थितियों से, बरबस निकालकर भयावह रोशनियों, कभी न शान्त होने वाले शोर-ग़ुल और लोगों की इस चहल-पहल के भँवर के बीच पटक दिया जाये, तो चिन्ता से पीछा छुड़ाना आपके लिए भी कठिन हो जाये।

आयोना और उसका मरियल घोड़ा अपनी इस जगह से काफ़ी देर से हिले नहीं हैं। भोजन करने से पहले ही वे अपने बाड़े से बाहर निकल आये थे, और सवारी का अब तक नाम नहीं। साँझ की धुँध नगर के ऊपर छाती जा रही है। लैम्पों की सफ़ेद रोशनियों ने सूरज की उज्ज्वलतर किरनों की जगह सँभाल ली है और बाज़ार का शोर-शराबा बढ़ता जा रहा है।

"ऐ गाड़ीवाले!" सहसा आयोना के कानों में आवाज़ पड़ती है, "वाइबोर्ग चलोगे?"

आयोना चौंककर उछलता है और बर्फ़ की ढँकीं पलकों के भीतर से एक अफ़सर पर उसकी नज़र पड़ती है, जो अपने सिर पर कनटोप चढ़ाये हुए है।

"सो रहे हो क्या?" अफ़सर दोहराता है : "वाइबोर्ग चलोगे?"

सिर हिलाकर हामी भरते हुए आयोना रास सँभालता है, जिसके परिणामस्वरूप घोड़े की पीठ और गर्दन पर लदी बर्फ़ की तहें खिसककर नीचे जा गिरती हैं। अफ़सर गाड़ी में बैठ जाता है। घोड़े को उत्साहित करने के लिए कोचवान अपने होंठों से चुमकारता है, अपनी गर्दन को हंस की भाँति तानता है, फिर सीधा-सतर हो जाता है, और, आवश्यकता से इतना नहीं जितना कि अपनी आदत से मजबूर, वह अपने हण्टर को फटकारता है। मरियल घोड़ा भी अपनी गर्दन तानता है, सरकण्डे ऐसी अपनी टाँगों को मोड़ता है और अनिश्चित से डग उठाता है।

"क्यों बे, क्या सिर पर ही चढ़ा देगा, भेड़िये की औलाद!" गाड़ी के हरकत में आते ही सड़क पर आते-जाते अँधेरे समूह में से किसी की चिल्लाहट आयोना ने सुनी।

"इधर कहाँ बढ़ा जा रहा है बे? दा-दा-दाहिने बाज़ू नहीं चला जाता!"

"तुझे गाड़ी तक हाँकना नहीं आता!" अफ़सर झुँझलाकर कहता है : "दाहिने बाज़ू चल।"

प्राइवेट गाड़ी का एक कोचवान उस पर गालियों की बौछार करता गुज़र जाता है। एक राहगीर, जो दौड़कर सड़क पार कर गया है, और जिसका कन्धा घोड़े की थूथनी से टकरा गया था, अपनी आस्तीन से बर्फ़ झाड़ते हुए उसे ऐसे घूरकर देखता है मानो खा ही जायेगा। आयोना अपनी गद्दी पर कुछ इस तरह उचकता है मानो काँटों पर बैठा हो, अपनी कोहनियों को इस तरह हिलाता है मानो अपना सन्तुलन ठीक कर रहा हो और मुँहबाए इस तरह इधर-उधर देखता है, जैसे उसका दम घुट रहा हो और उसे यह समझ में न आ रहा हो कि वह क्यों और किसलिए यहाँ मौजूद है।

"बड़े शैतान हैं ये लोग!" अफ़सर मज़ाक़ में कहता है; "ऐसा मालूम होता है जैसे इन लोगों ने तुमसे टकराने या तुम्हारे घोड़े के नीचे आने का एक साथ फ़ैसला कर लिया है।"

आयोना घूमकर अफ़सर ही ओर देखता है और उसके होंठ कुछ हिलते हैं। ज़ाहिर है कि वह कुछ कहना चाहता है, लेकिन एक झुनझुनाहट के सिवा उसके मुँह से और कुछ नहीं निकलता।

"क्या है?" अफ़सर पूछता है।

आयोना मुस्कुराने की कोशिश में मुँह बिचकाता है और बड़ी मुश्किल से, भरभराई आवाज़ में कहता है :

"मालिक, मेरा लड़का, बारिन, जाता रहा, इसी सप्ताह।"

"ओह! क्या हुआ था उसे?"

आयोना अपने समूचे शरीर के साथ सवारी की ओर घूमकर कहता है :

"भगवान ही जानता है! कहते हैं कि उसे तेज़ बुख़ार था। तीन दिन वह अस्पताल में पड़ा रहा और फिर मर गया... ईश्वर की ऐसी ही मर्ज़ी थी।"

"अबे ओ, सामने देख, शैतान!" अँधेरे में से आवाज़ आयी। "मर गया है क्या, बूढ़े कुत्ते? देखकर नहीं हाँकता!"

"अच्छा, अच्छा, अब चलने का नाम लो," अफ़सर ने कहा, "वरना तो हम कल तक वहाँ नहीं पहुँच सकेंगे। ज़रा फ़ुर्ती से, समझे!"

गाड़ीवान फिर अपनी गर्दन को तानता है, सीधा-सतर होकर बैठ जाता है और बेलिहाज़ हो अपने हण्टर को फटकारता है, अनेक बार वह घूमकर अपनी सवारी की ओर देखता है, लेकिन सवारी ने अपनी आँखें मूँद ली हैं और प्रत्यक्षतः गाड़ीवान की बात सुनने की उसमें कोई इच्छा नज़र नहीं आती है। अफ़सर को वाइबोर्ग उतारने के बाद वह कहवाख़ाने के बाहर अपनी गाड़ी को रोक लेता है, अपनी सीट पर दोहरा हो जाता है, और पहले की भाँति फिर निश्चल हो जाता है। बर्फ़ एक बार फिर उसे और उसके घोड़े को ढँकना शुरू कर देती है। एक घण्टा बीता, दूसरा भी बीत गया... फिर, फ़ुटपाथ पर अपने जूतों को चरमराते और आपस में उलझते-जूझते तीन युवक नज़र आये। उनमें दो तो लम्बे और दुबले-पतले थे और तीसरा नाटा तथा कुबड़ा था।

"ऐ गाड़ीवाले, पुलिस-पुल चलेगा?" कुबड़ा फटी-सी आवाज़ में चिल्लाता है। "तीनों के बीस कोपेक मिलेंगे!"

आयोना अपनी रास सँभालता है और होंठों को चटखारता है। बीस कोपेक कोई वाजिब भाड़ा नहीं, लेकिन उसे अब इसकी परवाह नहीं कि रूबल मिलता है या पाँच कोपेक – सवारी होनी चाहिए, उसके लिए अब सब बराबर है। एक-दूसरे को धकियाते और अश्लील बातों की बौछार करते युवक गाड़ी के पास आते हैं और तीनों एक साथ गद्दी पर बैठने का प्रयत्न करते हैं। फिर बहस छिड़ जाती है कि कौन दो उनमें से बैठेंगे और कौन खड़ा रहेगा। काफ़ी झगड़ने, एक-दूसरे को कोसने और आनाकानी करने के बाद अन्त में तय हुआ कि कुबड़ा खड़ा रहेगा क्योंकि वह सबसे नाटा है।

"हाँ, तो अब ज़रा जल्दी से लपक चलो!" अपनी जगह पर खड़े होते हुए कुबड़ा टँकारता है और गाड़ीवान की गरदन पर भभकारा छोड़ते हुए कहता है : "बूढ़ा खुर्राट! क्यों चचा, तुम्हारी यह टोपी भी ख़ूब है। पीटर्सबर्ग के किसी भी कबाड़ख़ाने में ऐसी गयी-गुज़री टोपी नहीं मिलेगी!"

"ही-ही-ही-ही," आयोना दाँत निपोरता है, "किसी भी कबाड़ख़ाने में..."

"अबे ओ कबाड़ख़ाने वाले, जल्दी कर। क्या सारा रास्ता इसी रफ़्तार से पार करेगा? क्यों, क्या यही इरादा है?... गरदन पर एक रद्दा लग जाये तो होश

ठिकाने आ जायेंगे।"

"अरे बाप रे," छड़ी जैसा लम्बा युवक कहता है, "मेरा तो सिर फटा जा रहा है। कल रात दोन्कमासोव के यहाँ वास्किना और मैं बहुत पी गये – पूरी चार बोतलें ख़ाली कर डालीं!"

"समझ में नहीं आता कि तुम इतनी दूर की क्यों उड़ाते हो?" दूसरे दुबले-पतले युवक ने चिढ़कर कहा, "झुठ बोलने में तुम पूरे वहशी हो!"

"सच, मुझ पर गाज गिरे अगर यह झूठ हो!"

"यह उतना ही सच है जितना कि मेंढकी के जुकाम होना सच हो सकता है।"

"ही-ही-ही," आयोना फिर दाँत निपोरता है, "कितने मौजी युवक हैं ये!"

"ओह, कैसे शैतान से पाला पड़ा है!" कुबड़ा झल्लाकर कहता है।

"अब चलेगा भी या नहीं, खूसट की औलाद? क्या यही हाँकने का तरीक़ा है? ज़रा अपने हण्टर का जौहर दिखा। लगा, शैतान, लगा दो-चार ऐसे कि घोड़ा भी याद रखे!"

आयोना महसूस करता है कि उसकी पीठ पीछे नाटा युवक कसमसा रहा है और उसकी आवाज़ थरथरा रही है। गालियों की बौछार उसके कानों से आकर टकराती है, लोगों की चहल-पहल पर उसकी नज़र टिकती है और धीरे-धीरे सूनेपन की भावना जाती रहती है। कुबड़े की गालियों का प्रवाह उस समय तक ख़त्म न होता जब तक कि एक अच्छी-ख़ासी शैतान की आँत-सी लम्बी गाली में उलझकर उसकी ज़ुबान लड़खड़ा न जाती, या खाँसी से उसका दम न घुटने लगता। सींकिया युवक ने नादेज़्हदा पैगोवना नामक किसी युवती का सिलसिला छेड़ दिया है। आयोना अनेक बार घूमकर उनकी ओर देखता है। वह इस बात की प्रतीक्षा करता है कि उनकी चहचहाट में क्षण-भर के लिए कोई विराम आये, और फिर उनकी ओर घूमकर बुदबुदा उठता है :

"मेरा लड़का... इस सप्ताह जाता रहा।"

"जाना तो हम सभी को है," खाँसी के दौर के बाद अपने होंठों को पोंछते हुए कुबड़े युवक ने उसास भरी। "लेकिन अब ज़रा अपनी चाल दिखाओ, ओह! इस रफ़्तार ने तो जान ही ले ली। ख़ुदा जाने, हम कब तक वहाँ पहुँचेंगे।"

"और कुछ नहीं, बस इसकी गर्दन को ज़रा गुदगुदा दो!"

"सुना, ताऊ, अब तेरी गर्दन की ख़ैर नहीं। तेरे जैसों के साथ शराफ़त बरती जाये तो पैदल ही घिसटना पड़े। सुन रहा है न, सपोलेराम! या तुझ पर बातों का कोई असर नहीं होता?"

आयोना उनके प्रहारों को मानो सुनता है, अनुभव नहीं करता।

"हि, हि," वह गिलगिलाया। "कितने मौजी जवान हैं! ख़ुदा इन्हें सलामत

रखे!"

"ऐ गाड़ीवान, क्या तू विवाहित है?" एक सींकिया युवक ने पूछा।

"मैं? हि, हि, आप लोग भी कितने मौजी व्यक्ति हैं! अब मेरे पास केवल एक पत्नी और नम धरती ही तो रह गयी है... हि, हो, हो,... यानी ढाई हाथ धरती जिसमें मैं चिर-विराम लूँगा... मेरा लड़का जाता रहा, और मैं अभी भी बना हूँ... कितनी अद्‌भुत बात है यह, मौत जैसे दरवाज़ा भूल गयी... मेरे पास आने के बजाय वह मेरे लड़के के पास पहुँच गयी..."

आयोना उनकी ओर घूमता है, और उन्हें बताना चाहता है कि उसका लड़का कैसे मरा, लेकिन तभी एक हल्की-सी उसास भरते हुए कुबड़ा युवक ऐलान करता है, "शुक्र है ख़ुदा का, आख़िर मंज़िल आ ही गयी," और आयोना उन्हें अँधेरे दरवाज़े में से विलीन होते देखता है। वह अब फिर अकेला है और निस्तब्धता ने उसे फिर घेर लिया है... उसकी व्यथा, कुछ क्षणों के लिए जो तिरोहित हो गयी थी, अब फिर लौट आयी है और उसके हृदय को और भी अधिक ज़ोरों से मथ रही है। सड़क के दोनों ओर लोग आ-जा रहे हैं। भीड़ पर उसकी व्यग्र और उतावली दृष्टि घूम जाती है - किसी ऐसे आदमी की खोज में जिससे वह अपने हृदय की बिथा कह सके। लेकिन लोग अपनी ही धुन में लपके जा रहे हैं। उसकी अथवा उसकी बिथा की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। इतनी भारी और इतनी सीमाहीन व्यथा पर भी किसी का ध्यान नहीं जाता। हृदय का बाँध तोड़ अगर यह व्यथा बह निकले तो लगता है समूची दुनिया उसमें डूब जायेगी। फिर भी कोई उसे देखता नहीं। कुछ इतने नगण्य घोंघे में वह छिपी है कि उसे कोई देख नहीं सकता, दिन के प्रकाश में और चिराग़ की रोशनी में भी नहीं देख सकता।

आयोना की नज़र बोरा लिये एक कुली पर पड़ती है और वह उससे बात करने का निश्चय करता है।

"कहो भाई, क्या बज गया होगा?" वह पूछता है।

"नौ बज चुके। लेकिन तुम यहाँ खड़े क्या कर रहे हो? चलते बनो!"

आयोना कुछ क़दम आगे बढ़ जाता है, बदन को दोहरा कर लेता है और अपने शोक में पूर्णतया डूब जाता है। उसने देखा कि सहारे के लिए दूसरों का मुँह ताकना बेकार है। पाँच मिनट बीतते न बीतते वह फिर सीधा हो जाता है, अपने सिर को कुछ इस तरह अकड़ाता है मानो उसे कोई तेज़ दर्द हुआ हो, और रास को झटका देता है। अब व्यथा असह्य हो उठी है। "अब घर चलना चाहिए," वह सोचता है। मरियल घोड़ा मानो उसका आशय समझकर दुलकी चाल से घर की ओर बढ़ चलता है।

डेढ़ एक घण्टे के बाद आयोना एक भारी-भरकम तथा गन्दे तन्दूर की

बग़ल में बैठा है। तन्दूर के इर्द–गिर्द, फ़र्श पर, बेंचों पर लोग खर्राटे ले रहे हैं, हवा इतनी भारी और गरम है कि दम घुटता है।

"आज तो घोड़े के चारे लायक़ भी पैसा नहीं जुटा," वह सोचता है। "यही तो सारी मुसीबत है। जो अपना काम जानता हो, और जो अपने घोड़े का पेट भर चुका हो, वह हमेशा चैन से सो सकता है।"

कोने में लेटा हुआ एक युवा गाड़ीवान आधा उठता है, उनींदी–सी आवाज़ में गुर्राता है और फिर पानी की बाल्टी की ओर हाथ बढ़ाता है।

"क्यों, गला तर करना चाहते हो?" आयोना उससे पूछता है।

"इसमें भला क्या शक है, दद्दा!" युवक ने कहा।

"ऐसी बात है? तुम्हारी सेहत सलामत रहे! लेकिन सुनो मेरे मित्र – पता है ना, मेरा लड़का जाता रहा... सुना तुमने? इसी सप्ताह, अस्पताल में... एक लम्बी कहानी है।"

अपने शब्दों का प्रभाव देखने के लिए आयोना युवक पर एक नज़र डालता है, लेकिन कुछ देख नहीं पाता – अपना मुँह दुबकाकर युवक फिर गहरी नींद में डूब गया है। वृद्ध एक उसास भरता है, अपने सिर को खुजलाता है; अपना गला तर करने के लिए जितनी प्रबल उत्कण्ठा उस युवक को थी, वृद्ध भी किसी से बात करने के लिए उतना ही बेताब था। उसके लड़के को मरे अब एक सप्ताह होने को आया है, लेकिन अभी तक वह किसी के सामने ढंग से अपना जी हल्का नहीं कर सका है। यह एक ऐसी बिथा है जिसे धीरे–धीरे, सावधानी के साथ ही किसी के सामने खोलकर रखा जा सकता है – यह कि किस प्रकार उसका लड़का बीमार पड़ा, किस प्रकार वह छटपटाया, मरने से पहले उसने क्या कहा और किस प्रकार उसने दम तोड़ा। फिर उसका अन्तिम संस्कार, मृतक के कपड़े लाने के लिए अस्पताल की यात्रा – पूरे विस्तार के साथ, एक बात भी छोड़े बिना, इस सबका वर्णन करना ज़रूरी था। उसकी लड़की अनीसिया गाँव से आ तक नहीं सकी – भला, उसे कैसे नज़रन्दाज़ किया जा सकता है? उसके बारे में भी कुछ कहना ही चाहिए। और यह सब सुनकर, निश्चय ही, श्रोता की साँस ऊपर का ऊपर और नीचे का नीचे रह जायेगी, वह आह भरेगा और सहानुभूति के दो शब्द उससे कहे बिना न रहेगा। स्त्रियों से अपने मन की व्यथा कहना और भी अच्छा होता, हालाँकि वे मूर्ख होती हैं, बात सुनने से पहले ही वे सुबकने और आँसू बहाने लगती हैं।

"चलूँ ज़रा अपने घोड़े पर भी एक नज़र डाल आऊँ," आयोना सोचता है। "सोने के लिए सारी रात पड़ी है। सो उसकी चिन्ता नहीं!"

वह अपना कोट बदन पर डालता है और अस्तबल में अपने घोड़े की ओर चल देता है। अनाज के, घास के, और मौसम के बारे में वह सोच रहा है।

अकेले में अपने लड़के के बारे में सोचने का उसे साहस नहीं होता। वह उसके बारे में किसी से भी बातें कर सकता है, लेकिन उसके बारे में सोचना, अपनी कल्पना में उसका चित्र मूर्त करना, उसके लिए इतना दुःखद है कि वह सह नहीं सकता।

"क्यों, भोजन कर रहे हो क्या?" अपने घोड़े की चमकदार आँखों में देखते हुए आयोना उससे पूछता है; "अच्छी बात है, खाये जाओ। हालाँकि दाना आज नहीं मिला – न तुम्हें, न मुझे – लेकिन अपनी इस घास से हमें कौन वंचित कर सकता है? हाँ! मैं अब बुढ़ा गया हूँ, गाड़ी हाँकते मुझसे नहीं बनता – यह काम तो मेरे लड़के का था, मेरा नहीं। गाड़ी हाँकने में एक नम्बर था वह। काश कि वह जीवित होता!"

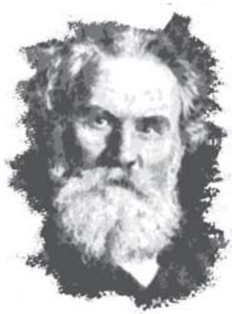
आयोना क्षण–भर के लिए चुप हो जाता है, फिर कहता जाता है :

"तो यह बात है, बूढ़े साथी। कुज़्मा आयोनिच अब नहीं रहा। वह हमें इस घिसघिस में छोड़ गया, और ख़ुद हवा हो गया। तुम्हीं सोचो, अगर तुम्हारा कोई बछेड़ा होता, और तुम उसकी माँ होती और मान लो अगर वह बछेड़ा अचानक चल बसता और तुम्हें इस दुनिया में डाड़ तोड़ने के लिए छोड़ जाता तो... बोलो, कितनी व्यथा होती तुम्हें?"

मरियल घोड़ा घास के निवाले को दाँतों से कचरता है, कान खड़े करके सुनता और मालिक के हाथ पर गरम उसास छोड़ता है...।

आयोना अपने हृदय को सँभाल नहीं पाता, और अपने मरियल घोड़े को पूरी कहानी सुनाने लगता है।

अनु. – नरोत्तम नागर



व्लादीमिर कोरोलेन्को

(1853–1921)

19वीं शताब्दी के अन्त और 20वीं शताब्दी के आरम्भ के एक प्रमुख यथार्थवादी लेखक व्लादीमिर कोरोलेन्को अपने समय के एक सर्वाधिक मनमोहक व्यक्ति थे। कोरोलेन्को को अपना पहला गुरु बताते हुए सर्वहारा लेखक मक्सिम गोर्की ने लिखा है – "मेरे लिए कोरोलेन्को उन सैकड़ों लोगों में सबसे श्रेष्ठ बने रहे हैं जिनसे मेरी भेंट हुई है और मैं उन्हें रूसी लेखक का आदर्श रूप मानता हूँ।" कोरोलेन्को कहानियाँ और लघु-उपन्यास, आधी शती के रूसी जीवन के इतिवृत के रूप में अनेक खण्डोंवाला 'मेरे समकालीन का इतिहास', ज़ारशाही द्वारा साइबेरिया में निर्वासित होने पर वहाँ बिताये गये जीवन के शब्दचित्र, लेव तोल्स्तोय और अन्तोन चेख़व आदि के बारे में संस्मरण (लगभग 700 लेख, पत्र, शब्दचित्र और टिप्पणियाँ) साहित्यिक थाती के रूप में छोड़ गये हैं।

'जंगल गूँज रहा है' (1886) कहानी उत्पीड़ितों के प्रति सहानुभूति से ओतप्रोत है जिनका क्रोध धीरे-धीरे परिपक्व होता है, किन्तु सहसा और बहुत ज़ोर से फट पड़ता है।

जंगल गूँज रहा है

(पोलेस्ये की एक दन्त-कथा)

आपबीती यह किसी की जो कहानी बन गयी!

1

जंगल गूँज रहा था...

सदा ही शोर मचा रहता था इस जंगल में – एक ही सुर में बँधा हुआ, दूरी पर बजने वाली घण्टियों की गूँज की तरह लहराता हुआ। अस्पष्ट–सा यह शोर मन को शान्ति देता था, दूर से सुनायी पड़ने वाली निःशब्द मधुर धुन की भाँति, अतीत की उलझी–उलझायी स्मृतियों की तरह। हमेशा ही शोर रहता था इस जंगल में, क्योंकि यह बहुत पुराना, घना और सपनों में ऊँघता हुआ–सा था। किसी ठेकेदार के आरे और कुल्हाड़ी ने इसे छुआ तक नहीं था। सनोबर के सौ–सौ वर्ष पुराने ऊँचे वृक्ष फ़ौजी जवानों की तरह मुँह फुलाये खड़े थे। बहुत बड़े–बड़े और लाल–लाल तने थे उनके। उनकी हरी–भरी फुनगियाँ आपस में गुँथी हुई थीं। नीचे गहरा सन्नाटा था, राल की गन्ध थी। सनोबर के सुई जैसे पत्तों की ज़मीन पर जमी हुई मोटी परतों के बीच से जहाँ–तहाँ चमकती हुई झाड़ियाँ अपने सिर बाहर निकाले हुए थीं। ये झाड़ियाँ इन परतों की फूली–फूली और अत्यधिक आकर्षक झालर–सी मालूम होती थीं। ये एकदम निश्चल थीं, एक पत्ता तक नहीं हिल रहा था इनका। जंगल के नम हिस्सों में ऊँची–ऊँची हरी घास दूर तक खड़ी थी। तिपतिया घास के सफ़ेद फूल सिर भारी होने के कारण झुके जा रहे थे, मानो चुपचाप अपनी थकान मिटा रहे हों। नीचे था ऐसा सन्नाटा और ऊपर थी जंगल की अविराम साँय–साँय। पुराना वन मानो गहरी साँसें ले रहा था।

जंगल की ये साँसें इस वक़्त और अधिक गहरी और ज़ोरदार हो गयी थीं। मैं इस वन की एक पगडण्डी पर चला जा रहा था। यह सही है कि मुझे आकाश दिखायी नहीं दे रहा था, मगर वन के तेवर देखकर मैंने यह महसूस कर लिया था

कि ऊपर धीरे-धीरे बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं। वक़्त काफ़ी हो चुका था। वृक्षों के तनों के बीच से कहीं-कहीं कोई किरण झलक दिखा रही थी। मगर वन के घने हिस्सों पर शाम का झुटपुटा छाता जा रहा था। नज़र आ रहा था कि रात होते तक तूफ़ान आयेगा। आज के लिए शिकार का ख़याल दिमाग़ से निकालना ज़रूरी हो गया था। तूफ़ान आने के पहले रात बिताने के ठिकाने पर पहुँचना लाज़िमी था। ज़मीन से बाहर निकली हुई जड़ों पर मेरे घोड़े के सुम बज रहे थे और वह नथुने फरफरा रहा था। आवाज़ की गूँज जब जंगल में ज़ोर से प्रतिध्वनित होती, तो वह कनौतियाँ बदलता। वन-रक्षक की जानी-पहचानी जगह की ओर वह ख़ुद ही तेज़ी से क़दम बढ़ाता जा रहा था।

कुत्ता भूँका। वृक्षों के तनों के बीच से लिपी-पुती दीवारें झलक दिखाने लगीं। ऊपर छायी हुई हरियाली के नीचे धुएँ की नीली रेखा बल खा रही थी। लाल तनों की दीवार के नीचे एक तरफ़ को झुकी हुई झोपड़ी थी, जिसकी छत भी जीर्ण-शीर्ण थी। ऐसा लगता था कि सुघड़ और तने हुए सनोबरों के ऊँचे-ऊँचे सिर जब इस झोपड़ी के ऊपर झूमते हैं, तो यह और अधिक ज़मीन में धँस जाती है। जंगल के खुले मैदान के बीचोबीच शाहबलूत के कमउम्र वृक्षों के झुण्ड आपस में गुँथे हुए खड़े थे।

शिकार के वक़्त के मेरे साथी वन-रक्षक ज़ख़ार और मक्सिम यहीं रहते थे। स्पष्ट था कि इस समय उन दोनों में से कोई भी घर पर नहीं था, क्योंकि एलसेशन कुत्ते के ज़ोर से भूँकने पर भी कोई घर से बाहर नहीं निकला था। सिर्फ़ एक बूढ़ा बाबा झोपड़ी की दीवार से सटकर बैठा हुआ था – चाँद निकली हुई, सफ़ेद मूँछें, जो सीने तक पहुँच रही थीं। वह छाल के जूते गाँठ रहा था और धुँधली नज़र से ऐसे देख रहा था, मानो कुछ याद करने की कोशिश कर रहा हो, जो उसे याद नहीं आ रहा था।

"नमस्कार बाबा! घर पर है कोई?"

"ऐं!" उसने सिर हिलाया। "न तो ज़ख़ार है और न मक्सिम। रही मोल्या तो वह गाय के पीछे जंगल में गयी है – गाय कहीं वन में खो गयी है। बहुत मुमकिन है भालू... गाय को भालू खा गये हों... हाँ तो, कोई नहीं है घर पर!"

"ख़ैर, कोई बात नहीं। मैं तुम्हारे पास बैठकर इन्तज़ार करता हूँ उनका।"

"कर लो इन्तज़ार, बैठ जाओ यहाँ," बूढ़े बाबा ने उत्तर दिया। मैं जब बलूत की टहनी से अपना घोड़ा बाँध रहा था, तो वह अपनी कमज़ोर और धुँधलायी हुई नज़र से मुझे देखता रहा। बेचारा बूढ़ा – आँखों से दिखायी नहीं देता, हाथ काँपते हैं।

मैं जब उसके क़रीब ही बैठ गया, तो बूढ़े ने पूछा –

"कौन हो भाई तुम?"

जब-जब भी मैं यहाँ आता था, बूढ़ा बाबा मुझसे हर बार यही सवाल पूछता था।

"अरे, तुम हो... समझा," बूढ़े ने जवाब दिया और फिर जूते गाँठने के काम में जुट गया। "अक्ल बुढ़ा गयी है। दिमाग़ बिल्कुल छलनी हो गया है, कुछ भी नहीं ठहरता उसमें। जो कभी के मर-खप गये, वे याद हैं मुझे, बहुत अच्छी तरह से याद हैं! मगर नये लोगों को, सभी नये लोगों को भूल जाता हूँ... बहुत अधिक दिन जी लिया इस धरती पर।"

"बाबा, बहुत अर्से से डेरा है क्या इसी जंगल में?"

"हाँ, ऐसा ही समझो, भाई! फ़्रांसीसी जब आये थे ज़ार के राज में, तब भी मैं धरती पर था।"

"तब तो बहुत कुछ देखा-जाना है तुमने, बाबा। शायद बहुत कुछ जानते हो।"

बूढ़े बाबा ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा।

"क्या देखना-वेखना था मुझे, भाई? बस, जंगल देखा... शोर मचाया करता है जंगल, दिन को, रात को, जाड़े में, गरमी में... मैं तो ख़ुद मानो एक पेड़ हूँ, यहीं जंगल में उम्र गुज़र गयी – न कुछ देखा, न भाला... क़ब्र में पाँव लटकाये बैठा हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ – सो भी अक्ल काम नहीं करती – समझ नहीं पाता कि दुनिया में जिया भी कि नहीं... हाँ, तो यह बात है! शायद बिल्कुल जिया ही नहीं..."

जंगल के खुले मैदान में खड़े हुए वृक्षों के झुण्डों की घनी चोटियों के पीछे से काली घटा का छोर दिखायी दिया। जंगल के इस खुले भाग को घेरने वाले सनोबरों की टहनियों ने हवा के झोंकों के इशारों पर झूलना शुरू कर दिया था। जंगल में बहुत शोर मच गया। बूढ़े ने सिर उठाया और इस शोर की तरफ़ कान लगा दिया।

"तूफ़ान आ रहा है," उसने घड़ी-भर बाद कहा, "मैं यह निश्चित रूप से जानता हूँ। ओह, रात को ज़ोर का अन्धड़ चलेगा, सनोबरों की शामत आयेगी, जड़ समेत उखाड़कर फेंक देगा वह उन्हें!... अपने रंग दिखायेगा जंगल का मालिक..." उसने धीरे-से कहा।

"तुम्हें कैसे मालूम है, बाबा?"

"अरे, यह मुझे मालूम है! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पेड़ क्या कहता है... प्यारे, पेड़ भी डरता है... इसे देखो इस एस्प के वृक्ष को... मनहूस वृक्ष है यह... चौबीसों घण्टे कुछ न कुछ बोलता रहता है अपनी बोली में। हवा नहीं है, मगर उसे तो अपने काँपने से मतलब। इस सनोबर को ले लो – साफ़ दिन होता है, धूप होती है, तो यह ख़ूब मस्त रहता है। ज़रा हवा चलने लगती है, तो यह लगता है गूँजने और कराहने। यह तो ख़ैर कुछ नहीं... तुम अब ज़रा ध्यान से सुनो। आँखों से तो बेशक मुझे बहुत कम दिखायी देता है, पर कानों से तो सुनता हूँ – शाहबलूत शोर

मचा रहा है न, छेड़ रहा है उसे कोई जंगली मैदान में... यह निशानी है तूफ़ान की।"

उसकी बात सही थी। मैंने कम ऊँचे और इधर-उधर फैले हुए बलूतों के उस झुण्ड की तरफ़ देखा, जो जंगल के मैदान के बीचोबीच खड़ा था और जिसके गिर्द ऊँचे सनोबर वृक्षों की दीवार-सी बनी हुई थी। बलूत वृक्षों का यह झुण्ड हवा के ज़ोरदार झोंकों में झूल रहा था और उससे जो कठोर अघोष ध्वनि पैदा हो रही थी, वह सनोबरों के गूँजते शोर से बिल्कुल भिन्न थी।

"क्यों? सुना तुमने?" बूढ़े ने कहा। उसके होंठों पर बाल-सुलभ शरारत थी। "मैं ख़ूब जानता हूँ – छेड़ा है किसी ने बलूत को! मतलब यह है कि मालिक रात को आयेगा, तोड़ा-मरोड़ी करेगा... हाँ, मगर नहीं, टूटेगा नहीं वह! वह शाहबलूत है – बड़ा जानदार वृक्ष है, मालिक की भी चलने नहीं देता... यह है क़िस्सा, प्यारे!"

"यह मालिक कौन है, बाबा? तुम ख़ुद ही तो कहते हो कि तूफ़ान पेड़ों को तोड़ता-मरोड़ता है।"

बूढ़े बाबा ने सिर हिलाया। उसके चेहरे पर शरारत झलक रही थी।

"सभी कुछ तो जानता हूँ मैं!... कहते हैं कि ऐसी हो गयी है दुनिया कि किसी चीज़ में कोई विश्वास, कोई आस्था ही नहीं रही। तो यह है मामला! मगर मैंने तो देखा है उसे अपनी इन आँखों से, जैसे कि अब तुम्हें देख रहा हूँ। अरे नहीं, इससे भी कहीं अच्छी तरह से, क्योंकि अब तो बुढ़ा गयी हैं मेरी आँखें और तब जवानी की आँखें थीं। ओह, क्या रोशनी, कैसी ज्योति थी उन दिनों मेरी आँखों में!..."

"कैसे देख लिया तुमने उसे, बाबा? कुछ सुनाओ तो।"

"सब कुछ ऐसे ही था जैसे कि इस समय। पहले सनोबर वन में कराहता है... गूँजता नहीं, कराहता है – हाय... ओह! थोड़ा दम लेता है, फिर चीख़ता-चिल्लाता है, फिर चीख़ता है, जल्दी-जल्दी... हाँ, बहुत रोता-तड़पता है। जानते हो क्यों? क्योंकि रात को मालिक इसकी कसकर पिटाई करता है। फिर बलूत बोलना शुरू करता है। शाम होते-होते उसका ज़ोर बढ़ता है और रात होते ही उसका चक्कर शुरू हो जाता है – ठहाके लगाता है और हँसता है, उछल-कूद करता है, जी भरकर अपना रंग दिखाता है और बार-बार बलूत पर ही टूट-टूटकर पड़ता है, उसे ही उखाड़ फेंकने की फ़िक्र में रहता है... एक बार क्या हुआ कि पतझड़ के दिन थे – मैंने खिड़की से झाँका, मालिक को मेरी यह हरकत अच्छी नहीं लगी – सनोबर का सूखा तना उठाकर दे मारा खिड़की पर। बुरा हो उसका, चेहरे की खाल उड़ती-उड़ती बची। मैं भी कोई कच्ची गोलियाँ थोड़े ही खेला हूँ, साफ़ बचकर निकल गया। हाँ प्यारे, समझ लो, कैसा क्रोधी है वह!..."

"सूरत-शक्ल कैसी है उसकी?"

"सूरत-शक्ल की क्या पूछते हो, दलदल में उगने वाले बेद वृक्ष जैसी है सूरत उसकी। बेहद मिलती-जुलती!.. बाल ऐसे जैसे सूखी हुई अमरबेल, जो पेड़ों पर छा जाती है। दाढ़ी भी ऐसी ही! रही नाक, तो जैसे मोटा-ताज़ा तना हो। थोबड़ा एकदम खुरदरा, काई से लथ-पथ। छि: कैसी भौंड़ी सूरत है उसकी! भगवान न करे कि कभी किसी की सूरत उससे मिलती-जुलती हो... भगवान की क़सम! दूसरी बार फिर मुझे इसके दर्शन हुए दलदल में, बिल्कुल वैसा ही था! बहुत निकट से देखा मैंने इसे... अगर मन हो, तो जाड़े में आ जाना, ख़ुद अपनी आँखों से देख लेना उसे। वहाँ चले जाना उस पहाड़ पर - वहाँ जहाँ जंगल ही जंगल है, वहाँ सबसे ऊँचे पेड़ पर चढ़ जाना - उसकी फुनगी पर। वहाँ से किसी न किसी दिन नज़र आ जायेगा वह तुम्हें। जंगल के ऊपर-ऊपर से सफ़ेद खम्भे की तरह जाता है वह, अपने आप ही कभी इधर तो कभी उधर घूमता-फिरता है और फिर पहाड़ से नीचे ही नीचे उतरता चला जाता है। भागता जाता है, भागता जाता है नीचे की ओर और फिर जंगल में ओझल हो जाता है आँखों से। ओह!... जिधर से गुज़रता है, उधर ही सफ़ेद बर्फ़ के निशान छोड़ता जाता है... क्या विश्वास नहीं होता बूढ़े की बातों पर? कभी न कभी ख़ुद देख लेना अपनी आँखों से।"

बूढ़े के मन में जो कुछ आता था, अपनी लहर में कहे जा रहा था। लगता था कि जंगल की हलचल और बेचैनी और हवा में तूफ़ान की झलक ने बूढ़े रक्त में गरमी ला दी थी। बूढ़ा बाबा सिर हिलाता था, हँसता था और अपनी धुँधलायी तथा ज्योतिहीन आँखों को मिचमिचाता था।

पर अचानक उसके ऊँचे माथे पर एक छाया-सी पड़ी। उसके माथे पर झुर्रियों की हलरेखाएँ-सी बनी हुई थीं। कोहनी से मुझे टहोककर उसने रहस्यमय ढंग से कहा -

"जानते हो, प्यारे, मैं तुमसे क्या कहने वाला हूँ?... बेशक है वह वन का स्वामी, लेकिन बड़ा ही दुष्ट है, यह भी सच है। धर्म-ईमान में विश्वास रखने वाले आदमी के लिए तो उसकी भौंड़ी सूरत देखना भी ठीक नहीं... मगर फिर भी उसके बारे में सच्ची बात तो कहनी ही चाहिए - वह बुरा किसी का नहीं करता... योंही किसी से थोड़ी छेड़छाड़ कर ले, यह बात दूसरी है, मगर किसी को सताये-रुलाये, ऐसा कभी नहीं होता।"

"बाबा, तुमने ख़ुद ही तो कहा था कि उसने तुम्हारे मुँह पर सूखा तना दे मारना चाहा था?"

"अरे हाँ, चाहा तो था उसने! वह तो बात ही दूसरी थी! नाराज़ हो उठा था वह कि मैंने खिड़की में से क्यों झाँका था! पर अगर कोई उसके मामले में टाँग न अड़ाये, तो ऐसे आदमी को कोई हानि नहीं हो सकती उससे। तो ऐसा है वह वन का मालिक!... और जानते हो कैसे-कैसे भयानक काम किये हैं लोगों ने इस जंगल

में। भगवान बचाये, राम-राम!"

बूढ़े बाबा ने सिर झुकाया और घड़ी-भर के लिए चुप्पी साधे रहा। फिर जब उसने मेरी तरफ़ देखा, तो उसकी आँखों की धुँधलायी हुई पुतलियों के भीतर से मानो एक चिंगारी-सी निकली, किसी भूली-बिसरी, किसी सोयी हुई याद की चिंगारी-सी।

"तो लो, प्यारे, सुना ही देता हूँ तुम्हें क्या कुछ हो चुका है हमारे इस जंगल में। बहुत पुरानी, बरसों पुरानी बात है यह, यहीं ठीक इसी जगह घटी थी वह घटना... याद है मुझे, सपने जैसी लगती है। और जैसे ही जंगल ज़ोर से शोर मचाने लगता है, वैसे ही मुझे याद आने लगती है उस घटना की... चाहते हो सुनना? सुनोगे?"

"हाँ, हाँ, ज़रूर! सुनाओ, बाबा।"

"तो सुना ही देता हूँ, लो सुनो!"

2

"बहुत छोटा-सा था मैं कि माँ-बाप चल बसे... एकदम अकेला रह गया मैं इस दुनिया में। तो ऐसी गुज़री अपने साथ! पंचायत बैठी और लोग-बाग लगे सोचने - 'क्या किया जाये इस यतीम का?' ख़ुद ज़मींदार चौधरी को भी मेरी फ़िक्र... हुआ यह कि तभी वन-रक्षक रोमान वहाँ आ पहुँचा। उसने पंचायत से कहा, 'मुझे दे दो यह छोकरा, मैं इसकी देखभाल करूँगा, इसे खिलाऊँ-पिलाऊँगा... मेरा जंगल में जी बहलेगा और इसका पेट भरेगा...' तो यह कहा रोमान ने। पंचायत ने कहा, 'ठीक है, ले जाओ!' और वह मुझे अपने साथ ले आया। इस तरह मैं पहुँचा इस जंगल में और वह दिन और आज का दिन - बस, सारी उम्र यहीं बीत गयी।

"तो वह रोमान ही मुझे खिलाता-पिलाता। बड़ी उल्टी खोपड़ी का आदमी था वह, भगवान बचाये ऐसे लोगों से!... लम्बा-तड़ंगा, काली-काली आँखें। और आँखों में झाँकने से ही मालूम हो जाता था कि आत्मा भी काली है उसकी। मामला ही कुछ ऐसा था - सारी उम्र बितायी थी उसने जंगल में ही। लोग-बाग कहते थे कि भालू उसके भाई जैसे हैं और भेड़िये भाँजे-भतीजे। सभी दरिन्दों से उसकी जान-पहचान थी और क्या मज़ाल कि किसी से डरे। पर जब लोगों को देखता, तो उनसे कन्नी काटता... तो ऐसा था वह रोमान - सच कहता हूँ क़सम भगवान की! मुझे जब कभी वह नज़र भरकर देख लेता था, तो ऐसे महसूस होता था कि मानो बिल्ली की दुम मेरी पीठ सहला रही है... पर ख़ैर, कुल मिलाकर आदमी था दरियादिल - खिलाता-पिलाता मुझे ख़ूब अच्छी तरह। दलिया बना-बनाकर देता, ख़ूब चर्बी डाल-डालकर। जब कभी कोई बत्तख़ हाथ लग जाती, तो वह भी खिलाता मुझे। सच तो सच ही रहेगा, ख़ूब खिलाया-पिलाया उसने।

"तो इस तरह हम दोनों रहे जंगल में। रोमान जंगल में जाता, तो मुझे भीतर बन्द कर जाता कि कोई दरिन्दा न फाड़ खाये। बाद में बीवी भी बाँध दी गयी उसके पल्ले। ओक्साना नाम था उसका।

"चौधरी ने ही दिलवायी थी उसे बीवी। रोमान को बुलवा भेजा उसने गाँव में और कहा, 'रोमान ब्याह करना है तुम्हारा।' रोमान ने जवाब दिया, 'मुझे क्या लेना-देना है बीवी से? जंगल में मेरा डेरा, क्या करूँगा मैं उसे वहाँ ले जाकर? और फिर बिना बीवी के ही मेरे तो बेटा भी है। नहीं करना मुझे शादी-ब्याह!' बात असल में यह थी कि रोमान कभी लड़कियों से घुला-मिला नहीं था! मगर चौधरी – वह भी खूब घुटा हुआ आदमी था... जब याद आती है उसकी, तो सोचता हूँ कि अब ऐसे चौधरी नहीं रहे, अब पहले जैसे चौधरी हो गुज़रे... तुम अपने ही को ले लो – कहते हैं कि तुममें भी चौधरियों का ख़ून है... शायद ठीक ही होगा, पर फिर भी वह बात नहीं तुममें, असली चौधरी वाली... ख़ैर, योंही छोटे-मोटे चौधरी हो तुम भी, पर वैसे नहीं!

"वह था असली चौधरी, पुराने ज़माने के चौधरियों में से एक... सुनो, बताता हूँ तुम्हें, कैसी धाक थी उसकी! सौ-सौ जने डरते थे उस अकेले से! समझे!... देखो प्यारे, यों तो अण्डे में से ही निकलता है बाज़ भी और चूज़ा भी। बाज़ आसमान की तरफ़ उड़ान भरता है! ओह! जब वह वहाँ से चीख़ता है, तो बेचारे चूज़ों की तो क्या हस्ती, बड़े-बड़े मुर्ग़ों का भी दम निकल जाता है... तो इसे कहते हैं बाज़ – असली, ऊँची नस्ल का परिन्दा, और चूज़ा – वह तो योंही होता है मामूली-सा देहाती नस्ल का जानवर...

"हाँ, अभी तक याद है मुझे, छोटा-सा ही था तब मैं। एक दिन देखता क्या हूँ कि देहाती जंगल से मोटे-मोटे लट्ठे लिये जा रहे हैं – यही रहे होंगे कोई तीस जने। दूसरी तरफ़ से चौधरी अकेला आ रहा था अपने घोड़े पर, मूँछों पर ताव देता हुआ। घोड़ा उसका अठखेलियाँ कर रहा था और वह ख़ुद इधर-उधर देख रहा था। ओह! देहातियों की नज़र पड़ गयी चौधरी पर! बस, क्या था खलबली मच गयी, रास्ता छोड़ दिया, घोड़े बर्फ़ में डाल दिये और टोपियाँ उतार लीं। बाद में जाने कैसी-कैसी मुसीबतों से लट्ठे निकाले उन्होंने बर्फ़ में से। कुछ न पूछो! और चौधरी, वह उसी तरह अपना घोड़ा कुदाता चला गया। देखा तुमने, उस अकेले आदमी के लिए रास्ता तंग था! चौधरी की त्योरी चढ़ती, देहातियों की जान सूख जाती, वह हँस देता, तो सब चहक उठते, नाक-भौं सिकोड़ लेता, तो सबके चेहरों का रंग उड़ जाता। चौधरी की बात काट दे, ऐसा माई का लाल पैदा नहीं हुआ था।

"मगर रोमान तो ज़ाहिर है कि जंगल में ही पला था, दुनिया के तौर-तरीक़े वह नहीं जानता था। चौधरी ने इसीलिए उसकी बात का कुछ बुरा नहीं माना।

"चौधरी ने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि तू शादी कर ले। क्यों तू कर ले शादी यह

मुझे मालूम है। ले ले ओक्साना को।'

"'नहीं चाहता मैं शादी करना,' रोमान ने तड़ाक से इंकार दिया। 'नहीं ज़रूरत मुझे बीवी की, ओक्साना ही क्यों न हो वह। बेशक काले चोर से हो जाये उसकी शादी, मेरी बला से!..'

"'तो यह रहा माज़रा!'

"चौधरी ने हुक्म दिया कि कोड़े लाये जायें। रोमान को बाँधकर लिटा दिया गया है। चौधरी ने पूछा –

"'क्यों रे करेगा रोमान शादी?'

"'नहीं,' उसने जवाब दिया, 'नहीं करूँगा।'

"'करो इसकी पिटाई,' चौधरी ने हुक्म दिया।

"बस, फिर क्या था, दे कोड़े पर कोड़ा। ख़ूब खाल उधेड़ी गयी उसकी। रोमान भी बड़ा जानदार आदमी था, पर कब तक सहता कोड़ों की मार। आ गया रास्ते पर।

"'बस करो, बस करो,' उसने कहा। 'कर लूँगा शादी! बेशक उसे शैतान उठा ले जाये, मुझे क्या! मुझे क्या पड़ी है कि एक औरत के लिए इतनी मुसीबत सहूँ। ले आओ उसे, कर लूँगा शादी!'

"चौधरी की ड्योड़ी में एक हँकवा पड़ा रहता था – ओपानास श्वीद्की नाम था उसका। जब रोमान को शादी के लिए ले जा रहे थे, वह ठीक तभी खेत से लौटा। उसने रोमान की विपदा सुनी और फट से जा गिरा चौधरी के पैरों पर। पैरों पर पड़ा हुआ चूमता जाये उन्हें...

"'हुज़ूर, क्या ज़रूरत पड़ी है आदमी को मारने-पीटने की। मुझसे कर दीजिये ओक्साना का ब्याह। क्या मज़ाल कि चूँ भी करूँ...'

"अपने आप तैयार हो गया ब्याह करने को। देखो तो कैसा कमाल का था वह आदमी, भगवान की क़सम!

"रोमान के तो मन के चीते हो गये, बाँछें खिल गयीं। झटपट उठकर खड़ा हो गया, शलवार ठीक की और कहा –

"'लो झंझट निपट गया। भलेमानस, तू क्या थोड़ी देर पहले नहीं आ सकता था? और ये चौधरी भी ख़ूब हैं – हमेशा ऐसा ही करते हैं। इतना भी न हुआ कि पूछ ही लेते कि क्यों भाई, कोई अपनी मर्ज़ी से शादी करने को राजी है। पकड़ लिया आदमी को और करवा दी उसकी पिटाई। धर्म-ईमान वाले लोग भी भला कभी ऐसा करते हैं? छि:!...'

"रोमान तो आदमी था कुछ दूसरे ही ढंग का! चौधरी को भी ख़ातिर में नहीं लाता था। जब ग़ुस्से में आ जाता था, तो क्या हिम्मत किसी की कि उसके मुँह लगे, बेशक चौधरी ही क्यों न हो। मगर चौधरी भी बड़ी चलती रक़म था! उसके

दिमाग़ में कोई दूसरी ही बात थी। फिर हुक्म दे दिया उसने रोमान को घास पर लिटाने का। चौधरी ने कहा –

"'मैं तुझ गधे का भला करना चाहता हूँ और तू नख़रा करता है। अब तू अकेला पड़ा रहता है जैसे भालू गुफा में। तेरे घर जाने में न कोई मज़ा होता है, न कोई लुत्फ़... उधेड़ते जाओ इस पाजी की खाल जब तक कह न उठे – बस करो!... और ओपानास तू! तू जा भाड़ में! तू कौन – मैं ख़ामख़ाह। किसने बुलाया है तुझे तेरी दावत करने को। अपने आप ही मत पड़ इस फेर में, वरना समझ ले रोमान की तरह ही तेरी भी मेहमानी होगी।'

"इस बार रोमान सचमुच ही बहुत ग़ुस्से में था। कोड़े पर कोड़ा पड़ रहा था। जानते हो कैसे थे पहले वक़्तों के लोग? जब पिटाई शुरू करते थे, तो खाल ही उड़ती दिखायी देती थी। मगर रोमान था कि कोड़े खाता रहा और मुँह से कहकर नहीं दिया – बस करो! सहता गया, सहता गया, बहुत देर तक और आख़िर को उसने थूक दिया –

"'बुरा हो तुम्हारा, एक औरत के लिए इस तरह पीट रहे हो एक धर्म-ईमान मानने वाले को! मारते जाते हो, गिनते तक भी नहीं! बस करो अब! राम करे तुम्हारे हाथ टूट जायें! शैतान ने सिखा दिया तुम्हें कोड़े लगाना! पूला समझ लिया है क्या मुझे, जो इस बुरी तरह धुनते चले जा रहे हो। अँधेर है अँधेर, कर लूँगा शादी।'

"चौधरी ने हँसते हुए मज़ाक़ किया –

"'अच्छा ही हुआ, तुम्हारी पिटाई हो गयी। अब तुम शादी के वक़्त बैठ तो पाओगे नहीं, इसलिए नाचते फिरोगे...'

"बड़ा ही मज़ेदार आदमी था चौधरी, बहुत ही मज़े का आदमी था। मगर बाद में उस पर जो गुज़री, भगवान करे धर्म-ईमान वाले किसी आदमी पर न गुज़रे! सच कहता हूँ, भगवान किसी को भी ऐसा बुरा दिन न दिखाये, किसी यहूदी पर भी ऐसी मुसीबत न आये। मैं तो ऐसा ही सोचता हूँ...

"तो ख़ैर, रोमान का ब्याह हो गया। जवान बीवी को घर ले आया। शुरू-शुरू में तो उसे डाँटता-डपटता, कोड़े खाने के ताने-बोलियाँ देता –

"'इस लायक़ थोड़े ही थी तू कि कोई अपनी खाल उधड़वाता।'

"कई बार ऐसा भी हुआ था कि वह जंगल से लौटा और लगा उसे धक्के देकर घर से बाहर निकालने –

"'निकल यहाँ से! नहीं रखनी औरत मुझे अपने झोपड़े में! तेरी छाया भी नहीं देखना चाहता! मेरे झोपड़े में औरत सोये, यह मुझे पसन्द नहीं। दम घुटने लगता है मेरा...'"

"हाँ!"

"मगर बाद में ख़ैर, सब्र का घूँट भर लिया उसने। ओक्साना घर की ख़ूब अच्छी तरह सफ़ाई करती, उसे लीपती-पोतती, बर्तन-भाँडों को चमकाती, सारा घर चमचम करता रहता। रोमान को अनुभव होने लगा कि कुछ बुरी नहीं औरत। धीरे-धीरे आदी हो गया उसका। प्यारे, आदी ही नहीं हो गया, दिल में समा गयी, वह उसे प्यार करने लगा। भगवान की क़सम, झूठ नहीं बोलता हूँ! तो यह रहा रोमान का क़िस्सा। जब अच्छी तरह से जान-समझ गया अपनी बीवी को, तो लगा कहने –

"'भला हो चौधरी जी का, मुझे रास्ते पर डाल दिया। और हाँ, मैं तो सचमुच ही बड़ा बेवक़ूफ़ आदमी था, बेकार कोड़े पर कोड़े खाता रहा। अब देखता हूँ कि कुछ बुरा नहीं रहा। सच तो यह है कि अच्छा ही रहा यह क़िस्सा!'

"इसके बाद बहुत दिन गुज़र गये, मालूम नहीं कितने। एक दिन क्या हुआ कि ओक्साना चारपाई पर लेटकर कराहने-चीख़ने लगी। मैं जो शाम को सोया, तो सुबह उठा। सुनता क्या हूँ कि कोई बारीक-सी आवाज़ में रो रहा है। सोचा, हो न हो, बच्चा जना है ओक्साना ने! सचमुच ऐसा ही निकला भी।

"बहुत समय तक नहीं जिया वह बच्चा इस धरती पर। बस, इतना ही समझो, सुबह से शाम तक। शाम होते तक उसकी आवाज़ बन्द हो गयी... ओक्साना रो पड़ी। रोमान ने उससे कहा –

"'बच्चा तो अब रहा नहीं। जब वही नहीं रहा, तो पादरी को बुलाकर क्या करेंगे। सनोबर के नीचे दफ़ना देते हैं।'

"तो ऐसे कहा रोमान ने। और केवल कहा ही नहीं, झटपट कर भी डाला – छोटी-सी क़ब्र खोदी और उसे दफ़ना दिया। वह देखो, वह रहा पुराना ठूँठ, बिजली मार गयी थी उसे... वही है वह सनोबर का पेड़, जहाँ रोमान ने बच्चे को दफ़नाया था। देखो प्यारे, एक बात बताऊँ तुम्हें, अभी तक ऐसा होता है कि जैसे ही सूरज डूबता है और जंगल के ऊपर जगमगाता सितारा चमकने लगता है, एक चिड़िया उड़ती हुई आती है और चीख़ती है। ओह, कैसा दर्द होता है उसकी चीख़ में! दिल भर-भर आता है उसकी चीख़ सुनकर! यह है बिना बपतिस्मे के भटकने वाली आत्मा! सलीब माँगती है चीख़-चीख़कर। भई, जिन लोगों ने किताबें पढ़ रखी हैं, सब कुछ जानते-समझते हैं, कहा जाता है कि वे उसे शान्ति दे सकते हैं। फिर नहीं उड़ती फिरेगी यह आत्मा... और देखो न, हम लोग तो हैं वनवासी, न कुछ जानें, न समझें। वह बेचारी आत्मा उड़ती-फिरती है, शान्ति और धर्म-ईमान चाहती है और हम बस, इतना ही कह पाते हैं, 'उड़ जा, उड़ जा, बेचारी दुखी आत्मा! कुछ भी तो मदद नहीं कर सकते हम तुम्हारी!' बेचारी रो-धोके उड़ जाती है और फिर आ जाती है। ओह प्यारे, बड़ा रहम आता है बेचारी आत्मा पर!

"कुछ समय बाद ओक्साना भली-चंगी हो गयी, हर रोज़ बच्चे की छोटी-सी

क़ब्र पर जा बैठती। क़ब्र पर जा बैठती और रोती ज़ार-ज़ार, इतने ज़ोर से कि जंगल-भर में गूँजते उसके बैन। इस तरह तड़पती वह अपने बच्चे के लिए। रोमान को बच्चे के मरने का तो ग़म नहीं था, पर ओक्साना के लिए उसे दुख होता। जंगल से लौटता रोमान ओक्साना के क़रीब जा खड़ा होता और उससे कहता –

"'तू तो बिल्कुल पगली हो गयी, बन्द कर यह रोना-धोना! आख़िर रोया भी जाये, तो किसलिए! एक बच्चा मर गया, तो दूसरा हो जायेगा। और इस बार और भी अच्छा हो जायेगा। फिर एक बात और भी है – हो सकता है कि वह मेरा हो ही नहीं। मैं तो नहीं जानता, न। लोग कहते हैं... पर ख़ैर, इस बार जो होगा, वह होगा मेरा बच्चा।'

"जब वह ऐसा कहता, तो ओक्साना बुरा मानती। होता यह कि रोना-धोना बन्द कर देती और लगती उसकी लानत-मलामत करने, उसे जली-कटी सुनाने। मगर रोमान उसकी बातों का बुरा न मानता। वह कहता –

"'किसलिए तू बिगड़ रही है, बक-झक कर रही है? आख़िर मैंने बुरा ही क्या कहा है? यही तो कहा है कि मुझे सच-झूठ की कुछ ख़बर नहीं। सो भी इसलिए कि यहाँ आने के पहले तू मेरी नहीं थी और न जंगल में रहती ही थी। तू रहती थी बड़ों के बीच, लोगों के बीच। अब मैं भला कैसे जान सकता हूँ कि क्या सच है? अब तू जंगल में रहती है, अब सब ठीक है। जब मैं फ़ेदोस्या धाय को बुलाने गाँव गया, तो उसने यही कहा था, 'अरे रोमान, इतनी जल्दी तुम्हारे घर बच्चा भी हो गया।' मैंने उसे जवाब दिया, 'मुझे भला क्या मालूम, जल्दी हुआ है कि देर से...' पर ख़ैर, तू यह अपना रोना-धोना बन्द कर दे, वरना मेरा पारा चढ़ जायेगा और देखना कि मैं कहीं तेरी मरम्मत ही न कर डालूँ।'

"ओक्साना बकबक करती जाती, भौंकती रहती और फिर चुप हो जाती।

"ऐसा भी होता कि वह उसे बुरा-भला कहती रहती, डाँटती जाती और कभी-कभी तो पीठ पर दो-चार हाथ भी जमा देती। मगर जैसे ही रोमान ग़ुस्से में आता, तो ठण्डी पड़ जाती – डरती थी उससे। उसे सहलाती, पुचकारती, चूमती और उसकी आँखों में आँखें डाल देती... और मेरा रोमान था कि बस, मोम हो जाता। देखो न, बात यह है, प्यारे... तुम तो शायद यह सब कुछ नहीं जानते हो, पर मैं ठहरा बूढ़ा-खूसट! बेशक अपनी शादी नहीं की, मगर फिर भी बहुत ज़माना देखा है मैंने। जवान औरत जब मीठे-मीठे प्यार करने लगती है, तो ख़सम को चाहे कितना भी ग़ुस्सा क्यों न आया हो, चुटकी बजाते में हवा हो जाता है। मैं अच्छी तरह समझता हूँ इनके तिरिया-चरित्तर! ओक्साना बड़ी चिकनी-सी थी, एकदम जवान। अब तो ऐसी कहीं नज़र ही नहीं आती हैं। ईमान की बात कहूँ तुमसे, दोस्त, अब कहाँ वे औरतें, जो पहले होती थीं।

"एक बार क्या हुआ कि जंगल में नरसिंघा बज उठा – तरा-ता,

तरा-तरा-ता-ता-ता। ऐसी गूँज उसकी जंगल में कि क्या कहने, बहुत ही अच्छा लगा। मैं तब छोकरा-सा था, नहीं जानता था कि वह क्या चीज़ है। देखता क्या हूँ कि पक्षी घोंसलों से निकल-निकलकर उड़ रहे हैं, पंख फड़फड़ा रहे हैं, चीख़ रहे हैं, ख़रगोश कान दबाये हुए इधर-उधर दीवाने-से भागे जा रहे हैं। सोचा, शायद यह कोई दरिन्दा है, जो पहले कभी नहीं देखा मैंने। वह दरिन्दा ही इतने अच्छे ढंग से चीख़ता है। पर नहीं, कोई दरिन्दा-वरिन्दा नहीं, वह तो चौधरी था, जो घोड़े पर सवार चला आ रहा था और नरसिंघा बजा रहा था। चौधरी के पीछे-पीछे कुत्तों की ज़ंजीरें थामे हुए घोड़ों पर हँकवे आ रहे थे। सभी हँकवों में से ख़ूबसूरत था वही ओपानास श्वीद्की। वह चौधरी के पीछ-पीछे था। नीले कोट में अपनी छटा दिखाता हुआ। उसकी टोपी के ऊपरी हिस्से पर कढ़ाई का सुनहरा काम किया हुआ था। घोड़ा उसका अठखेलियाँ कर रहा था। कन्धों से लगी हुई बन्दूक़ चमक रही थी और पेटी के साथ एक तरफ़ को लटका हुआ था बन्दूरा*। बहुत मन चढ़ा हुआ था ओपानास चौधरी के। भई, मन तो चढ़ना ही था, ख़ूब बढ़िया बजाता था वह बन्दूरा और गाता भी था तो ख़ूब ही। कैसा बाँका, कैसा ख़ूबसूरत आदमी था यह ओपानास, यह मत पूछो! बला का ख़ूबसूरत था! चौधरी भी भला क्या बराबरी कर सकता था ओपानास की इस मामले में! चौधरी की चाँद निकल आयी थी, नाक उसकी लाल थी और आँखें – ख़ैर, वैसे तो वे हँसती हुई थीं, मगर ओपानास की आँखों के सामने तो पानी भरती थीं। होता यह था कि ओपानास जैसे ही मेरी ओर देखता, तो मुझ छोकरे का भी, मैं कोई लड़की थोड़े ही था, हँसने को मन होता। सुनने में आया था कि ओपानास के बाप-दादा ज़ापोरोज्ये के कज़्ज़ाक थे, वहाँ के मैदानों में आज़ादी की ज़िन्दगी बिताते थे। वहाँ के लोग बड़े हट्टे-कट्टे, बड़े सुन्दर-सुडौल और फुर्तीले होते थे। अब प्यारे, तुम खुद ही सोचकर देख लो कि कहाँ तो वे लोग जो भाला लेकर पक्षियों की तरह मैदानों में घोड़ों पर उड़े फिरते हैं और कहाँ हम लोग हैं कि लकड़ी काटते-काटते ही उम्र बीत जाती है। फ़र्क़ तो होना ही हुआ।

"मैं भागकर बाहर आया। देखा कि चौधरी दरवाज़े तक आ पहुँचा है। उसका घोड़ा रुका और उसी वक़्त हँकवों के घोड़े भी रुक गये। रोमान झोपड़े से बाहर निकला, उसने चौधरी के घोड़े की लगाम थामी और चौधरी नीचे उतरा। रोमान ने झुककर नमस्कार किया।

"'कैसे गाड़ी चल रही है?' चौधरी ने रोमान से पूछा।

"'कौन-सी गाड़ी, हुज़ूर?'

"तो देखा तुमने, रोमान चौधरी को उसी तरह जवाब नहीं दे सका जैसे देना

---

* एक उक्राइनी बाजा। – सं.

चाहिए था। चौधरी के हँकवों को हँसी आ गयी और चौधरी भी हँस दिया।

"'अरे भाई, ज़िन्दगी की गाड़ी।'

"'सो तो ठीक चल रही है, हुज़ूर!'

"'शुक्र है भगवान का,' चौधरी ने कहा। 'कहाँ है तेरी बीवी?'

"'कहाँ होगी बीवी? वहीं है, जहाँ उसे होना चाहिए। घर में...'

"'ठीक है, हम घर में चलेंगे,' चौधरी ने कहा, 'और देखो तुम लोग तब तक घास पर कालीन बिछा दो और बाक़ी सब चीज़ें तैयार कर लो। पहली बार आज हम इस जवान जोड़े को बधाई देंगे।'

"इतना कहकर वे चल दिये घर के भीतर – चौधरी और ओपानास, उनके पीछे-पीछे नंगे सिर रोमान और फिर बोगदान। बोगदान – यह था बड़ा हँकवा और चौधरी का सबसे अधिक भरोसे का नौकर। ऐसे नौकर भी अब इस धरती पर नहीं रहे। वह बूढ़ा आदमी था, नौकरों-चाकरों से बहुत कड़ाई से पेश आता और चौधरी के आगे-पीछे कुत्ते की तरह दुम हिलाता-फिरता। चौधरी के सिवा कोई नहीं था बोगदान का इस दुनिया में। सुनने में आया था कि जब बोगदान के माँ-बाप चल बसे थे, तो उसने बड़े चौधरी से कहा था, 'हुज़ूर, मुझे अपना असामी बना लो, मैं अपना शादी-ब्याह करना चाहता हूँ।' बड़े चौधरी नहीं माने। उसे अपनी ड्योढ़ी में रख लिया बेटे की सेवा करने के लिए और कहा, 'बस, यहीं अपनी माँ, बाप और बीवी समझो'। बोगदान ने चौधरी के बेटे की जी-जान से सेवा की, उसे घुड़सवारी सिखा दी, बन्दूक़ चलाने में उस्ताद बना दिया। चौधरी का बेटा बड़ा हुआ और ख़ुद चौधरी बन गया। बूढ़ा बोगदान तब भी चौधरी के पीछे-पीछे कुत्ते की तरह लगा रहा। ओह, तुम्हें बताता हूँ, बहुत कुछ भला-बुरा कहा लोगों ने बोगदान को, बहुत लोगों को रुलाया-सताया उसने... सब इसी चौधरी के लिए। चौधरी के मुँह से जो निकलता, वही बोगदान पूरा करता। सच तो यह है कि अगर चौधरी हुक्म देता, तो वह आव देखता न ताव, सगे बाप के भी टुकड़े-टुकड़े कर डालता...

"हाँ तो मैं था छोकरा-सा, उनके पीछे-पीछे चल दिया झोपड़े में। बस, योंही मन में जिज्ञासा। जिधर को चौधरी जाये, मैं भी इधर ही उसके पीछे-पीछे।

"देखता क्या हूँ कि चौधरी झोपड़े के बीचोबीच जाकर खड़ा हो गया है, मूँछों पर ताव देता हुआ, मुस्कुरा रहा है। रोमान भी उसके पीछे खड़ा था टोपी को हाथों से मलता हुआ। पर ओपानास दीवार के साथ पीठ लगाये अकेला खड़ा था, लुटा-लुटा-सा, बुरे मौसम में बलूत के पेड़ की तरह। हवाइयाँ उड़ रही थीं उसके चेहरे पर, मुरझाया-मुरझाया-सा था वह...

"वे तीनों ओक्साना की ओर घूमे। सिर्फ़ अकेला बूढ़ा बोगदान एक कोने में एक तख़्ते पर बैठ गया, बाल नीचे को गिराकर। वह चौधरी के हुक्म के इन्तज़ार में था। ओक्साना कोने में चूल्हे के पास खड़ी थी, आँखें झुकी हुई थीं उसकी और

उसके गाल ऐसे लाल थे जैसे जई के पौधों के बीच पोस्त का लाल फूल। ओह, वह तो जैसे साफ़ तौर पर यह समझ रही थी कि उसके कारण कोई न कोई मुसीबत आयेगी। देखो प्यारे, यह भी मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि अगर तीन आदमी एक ही औरत की ओर देखने लगते हैं, तो समझ लो ज़रूर कोई न कोई आफ़त आयेगी। अगर और अधिक बुरा नहीं होगा, तो हाथापाई तो होगी ही। मैं अच्छी तरह जानता हूँ यह, खुद अपनी आँखों से देख चुका हूँ।

"चौधरी ने हँसकर कहा,

"'रोमान बता तो, अच्छी बीवी दिलवायी है न मैंने तुझे?'

"'ठीक है, औरत जैसी औरत है, ख़ासी है, सरकार।'

"ओपानास ने ये शब्द सुने, तो कन्धे उचकाये, नज़र ऊपर की और ओक्साना की ओर देखकर अपने आपसे कहा –

"हाँ, बीवी तो है! काश किसी इस जैसे बुद्धू के पल्ले न पड़ती।'

"रोमान के कानों में पड़ गये ये शब्द, ओपानास की ओर मुड़ा और बोला –

"'ओपानास मियाँ, किसलिए आपको मैं बुद्धू नज़र आता हूँ, ज़रा बताइये तो...'

"'इसलिए हो तुम बुद्धू कि अपनी बीवी की रखवाली नहीं कर सकते हो।'

"देखा कैसी बात कही उससे ओपानास ने! चौधरी ने पाँव पटका, बोगदान ने सिर झटका। रोमान घड़ी-भर को सोच में पड़ गया। फिर उसने सिर ऊपर उठाया और चौधरी की ओर देखते हुए कहा –

"'किससे रखवाली करनी है मुझे उसकी,' ओपानास से कहते और चौधरी की ओर देखते हुए उसने पूछा। 'जंगली जानवरों के सिवा यहाँ है ही कौन, आदमी तो आदमी, शैतान भी नहीं। ले-देकर कभी-कभार चौधरी आ जाते हैं। किससे बचाना है मुझे उसे। देख रे कज़्ज़ाक बच्चे, मुझे गुस्सा मत दिला, वरना ऐसे झोंटे खींचूँगा कि अक्ल ठिकाने आ जायेगी।'

"मार-पिटाई की नौबत बस आ ही जाती। वह तो चौधरी बीच में आ गया, उसने पाँव पटका और वे ठण्डे हो गये।

"'चुप हो जाओ, शैतान के बच्चो!' चौधरी ने कहा। 'लड़ने-भिड़ने थोड़े ही आये हैं हम यहाँ। इस जवान जोड़े को बधाई देनी है हमें तो। और रात को शिकार के लिए जाना है दलदल में। चलो, आओ मेरे पीछे!'

"चौधरी मुड़ा और झोपड़े से बाहर चला। इसी बीच हँकवों ने वृक्षों के नीचे खाने-पीने की सारी तैयारी कर दी थी। चौधरी के पीछे-पीछे बोगदान था। ओपानास ने रोमान को ड्योढ़ी में रोक लिया।

"'मुझसे नाराज़ मत हो, मेरे भाई,' कज़्ज़ाक ने कहा। 'जो कुछ ओपानास तुझसे कहता है, उसे ध्यान से सुन। देखा था न तूने कि कैसे मैं चौधरी के पैरों में

लोटा था, उसके जूते चूमे थे मैंने कि वह ओक्साना का हाथ मेरे हाथ में दे दे? भगवान तेरा भला करे, भले आदमी... पादरी ने तुम दोनों की शादी करवायी है, शायद ऐसा ही लिखा था क़िस्मत में! मगर अब मेरा दिल यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि यह जानी दुश्मन, यह चौधरी उस तेरी बीवी की और तेरी खिल्ली उड़ाये। हाय, कोई नहीं जानता कि क्या गुज़रती है मेरे दिल पर... जी में आता है कि इस चौधरी के बच्चे और उस लौण्डिया को बिस्तर के बजाय गीली मिट्टी में सुला दूँ...'

"रोमान ने ध्यान से उसकी तरफ़ देखा और पूछा –

"'ए कज़्ज़ाक, कहीं सचमुच तेरा दिमाग़ तो नहीं चल निकला?'

"ओपानास ने बहुत धीमे-से इसका जवाब दिया, जो मैं नहीं सुन सका। वे ड्योढ़ी में खुसुर-फुसुर करते रहे। फिर रोमान ने उसका कन्धा थपथपाकर कहा –

"'ओह ओपानास, ओपानास! कैसे-कैसे दुष्ट और मक्कार लोग पड़े हैं इस दुनिया में! मुझे कुछ ख़बर ही नहीं। मैं जंगल का वासी, कैसे जान पाता यह सब। ऐ चौधरी, तेरी मौत ही तुझे यहाँ खींच लायी है!...'

"'अच्छा अब तू जा और देख किसी को कानोकान ख़बर नहीं होनी चाहिए इस बात की। बोगदान से तो बहुत ही सँभलकर रहना। तू आदमी है कम-समझ और चौधरी का वह कुत्ता है बड़ा धूर्त्त! और सुन चौधरी की वोद्का कहीं बहुत मत पी जाना। अगर वह तुझे अपने हँकवों के साथ दलदल की तरफ़ भेजे और ख़ुद यहाँ ठहरना चाहे, तो तू पुराने बलूत तक उन्हें ले जाकर दलदल की फेर वाली डगर की तरफ़ इशारा करके कहना – तुम लोग इधर से जाओ और मैं जंगल के बीच से, सीधे रास्ते से आऊँगा। फिर झटपट यहाँ लौट आना।'

"'ठीक है,' रोमान ने जवाब दिया। 'शिकार की तैयारी कर लूँ। बन्दूक़ में छर्रे नहीं, गोली भर लेता हूँ – परिन्दों का नहीं, मोटे भालू का शिकार जो करना है मुझे।'

"तो वे बाहर आये। चौधरी तो पहले से ही कालीन पर डटा हुआ था। हुक्म दिया उसने कि बोतल और प्याली बढ़ायी जाये। उसने वोद्का प्याली में डाली और रोमान के सामने कर दी। बहुत कमाल की थी चौधरी की बोतल और प्याली! और वोद्का – वह उनसे भी कहीं बढ़-चढ़कर। एक प्याली गले से नीचे उतरी नहीं कि जी बाग़-बाग़। दूसरी प्याली पी, तो दिल उछलकर सीने में। आदमी को पीने की आदत न हो, तो तीसरी प्याली पीते ही ज़मीन पर लोट-पोट होता फिरे, अगर औरत उठाकर तख़्ते पर न लिटा दे।

"देखो, तुम्हें बताता हूँ, बहुत चालाक था चौधरी! यह थी उसकी चाल कि रोमान को पिला-पिलाकर बेसुध कर दे। मगर ऐसी वोद्का कहाँ से आती, जो रोमान पर अपना जादू चला पाती। वह चौधरी के हाथ से प्याली ले-लेकर पीता

जाता था – एक प्याली पी उसने, दूसरी पी, तीसरी पी। आँखें ऐसी हो गयीं जैसे कि भेड़िये की, अँगारे जैसी लाल। और हाँ, अपनी काली–काली मूँछों को ताव देता रहा। चौधरी तो झल्ला उठा –

"'ले और पी कमीने! कैसे मज़े से प्याली पर प्याली चढ़ाता जा रहा है, पलक तक नहीं झपकता है! कोई दूसरा होता, तो कभी का चीं बोल गया होता, रो दिया होता। और यह, देखो तो इसे, भले लोगो, ऊपर से हँस रहा है...'

"दुष्ट चौधरी अच्छी तरह जानता था कि अगर कोई आदमी उसकी वोद्का पीकर रो पड़ता है, तो घड़ी–भर में वह अपनी खोपड़ी मेज़ पर पटक देता है। पर इस बार उसे जिस पट्ठे से पाला पड़ा, वह दूसरी ही मिट्टी का निकला।

"'मैं भला क्यों रोने लगा?' रोमान ने कहा। 'यह तो अच्छा भी न होता। मेरे मेहरबान चौधरी, आप तो मुझे बधाई देने आये हैं और मैं क्या औरतों की तरह रोने बैठ जाता। शुक्र है भगवान का कि ऐसी कोई बात ही नहीं कि मैं आँसू बहाऊँ। मैं क्यों रोऊँ, अच्छा है रोयें मेरे दुश्मन।'

"'इसका मतलब है कि तुम ख़ुश हो?' चौधरी ने पूछा।

"'बेशक! न ख़ुश होने की वजह ही क्या हो सकती है?'

"'याद है कि कैसे कोड़ों की मदद से तुम्हारी शादी की थी?'

"'वह भला कैसे भूल सकता हूँ! इसीलिए तो कहता हूँ कि बेसमझ था, नहीं जानता था कि क्या मीठा है और क्या कड़वा है। कोड़ों की मार कड़वी थी, मगर मैंने उसे औरत से बेहतर समझा। बहुत–बहुत धन्यवाद देता हूँ आपको, मेरे कृपालु चौधरी, कि आपने मुझे, उल्टी खोपड़ी के आदमी को शहद चाटना सिखा दिया।'

"'ठीक है, ठीक है,' चौधरी ने उसे कहा। 'इसलिए अब तू भी मेरा एक काम कर – मेरे हँकवों के साथ दलदल में जा और बहुत–से परिन्दे मार ला। शिकार का मज़ा तो यह है कि तू जंगली तीतर मार लाये।'

"'कब आप हमें भेजना चाहते हैं दलदल में?' रोमान ने पूछा।

"'बस, यही थोड़ी और पीते हैं, ओपानास का गाना–बजाना होगा और फिर तुम लोग चल देना भगवान का नाम लेकर।'

"रोमान ने चौधरी की ओर देखते हुए कहा –

"'यह तो आपने बड़ी मुश्किल कर दी – देर हो चुकी है, दलदल दूर है, फिर जंगल में ज़ोर की हवा चल रही है और रात को आयेगा तूफ़ान। ऐसा होशियार परिन्दा अब कहाँ से आयेगा कि जिसका शिकार हो सके?'

"चौधरी को इस बीच चढ़ गयी थी और वह बुरी तरह चिढ़ गया। चौधरी के हँकवे भी कानाफूसी करने लगे कि 'रोमान ठीक तो कहता है, जल्द तूफ़ान आने वाला है'। चौधरी के कान में भी भनक पड़ गयी और बस क्या था – आगबबूला हो उठा, प्याली फेंक दी और जैसे ही उसने सबको एक नज़र घूरा कि सब ठण्डे

पड़ गये।

"नहीं डरा तो अकेला ओपानास! चौधरी के कहने पर वह बन्दूरा हाथ में थामे गाने-बजाने के लिए सामने आया। वह बन्दूरा के तार कसने लगा। चौधरी को बग़ल से झाँकते हुए उसने कहा –

"मेहरबान चौधरी! ज़रा सोचिये तो सही! कभी कहीं ऐसा देखा-सुना है कि रात को, और सो भी आँधी-पानी के समय और ऐसे जंगल में जहाँ हाथ को हाथ सुझायी न दे, कोई पक्षियों का शिकार करने गया है?'

"ऐसा दिलेर था ओपानास! ज़ाहिर था कि बाक़ी थे चौधरी के दास, जान निकलती थी उनकी उसके सामने, और वह था आज़ाद आदमी, कज़्ज़ाक बच्चा। छोटा-सा ही था कि बन्दूरा बजाने वाला एक बूढ़ा कज़्ज़ाक उसे अपने साथ ले आया था उक्रइना से। वहाँ एक नगर है ऊमान, जहाँ कोई गड़बड़ हो गयी थी। उसी गड़बड़ में भाग लेने के लिए बूढ़े कज़्ज़ाक की आँखें निकाल ली गयी थीं, कान काट दिये गये थे और उस हालत में ही उसे वहाँ से चलता कर दिया गया था। इसी छोकरे ओपानास की उँगली पकड़े-पकड़े वह नगर-नगर, गाँव-गाँव घूमता रहा और फिर हमारे देश में आ निकला। बूढ़े चौधरी को गाने सुनने का शौक़ था, उसने उसे अपने पास रख लिया। बूढ़ा कज़्ज़ाक चल बसा और ओपानास चौधरी की ड्योढ़ी पर ही रहा, वहीं बड़ा हुआ। वह नये चौधरी को भी अच्छा लगा और इसलिए कभी-कभार उसकी चुभती हुई बात भी सह जाता था। कोई और ऐसी बात कह देता, तो वह उसकी खाल खिंचवाकर उसमें भुस भरवा देता।

"इस बार भी ऐसा ही हुआ। शुरू में तो चौधरी का पारा चढ़ा। ऐसा लगा कि वह कज़्ज़ाक की मरम्मत कर डालेगा, मगर नहीं, उसने झल्लाकर ओपानास से कहा –

"'अरे ओपानास, ओपानास, तू आदमी तो है समझदार, मगर इतना नहीं जानता कि दरवाज़े के बीच नाक नहीं डालनी चाहिए। अगर किसी ने दरवाज़ा बन्द कर दिया तो...'

"देखा तुमने कैसी पहेली बुझवायी चौधरी ने उससे! कज़्ज़ाक फ़ौरन बात समझ गया और उसने जवाब दिया एक गाने में। अगर कज़्ज़ाक के गाने का मतलब चौधरी की समझ में आ जाता, तो बाद में शायद उसकी बीवी को उसकी लाश पर आठ-आठ आँसू न बहाने पड़ते।

"'धन्यवाद तुम्हारा चौधरी कि तुमने अक्ल सिखायी,' ओपानास ने कहा। 'अब मैं सुनाता हूँ तुम्हें गाना, तुम सुनो उसे।'

"इतना कहकर उसने बन्दूरे के तार छेड़े।

"फिर उसने सिर ऊपर उठाकर आकाश को देखा कि कैसे वहाँ बाज़ पंख फैलाता है, कैसे वहाँ हवा बादलों को इधर-उधर भगाती है, उनसे खिलवाड़

करती है। उसने कान खड़े किये और सुना कि सनोबर के वृक्ष कैसे ज़ोर से साँय-साँय करते हैं।

"फिर से उसने बन्दूरे के तार झनझनाये।

"प्यारे, तुमने नहीं सुना कैसे बजाता था ओपानास श्वीद्की बन्दूरा! अब कहाँ सुन पाओगे तुम ऐसा बन्दूरा! वैसे बाजा-वाजा तो वह कुछ ख़ास नहीं है, पर जब किसी उस्ताद के हाथ में आ जाता है, तो समाँ बाँध देता है। होता यह था कि जब ओपानास की उँगलियाँ बन्दूरे के तारों पर दौड़ती थीं, तो वे बता देते थे कि बुरे मौसम में कैसे अँधेरा जंगल साँय-साँय करता है, स्तेपी के ख़ाली समतल मैदानों में हवा कैसे चीख़ती-दहाड़ती है और टीले पर बनी कज़्ज़ाक की क़ब्र पर कैसे सूखी घास सरसराती है।

नहीं मियाँ, नहीं रहे अब असली बन्दूरा बजाने वाले! आजकल यहाँ सभी तरह के लोग आते हैं। ऐसे कि जो सिर्फ़ पोलेस्ये ही नहीं, और भी बहुत-सी जगहों पर घूम चुके हैं। वे पूरा उक्रइना देख पाये हैं - चिगीरिनो, पोल्तावा, कीयेव और चेर्कासी का चक्कर लगा आये हैं। वे कहते हैं कि बन्दूरा बजाने वाले अब नहीं रहे, मेलों-ठेलों और बाज़ार-मण्डियों में भी अब उनका बन्दूरा सुनायी नहीं देता। भीतर घर में मेरे पास एक पुराना बन्दूरा अभी तक दीवार से लटका हुआ है। ओपानास ने इसी पर मुझे बजाना सिखाया था। मगर मुझसे किसी ने नहीं सीखी यह उस्तादी। अपने तो चलाचली के दिन हैं और जैसे ही साँस बन्द होगी, वैसे ही बन्दूरे की झंकार भी हमेशा के लिए सो जायेगी। ढूँढ़े से भी नहीं मिलेगा दुनिया में कोई बन्दूरा बजाने वाला। यह है असली बात!

"ओपानास ने धीमी-धीमी आवाज़ में गीत गाया। ओपानास की आवाज़ ऊँची नहीं थी और वह गाता था दर्द और सोच में डूब-डूबकर। उसका गीत दिल पर मानो चोट करता था। और प्यारे, कज़्ज़ाक ने वह गाना चौधरी के लिए अपने मन से ही गढ़ा था। फिर कभी सुनायी नहीं पड़ा वह गाना। बाद में कई बार जब मैंने ओपानास से कहा कि गुरु वह गाना सुना दो, वह राजी नहीं हुआ।

"'जिसके लिए था गाना, वही अब दुनिया में नहीं रहा,' वह कहता।

"उस गाने में कज़्ज़ाक ने चौधरी को सब कुछ सही-सही बता दिया था कि उसके साथ क्या बीतने वाली है। चौधरी सुनता रहा, रोता रहा, आँसू बह-बहकर मूँछों तक आते रहे, पर ज़ाहिर है कि कुछ नहीं समझा वह उसका मतलब।

"वह गाना तो मुझे याद नहीं, योंही कुछ पंक्तियाँ अटकी रह गयी हैं दिमाग़ में। कज़्ज़ाक ने इवान नाम के किसी चौधरी को सम्बोधित करके वह गाना गाया था।

"'इवान चौधरी, अरे चौधरी!
तू सचमुच बेहद समझदार...

इतना तो है मालूम तुझे
जब बाज़ गगन में उड़ता है
कौवे को मार गिराता है...
इवान चौधरी, अरे चौधरी!...
पर यह तुझको मालूम नहीं :
यह भी इस दुनिया में होता,
जब बाज़ घोंसले में घुसता,
कौवे के घर में जाता है,
तब कौवा मार गिराता है...
इवान चौधरी, अरे चौधरी...'

"कुछ इसी तरह से आगे था वह गाना। मुझे लगता है कि मानो अभी भी मैं सुन रहा हूँ यही गाना और देख रहा हूँ उन लोगों को अपने सामने। मैं देखता हूँ कि कज़्ज़ाक बन्दूरा लिये सामने खड़ा है, चौधरी कालीन पर बैठा है, गर्दन झुकाये और रो रहा है। उसके नौकर-चाकर सभी ओर से उसे घेरे हुए हैं, एक-दूसरे को कोहनियाँ मार रहे हैं, बूढ़ा बोगदान सिर झुला रहा है... जंगल जैसे इस समय है वैसे ही तब भी साँय-साँय कर रहा था, धीरे-धीरे और दर्द पैदा करते हुए बज रहा था बन्दूरा और कज़्ज़ाक गा रहा था कि कैसे चौधरी की बीवी, इवान की बीवी उसकी लाश पर बिलख-बिलखकर रो रही है -

"'अरे चौधरी की बीवी अब
तड़प-तड़पकर नीर बहाये
हाय! चौधरी के उस शव पर
काला कौवा शोर मचाये।'

"चौधरी नहीं समझा, तो नहीं समझा इसका मतलब। उसने आँसू पोंछे और कहा -

"'रोमान, हो जाओ तैयार! ए छोकरो, हो जाओ घोड़ों पर सवार! और ओपानास तू भी इनके साथ जायेगा - बस, काफ़ी हो गया गाना-बजाना!.. अच्छा है तेरा गाना, मगर जो कुछ गीतों-गानों में गाया जाता है, वह दुनिया में सचमुच कभी नहीं होता।'

"उधर कज़्ज़ाक का यह हाल था कि दिल पिघलकर मोम हो गया था, आँखों में कुहासा-सा छा गया था।

"'ओह चौधरी, चौधरी,' ओपानास ने कहा, 'हमारे यहाँ के बड़े-बूढ़े कहते हैं कि कहानी में भी सच होता है, गाने में भी सच होता है। मगर कहानी का सच होता है लोहे के समान। बार-बार लोगों के हाथों में घूमता रहता है, तो ज़ंग लग

जाता है उसे... मगर गाने का सच है सोने के समान। कितना ही बेशक घूमे लोगों के हाथों में, कभी ज़ंग नहीं लगता उसे... हाँ, तो ऐसा कहते हैं बड़े-बूढ़े!'

"चौधरी ने हाथ झटक दिया –

"'कहते होंगे ऐसा तुम्हारे देश में, मगर हमारे यहाँ नहीं कहते ऐसा... अच्छा अब तू चलता-फिरता नज़र आ – कान खा गया है।'

"कज़्ज़ाक घड़ी-भर तो चुप रहा और फिर अचानक चौधरी के पैरों पर गिर पड़ा ज़मीन पर। मिन्नत करते हुए बोला –

"मेरी मानो, चौधरी! घोड़े पर सवार होकर अपनी बीवी के पास चले जाओ। बहुत बुरे-बुरे ख़याल आ रहे हैं मेरे मन में।'

"अब क्या था, चौधरी लाल-पीला हो गया। उसने कज़्ज़ाक को ठोकर मारकर कुत्ते की तरह दुत्कार दिया –

"'दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से! तू कज़्ज़ाक नहीं, औरत है, औरत! चला जा यहाँ से, वरना समझ ले कि तेरी शामत आयी... अरे कमीनो, तुम क्या मुँह ताक रहे हो खड़े-खड़े? या फिर यह कि मैं अब तुम्हारा चौधरी नहीं रहा? ऐसी ख़बर लूँगा तुम्हारी कि जैसी मेरे बाप-दादा ने कभी तुम्हारे बाप-दादा की भी न ली होगी!...'

"ओपानास ऐसे उठकर खड़ा हुआ मानो उमड़ता-घुमड़ता काला बादल हो। उसने रोमान की आँखों में झाँका। रोमान एक तरफ़ को खडा था बन्दूक़ पर कोहनियाँ टिकाये जैसे कि कुछ हुआ ही न हो।

"कज़्ज़ाक ने अपना बन्दूरा ज़ोर से पेड़ पर दे मारा! टुकड़े-टुकड़े हो गये बन्दूरे के। जंगल-भर में उसकी आह-कराह गूँज उठी।

"'तो जाये जहन्नुम में, मेरी बला से! जो आदमी अक्ल की बात पर कान नहीं देता, उसका वहाँ, दूसरी दुनिया में दिमाग़ ठिकाने कर दिया जायेगा... चौधरी, मुझे लगता है कि तुम्हें वफ़ादार नौकर की ज़रूरत नहीं।'

"चौधरी उसकी बात का जवाब भी नहीं दे पाया कि ओपानास कूदकर जा बैठा अपने घोड़े पर और चल दिया। हँकवे भी घोड़ों पर सवार हो गये। रोमान ने बन्दूक़ कन्धे पर लटकायी और वह भी जा चढ़ा अपने घोड़े पर। हाँ, मगर घर के पास से जाते हुए उसने पुकारकर ओक्साना से कहा –

"'छोकरे को सुला दे, ओक्साना! उसके सोने का वक़्त हो गया। हाँ, और सुनो, चौधरी के लिए भी बिस्तर लगा दो।'

"बस, क्या था, झटपट सब एक ही रास्ते से जंगल की ओर चल दिये। चौधरी घर के अन्दर गया। बाहर सिर्फ़ पेड़ के साथ उसका घोड़ा बँधा रह गया। अँधेरा गहराने लगा था, जंगल शोर मचा रहा था और बारिश अपना टपाटप का गीत अलाप रही थी, ठीक वैसे ही जैसे कि इस समय... ओक्साना ने मुझे घास-फूस

की कोठरी में लिटा दिया, मुझ पर सलीब का निशान बनाया... कुछ देर बाद मैंने ओक्साना के रोने की आवाज़ सुनी।

"ओह, मैं तब बिल्कुल छोटा-सा था, छोकरा-सा। कुछ भी तो समझ नहीं पर रहा था कि मेरे इर्द-गिर्द यह क्या गड़बड़-घोटाला हो रहा है! कोठरी में सिकुड़ा-सिमटा पड़ा रहा, जंगल में तूफ़ान का गीत सुनता रहा और मेरी आँख लगी झपकने।

"ओह, अचानक मुझे घर के क़रीब किसी के पैरों की आहट सुनायी दी... कोई पेड़ के पास पहुँचा और उसने चौधरी का घोड़ा खोल लिया। घोड़ा हिनहिनाया, उसने पाँव पटका। वह घोड़े को ले भागा जंगल में, घोड़े की टापें सुनायी देती रहीं और फिर बन्द हो गयीं... फिर कोई घोड़ा दौड़ाता हुआ आया, और इस बार घर के क़रीब आ पहुँचा। वह घोड़े से कूदा और सीधे खिड़की की तरफ़ लपका।

"'ओ चौधरी, ओ चौधरी!..' बूढ़ा बोगदान ऊँची आवाज़ में चिल्लाया। 'अरे चौधरी, जल्दी से उठ बैठो! नीच कज़्ज़ाक के मन में खोट है। उसी ने तुम्हारा घोड़ा जंगल में डाल दिया है।'

"बूढ़ा बोगदान अपनी बात कह भी नहीं पाया था कि किसी ने उसे पीछे से आ दबाया। फिर जैसे कोई भारी-भरकम चीज़ गिरती है, ऐसा धमाका हुआ। मेरा तो दम निकल गया...

"चौधरी ने दरवाज़ा खोला, बन्दूक़ लिये हुए बाहर निकला। ड्योढ़ी में ही रोमान ने उसे धर लिया, सीधा झोंटों पर हाथ मारा और धड़ाम से पटक दिया ज़मीन पर...

"चौधरी ने समझ लिया कि अब मारे गये। लगा गिड़गिड़ाने –

"'अरे रोमान! छोड़ दे मुझे। मेरी नेकी का यही बदला दे रहा है तू मुझे?'

"रोमान ने जवाब दिया,

"'अच्छी तरह याद है मुझे, दुष्ट चौधरी! तूने जो नेकी की है मेरे साथ और मेरी बीवी के साथ। अब मैं तुझे तेरे एहसान का पूरा-पूरा बदला दूँगा...'

"तब चौधरी ने ओपानास की दुहाई दी –

"'अब तू ही मेरी मदद को आ, मेरे वफ़ादार सेवक! मैं तो तुझे बेटे की तरह मानता हूँ।'

"ओपानास ने जवाब दिया –

"'तूने अपने वफ़ादार सेवक को कुत्ते की तरह दुत्कार दिया था। तू मुझे ऐसे प्यार करता था जैसे लाठी पीठ से प्यार करती है और अब ऐसे जैसे कि पीठ लाठी से... मैंने तो तेरे सामने नाक रगड़ी, तेरी मिन्नत-समाजत की – मगर तूने कान ही नहीं दिया...'

"अब चौधरी ने ओक्साना की दुहाई दी –

"'मेरी ओक्साना, अब तू ही आगे आ, मुझे बचा। तू दिल की बहुत भली है।'

"ओक्साना आगे आयी तो, पर हाथ फैलाकर रह गयी –

"'चौधरी, मैं तुम्हारे सामने गिड़गिड़ायी, हाथ-पाँव जोड़े – तुमसे कहा कि मेरी जवानी पर रहम करो, मेरी आबरू नहीं लूटो, मैं विवाहिता नारी हूँ। पर नहीं, तुम्हें दया नहीं आयी मुझ पर और अब ख़ुद मेरी दुहाई देते हो... मैं भला कर ही क्या सकती हूँ, बेबस नारी?'

"'छोड़ दो मुझे,' चौधरी फिर चिल्लाया, 'मेरी वजह से तुम सब साइबेरिया में पड़े सड़ोगे...'

"'हमारी चिन्ता नहीं करो, चौधरी,' ओपानास ने कहा, 'रोमान तो तुम्हारे हँकवों से पहले दलदल में जा पहुँचेगा। रही मेरी बात तो तुम्हारी कृपा से मैं दम का दम हूँ, अपने सिर की फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं मुझे। बन्दूक़ कन्धे पर लटकाऊँगा और जंगल में जा पहुँचूँगा... तगड़े और मज़बूत कुछ छोकरे अपने साथ मिला लूँगा और बस, जंगल में मंगल रहेगा... रात को जंगल से बाहर सड़क पर पहुँच जाया करेंगे और जैसे ही कोई गाँव नज़र आयेगा, सीधे चौधरी की हवेली पर धावा बोलेंगे। ए रोमान, ज़रा उठाना भई चौधरी मेहरबान को, बाहर बारिश दिखा दें।'

"चौधरी की जब एक न चली तो लगा ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने। रोमान था कि अपने आप भालू की तरह गुर्रा रहा था और कज़्ज़ाक उड़ा रहा था मज़ाक़। तो इस तरह वे बाहर निकले।

"मुझे तो डर ने आ दबोचा। मैं घर के अन्दर भागा और सीधा पहुँचा ओक्साना के पास। मेरी ओक्साना बेचारी बैठी थी तख़्ते पर – उसका रंग एकदम ऐसे सफ़ेद हुआ पड़ा था जैसे कि दीवार...

"इस बीच जंगल में सचमुच ही ज़ोर का तूफ़ान आ गया था – तरह-तरह की आवाज़ों में चीख़-चिल्ला रहा था जंगल, हवा रो रही थी, विलाप कर रही थी और रह-रहकर बिजली कड़क रही थी। हम दोनों – मैं और ओक्साना – अलावघर पर बैठे थे। अचानक मुझे जंगल से किसी की कराह सुनायी दी। ओह, कितना दर्द था उस कराह में! अभी तक भी जब उसकी याद आ जाती है, तो दिल तड़प उठता है। वैसे देखो तो कितने अधिक बरस बीत गये हैं...

"'ओक्साना,' मैंने पूछा, 'मेरी प्यारी ओक्साना, कौन है, जो इस तरह जंगल में कराह रहा है?'

"ओक्साना मुझे बाँहों में लेकर झुलाने लगी।

"सो जा, बेटे, सो जा, मेरे बच्चे,' उसने कहा, 'कुछ नहीं, यह तो योंही जंगल शोर मचा रहा है।'

"जंगल तो सचमुच ही शोर मचा रहा था। ओह, कैसा भयानक शोर था वह!

"हम इसी तरह कुछ देर तक और बैठे रहे। अचानक मुझे सुनायी दिया कि किसी ने जंगल में गोली दाग़ी है।

"'ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना,' मैंने कहा, 'किसने यह गोली चलायी है जंगल में?'

"मगर वह मुझे पहले की तरह ही बाँहों में झुलाती रही। फिर बोली –

"'चुप रह, चुप रह, मेरे बच्चे। यह तो बिजली कड़की है जंगल में।'

"मगर उसकी अपनी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। मुझे वह कसकर छाती से चिपटाती गयी और यह लोरी गाती रही – 'शोर मचाये, शोर मचाये, जंगल शोर मचाये, मेरे बच्चे...'

"इस तरह उसकी बाँहों में झूलता हुआ ही मैं सो गया...

"सुबह हुई तो मैं उछलकर खड़ा हुआ, प्यारे। देखता क्या हूँ कि सूरज चमक रहा है। घर में अकेली ओक्साना ही सोयी पड़ी है, कपड़े पहने हुए। मुझे पिछली रात की बातें याद आयीं, तो मैंने सोचा कि कोई सपना देखा होगा मैंने।

"पर नहीं, वह सपना नहीं था। ओह, वह सपना नहीं था! वह हक़ीक़त थी। मैं भागकर घर से बाहर आया, जंगल में पहुँचा। जंगल में चिड़ियाँ चहचहा रही थीं और पत्तों पर ओस की बूँदें चमक रही थीं। मैं भागकर झाड़ियों की तरफ़ गया। वहाँ क्या देखा कि चौधरी और उसका वफ़ादार नौकर बोगदान एक-दूसरे के क़रीब पड़े हैं। चौधरी शान्त नज़र आ रहा था और उसमें मानो ख़ून का तो नाम ही नहीं था। बोगदान के बाल कबूतर के समान सफ़ेद थे और उसकी ऐंठ और अकड़ वैसे ही थी, मानो ज़िन्दा हो। और चौधरी तथा नौकर, दोनों की छाती पर ख़ून ही ख़ून था।"

... ...

इतना कहकर बूढ़े बाबा ने गर्दन झुका दी और चुप्पी साध ली। यह देखकर मैंने पूछा –

"यह तो तुमने बताया नहीं बाबा, कि बाक़ी लोगों का क्या हुआ?"

"ओह! हुआ क्या, वही कुछ जो कज़्ज़ाक ओपानास ने कहा था। बरसों तक भटकता रहा वह जंगल में, छोकरों के साथ रास्तों पर निकलता और चौधरियों की हवेलियों पर टूटता। जन्म से ही क़िस्मत में यही कुछ लिखा था उसकी। बाप-दादों ने भी यही कुछ किया था और जो उसकी क़िस्मत में था, वह भी सामने आया। कई बार वह हमारे इस घर में भी आया। मगर प्रायः वह तभी आता, जब रोमान घर पर न होता। वह आता, बैठता, गाने गाता और बन्दूरा बजाता। जब उसके साथी साथ होते, तो ओक्साना और रोमान उनकी ख़ूब आवभगत करते। ओह, सच बात कहूँ

तुमसे, प्यारे – दाल में कुछ काला था, कुछ गड़बड़ मामला था। जल्द ही मक्सिम और ज़ख़ार जंगल से आने वाले हैं। तुम ग़ौर से देखना उन दोनों को। मैं तो उनसे कुछ कहता-वहता नहीं हूँ, पर जो रोमान और ओपानास को जानते थे, उन्हें तो पहली ही नज़र में यह बात साफ़ हो जाती है कि कौन शक्ल-सूरत में किससे मिलता-जुलता है। बेशक यह सही है कि ये बेटे नहीं, पोते हैं... तो देख लो, मियाँ, कैसी-कैसी बातें हो चुकी हैं मेरी आँखों के सामने इस जंगल में...

"बहुत ज़ोर से शोर मचा रहा है जंगल – तूफ़ान आयेगा!"

3

बूढ़े बाबा ने अन्तिम शब्द इस तरह कहे, मानो थक गया हो। सम्भवतः उसके विचारों की ज्वार अब उतार पर थी और वह मन मारकर ऊबे-ऊबे अपनी कहानी जारी रख रहा था। जुबान उसकी लड़खड़ाने लगी थी, सिर उसका काँप रहा था और आँखों में आँसू झलक रहे थे।

धरती पर शाम उतर आयी थी। जंगल में अँधेरा गहरा चुका था। घर के चारों ओर वन ऐसे झोंके खा रहा था, मानो समुद्र में ज्वार-भाटे आ रहे हों। वृक्षों की काली-काली चोटियाँ ऐसे झूम रही थीं, मानो बुरे मौसम में समुद्र में उठने-गिरने वाली लहरें हों।

कुत्तों को मालिकों के पैरों की आहट मिली, तो लगे ख़ुशी से भौंकने। दोनों वन-रक्षक घर की ओर जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ा रहे थे। उनके पीछे-पीछे हाँफती हुई मोत्र्या उस गाय को हाँकती ला रही थी, जो खो गयी थी। अब हम सब इकट्ठा हो गये।

कुछ क्षण बाद हम घर के अन्दर जा बैठे। तन्दूर में आग जल रही थी और मोत्र्या दावत का इन्तज़ाम करने में जुटी थी।

मैंने ज़ख़ार और मक्सिम को यों तो अनेक बार देखा था। मगर आज देखा तो ख़ास ध्यान से। ज़ख़ार का चेहरा साँवला और माथा झुका हुआ था, भौंहें गोल थीं, माथे पर जुड़ी हुईं। उसकी आँखों में कठोरता थी, लेकिन चेहरे पर पैदाइशी नेक स्वभाव की झलक साफ़ दिखायी दे रही थी। मक्सिम की आँखों में मस्ती थी, मानो उसकी भूरी-भूरी आँखें स्नेह से उमड़ी पड़ती हों। अपने घुँघराले बालों को वह बार-बार पीछे की ओर झटकता। उसकी हँसी में तो निराली गूँज थी। दूसरों को भी इस हँसी की छूत लग जाती थी।

"कहिये, बूढ़े बाबा ने आपको कोई क़िस्सा-विस्सा नहीं सुनाया, हमारे दादा की आपबीती?" मक्सिम ने पूछा।

"हाँ सुनायी तो है," मैंने जवाब दिया।

"हमेशा बस, ऐसा ही होता है! जंगल जब ज़ोर से शोर मचाता है, तो पुरानी स्मृतियाँ उसे परेशान करने लगती हैं। अब क्या मजाल कि रात-भर इसकी आँख लग जाये।"

"बिल्कुल छोटे बच्चे के समान है," बूढ़े बाबा के लिए शोरबा डालते हुए मोल्या ने कहा।

बूढ़ा बाबा मानो यह समझ ही नहीं पा रहा था कि उसकी चर्चा हो रही है। वह बिल्कुल ढलक गया था, अपने ही में डूब गया था। कभी-कभी उसके चेहरे पर बेमानी-सी, खोयी-सी मुस्कान झलक उठती और वह सिर हिलाने लगता। जब जंगल के तूफ़ानी झँझावात का कोई तेज़ झोंका झोपड़े को झकझोरता, तो वह चौंक उठता और उसके कान खड़े हो जाते। डरे-डरे, सहमे-सहमे चेहरे से वह कुछ सुनने की कोशिश करता।

कुछ ही देर बाद जंगल के इस झोपड़े में ख़ामोशी छा गयी। केवल दीपक की मद्धिम-सी लौ टिमटिमाती रह गयी। हाँ, झींगुर अपना झीं-झीं का एकसुरा राग अलापता जा रहा था... ऐसा लगता था मानो जंगल में हज़ारों ज़ोरदार और अस्पष्ट आवाज़ें एक-दूसरी में गड्डमड्ड हो गयी हैं। घुप अँधेरे में ये आवाज़ें मानो किसी अनजाने ख़तरे की ओर संकेत कर रही थीं। ऐसे मालूम पड़ता था मानो अँधेरे में कोई तूफ़ानी शक्ति शोर-शराबे की मज़लिस लगाये बैठी थी। इसमें हिस्सा लेने वाले सभी दिशाओं से आये हुए थे। उन्होंने मानो जंगल के इस झोपड़े पर चारों तरफ़ से धावा बोलने की ठान ली थी। बीच-बीच में यह अनबूझ-सा शोर और बढ़ जाता, उग्र हो उठता और हवा के झोंके की तरह बह जाता। उस वक़्त दरवाज़ा चरचरा उठता। तब बिल्कुल ऐसे लगता कि मानो कोई ग़ुस्से से फुँकारता हुआ दरवाज़े पर पिल पड़ा है। रात के इस तूफ़ान में चिमनी से ऐसी दर्दभरी और कराहती आवाज़ें निकल रही थीं कि सुनने वाले का दिल डूब-डूब जाये। फिर थोड़ी देर को तूफ़ानी झोंके रुक जाते। जानलेवा गहरा सन्नाटा डरे-सहमे दिल पर बहुत भारी गुज़रता। फिर वही ग़ुल-गपाड़ा शुरू हो जाता। ऐसा महसूस होता मानो बरसों पुराने सनोबरों ने रात की इस तूफ़ानी हलचल के साथ अपनी जगहों से उड़कर अचानक अनजाने विस्तारों में जा पहुँचने का इरादा बना लिया है।

कुछ मिनट के लिए मुझे झपकी-सी आ गयी। बहुत ही थोड़ी देर को। जंगल में तूफ़ान गूँज रहा था, तरह-तरह के सुरों में, तरह-तरह की आवाज़ों में। रह-रहकर दीप की लौ फड़फड़ा उठती, झोपड़ी को जगमगा देती। बूढ़ा बाबा अपने तख़्ते पर बैठा था, हाथ फैलाकर अपने चारों ओर कुछ टटोल रहा था। उसे मानो इस बात की आशा बँधी थी कि कोई उसके क़रीब ही मौजूद है। इस बेचारे बूढ़े बाबा के चेहरे पर भय और बाल-सुलभ बेबसी और लाचारी का भाव झलक रहा था। मुझे उसकी दर्दभरी आवाज़ सुनायी दी –

"ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना, कौन यह जंगल में कराह रहा है?"

उसने चौंककर हाथ फैलाया और कान लगाकर कुछ सुना।

"ओह!" वह फिर बड़बड़ाया, "कोई भी तो नहीं कराह रहा। वह तो तूफ़ान का शोर है जंगल में... और कुछ भी तो नहीं, जंगल शोर मचा रहा है, जंगल शोर..."

इसी तरह कुछ मिनट और गुज़र गये। छोटी-छोटी खिड़कियों में जब-तब बिजली की नीलिमा कौंध जाती, ऊँचे-ऊँचे वृक्ष घड़ी-भर को खिड़कियों के बाहर झलक उठते और फिर तूफ़ान के भयानक शोर के बीच अँधेरे में डूब जाते। मगर तभी बहुत तेज़ रोशनी हुई, दीप की टिमटिमाती लौ एकदम अन्धी हो गयी और कहीं पास में ही कड़कड़ाकर जंगल में बिजली गिरी।

बूढ़ा बाबा फिर परेशान हो उठा –

"ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना, किसने यह गोली चलायी है जंगल में?"

"सो जाओ, बूढ़े बाबा, सो जाओ," तन्दूर की छत पर से मोल्या का शान्त स्वर सुनायी दिया। "जब तूफ़ान आता है, तो हमेशा ऐसा ही होता है। रात-रात-भर ये ओक्साना को पुकारते रहते हैं। इतना भी भूल जाते हैं कि एक ज़माना हो गया ओक्साना को दूसरी दुनिया में पहुँचे। ओह!"

मोत्र्या ने जम्हाई ली, भगवान को याद किया और झोपड़े में फिर से सन्नाटा छा गया। इस सन्नाटे को बेधता था जंगल का शोर और बूढ़े बाबा का चौंक-चौंककर बड़बड़ाना –

"जंगल गूँज रहा है, जंगल शोर मचा रहा... ओक्साना, मेरी प्यारी ओक्साना..."

कुछ ही देर बाद मूसलाधार बारिश फट पड़ी। वह शोर मचाया बारिश ने कि तेज़ हवा के झोंकों की साँय-साँय और सनोबर के वृक्षों की आहें-कराहें उसमें डूबकर रह गयीं।

1886

अनु. – मदनलाल 'मधु'



व्सेवोलोद गार्शिन

(1855–1888)

"गार्शिन से अधिक प्रतिभाशाली, अधिक विख्यात और अधिक महत्त्वपूर्ण लेखक भी हैं। किन्तु रूसी साहित्य में कोई दूसरा ऐसा लेखक नहीं है जो अपने बारे में यह कह सकता हो कि 'अपने दिल को चीरकर ही मैंने सब कुछ लिखा है और हर शब्द के लिए उसे 'ख़ून की बूँद' के रूप में क़ीमत चुकानी पड़ी..." लेखक की 125वीं जयन्ती के अवसर पर 'लितेरतूर्नाया गज़ेता' (साहित्य पत्र) ने लिखा था।

गार्शिन ने बीस से अधिक कहानियाँ नहीं लिखीं। फिर भी रूसी साहित्य के इतिहास में उनका एक ख़ास स्थान है। मानव के प्रति व्यथापूर्ण प्रेम, जिसकी महान शक्ति में लेखक का अत्यधिक विश्वास था, "दुनिया की सारी बुराई के विरुद्ध" ख़ुद संघर्ष करने का प्रयास और गहन मानवीयता से परिपूर्ण प्रतिभा – उनकी रचनाओं के ये विशेष लक्षण हैं।

'लाल फूल' कहानी (1883) में अन्याय और बुराई के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीकात्मक चित्रण है।

लाल फूल

(इवान तुर्गेनेव की पुण्य-स्मृति को समर्पित)

1

"महाराजाधिराज, सम्राट पीटर प्रथम की ओर से मैं सारे पागलख़ाने के निरीक्षण की घोषणा करता हूँ।"

ये शब्द ऊँची, तीखी और गूँजती आवाज़ में कहे गये थे। स्याही के धब्बों वाली मेज़ पर बड़े-से ख़स्ताहाल रजिस्टर में रोगी का ब्योरा दर्ज करने वाला मुंशी मुस्कुराये बिना न रह सका। किन्तु रोगी को लेकर आने वाले दो जवान लोग नहीं हँसे - पागल रोगी के साथ, जिसे वे अभी-अभी रेलवे स्टेशन से लाये थे, बितायी गयी दो उनींदी रातों के बाद वे बड़ी मुश्किल से खडे रह पा रहे थे। आख़िरी से एक स्टेशन पहले रोगी का पागलपन का दौरा तेज़ हो गया था। तब इन दोनों ने कहीं से पागलों को पहनाया जाने वाला कुर्ता हासिल किया और कण्डक्टर तथा फ़ौजी पुलिस वाले को बुलाकर उनकी मदद से उसे वह कुर्ता पहनाया। इसी हालत में वे उसे शहर और अस्पताल में लाये।

वह भयानक लग रहा था। पागलपन के दौरे के वक़्त बुरी तरह चिथड़े-चिथड़े कर दिये गये भूरे कोट पर वह खुले गिरेबानवाला गाढ़े का कुर्ता पहने था, जो उसके शरीर को बेहद कसे हुए था। कुर्ते की लम्बी आस्तीनें उसकी बाँहों को छाती पर टिकाकर पीठ-पीछे बाँध दी गयी थीं। उसकी सूजी और विस्फारित आँखों में (वह दस दिनों-रातों से नहीं सोया था) निश्चल चिंगारी-सी चमक रही थी, उत्तेजना से उसके अधर का सिरा फड़क रहा था, उलझे-उलझाये घुँघराले बाल अयालों की तरह उसके माथे पर गिर रहे थे, वह तेज़ और भारी क़दमों से दफ़्तर के एक कोने से दूसरे कोने तक आ-जा रहा था, काग़ज़ों-फ़ाइलों वाली पुरानी अलमारियों और मोमजामे से ढँकी कुर्सियों को पैनी नज़र से देखता था और कभी-कभी उसे यहाँ लाने वाले अपने साथियों पर

दृष्टि डाल लेता था।

"इसे रोगियों के विभाग में ले जाइये। दायीं ओर।"

"मुझे मालूम है, मालूम है। मैं पिछले साल आपके यहाँ आया था। हमने अस्पताल का मुआयना किया था। मैं सब कुछ जानता हूँ और मुझे धोखा देना आसान नहीं होगा," रोगी ने कहा।

वह दरवाज़े की तरफ़ मुड़ गया। चौकीदार ने दरवाज़ा खोल दिया। अपने पागल सिर को ऊँचा उठाकर वह पहले जैसी तेज़, बोझिल और दृढ़ चाल से दफ़्तर से बाहर चला गया और लगभग भागते हुए पागलों के विभाग की तरफ़ दायीं ओर को बढ़ गया। उसे ले जाने वाले मुश्किल से ही उसका साथ दे पा रहे थे।

"दरवाज़े की घण्टी बजाओ। मैं ख़ुद ऐसा नहीं कर सकता। आप लोगों ने मेरे हाथ बाँध दिये हैं।"

दरबान ने दरवाज़ा खोला और ये लोग अस्पताल में दाख़िल हुए।

यह पत्थरों की बनी पुरानी सरकारी इमारत थी। दो बड़े हॉल – एक भोजनालय और दूसरा शान्त रोगियों के लिए साझा निवास स्थान, फुलवाड़ी सहित बाग़ में खुलने वाले शीशे के दरवाज़े वाला लम्बा दालान और बीसेक अलग-अलग कमरे जिनमें रोगी रहते थे – ऐसी थी इस इमारत की नीचे की मंज़िल। यहीं पर दो अँधेरे कमरे भी थे – एक की दीवारों पर गद्दे और दूसरे की दीवारों पर तख़्ते लगे थे। इनमें अत्यधिक उद्दण्ड रोगियों को बन्द किया जाता था और मेहराबों वाला एक अन्य बड़ा तथा अँधेरा-सा कमरा ग़ुसलख़ाना था। ऊपर की मंज़िल में औरतें रहती थीं। वहाँ से अटपटा-सा ग़ुल-गपाड़ा, जिसके बीच-बीच में चीख़-चिल्लाहट भी गूँज उठती थी, नीचे सुनायी दे रहा था। अस्पताल अस्सी रोगियों के लिए था, लेकिन चूँकि आस-पास के कई गुबेर्नियाओं में यही एक अस्पताल था, इसलिए इसमें तीन सौ तक रोगियों को रखा जाता था। छोटे-छोटे कमरों में चार और पाँच-पाँच तक पलंग बिछा दिये गये थे। जाड़े में जब रोगियों को बाहर बाग़ में नहीं भेजा जाता था और लोहे के जंगलों के पीछे सभी खिड़कियाँ अच्छी तरह से बन्द कर दी जाती थीं, तो अस्पताल में असह्य उमस हो जाती थी।

नये रोगी को ग़ुसलख़ाने वाले कमरे में लाया गया। स्वस्थ व्यक्ति का मन भी यहाँ परेशान हो उठता और रोगग्रस्त तथा उत्तेजित मस्तिष्क पर तो यह और भी बुरा प्रभाव डालता था। यह मेहराबों, पत्थर के चिपचिपे फ़र्श और कोने में बनी एक ही खिड़की वाला बड़ा कमरा था, इसकी दीवारें और मेहराबें गहरे लाल रोग़न से पुती हुई थीं, गन्दगी से काले हुए फ़र्श पर ही पत्थर के दो हौज़, पानी से भरे दो अण्डाकार गड्ढे बने हुए थे। खिड़की के सामने वाले कोने में

पानी गरम करने के लिए ताँबे का बहुत बड़ा कड़ाहा था और ताँबे की पाइपों तथा नलों की पूरी प्रणाली बनी हुई थी। सब कुछ पागल मस्तिष्क के लिए विषाद तथा उल्टी-सीधी बातें सोचने का वातावरण पैदा करता था और मोटा, हमेशा गुमसुम तथा मनहूस सूरत वाला चौकीदार, जो यहाँ ड्यूटी बजाता था, इस प्रभाव को और भी तीव्र कर देता था।

रोगी को जब ग़ुसल कराने और अस्पताल के बड़े डॉक्टर की चिकित्सा-विधि के अनुसार उसकी गुद्दी पर बड़ा-सा प्लास्टर लगाने के लिए इस भयानक कमरे में लाया गया, तो उसके होश-हवास उड़ गये और वह ग़ुस्से से तिलमिला उठा। बड़े अटपटे और एक से एक अधिक भयानक विचार उसके दिमाग़ में घूमने लगे। यह क्या है? यातनाघर? गुप्त रूप से दण्ड देने का स्थान जहाँ मेरे दुश्मन ने मेरा काम तमाम कर डालने का फ़ैसला किया है? शायद यह जहन्नुम ही है? आख़िर उसके दिमाग़ में यह ख़याल आया कि यहाँ उसे किसी तरह की यातना दी जायेगी। बेहद विरोध करने के बावजूद उसके कपड़े उतार दिये गये। बीमारी के कारण दोगुनी हो गयी ताक़त की बदौलत वह कई चौकीदारों को नीचे गिराता हुआ आसानी से उनके हाथों से निकल जाता था। आख़िर चार चौकीदारों ने उसे ज़मीन पर गिरा लिया और हाथों-पैरों से पकड़कर गुनगुने पानी में लिटा दिया। उसे वह उबलता-सा प्रतीत हुआ और पागल दिमाग़ में उबलते पानी तथा दहकते लोहे से यातना देने का असम्बद्ध और बिखरा-बिखरा-सा विचार कौंध गया। मुँह में पानी जाने के कारण उसे बार-बार उच्छू आ रही थी, वह अपने हाथों-पैरों को, जिन्हें चार चौकीदार कसकर पकड़े हुए थे, बहुत बेचैनी से पटक रहा था और हाँफते हुए ऐसी ऊल-जुलूल बातें कहता जा रहा था, जिनकी अपने कानों से सुने बिना कल्पना नहीं की जा सकती। उनमें प्रार्थना भी थी और अभिशाप भी। पूरी तरह से बेदम न हो जाने तक वह चिल्लाता रहा और आख़िर दुख के कड़वे आँसू बहाते हुए उसने धीमे-से एक वाक्य कहा जिसका उसकी पहली बातों से कोई सम्बन्ध नहीं था –

"पावन, महासन्तापित गिओर्गी! अपना शरीर तुम्हारे हाथों में सौंप रहा हूँ। किन्तु आत्मा – नहीं, ओ नहीं।"

यद्यपि वह शान्त हो चुका था, तथापि पहरेदार उसे अब भी पकड़े हुए थे। गुनगुने पानी के ग़ुसल और रबड़ की बोतल में सिर पर रखी गयी बर्फ़ ने अपना असर दिखाया। किन्तु जब लगभग चेतनाशून्यता की स्थिति में उसे पानी से निकालकर प्लास्टर लगाने के लिए एक बड़े स्टूल पर बिठाया गया, तो उसकी रही-सही शक्ति और उन्मादी विचार मानो फट पड़े।

"किसलिए? आख़िर किसलिए?" वह चिल्ला उठा। "किसी का बुरा नहीं

करना चाहता था मैं। किसलिए मेरी हत्या करना चाहते हैं? ओह-हो-हो, हे भगवान! दुहाई देता हूँ शहीदों के नाम की! तुम्हारी मिन्नत करता हूँ, छोड़ दीजिये मुझे..."

गुद्दी पर किसी चीज़ के दहकते स्पर्श से वह बहुत बुरी तरह छटपटा उठा। नौकर उसे क़ाबू में रखने में असमर्थ थे और उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें।

"कुछ भी नहीं हो सकता," कार्रवाई करने वाले फ़ौजी ने कहा। "इसे तो हटाना ही होगा।"

इन सीधे-सादे शब्दों से रोगी काँप उठा। "हटाना! क्या हटाना होगा? किसे हटाना होगा? मुझे!" उसने सोचा और मानो मौत को अपने सामने देखते हुए आँखें मूँद लीं। फ़ौजी ने खुरदरे तौलिये को दो सिरों से कसकर पकड़ा और उन्हें ज़ोर से दबाते हुए तौलिये को तेज़ी से गुद्दी पर ऐसे ज़ोर से रगड़ा कि प्लास्टर और खाल की ऊपरी सतह भी उतर गयी और वहाँ रगड़ का लाल निशान रह गया। ऐसी कार्रवाई से होने वाला दर्द शान्त और स्वस्थ व्यक्ति के लिए भी असह्य होता और इस रोगी को तो ज़िन्दगी का अन्त ही प्रतीत हुआ। उसने हताश होकर पूरा ज़ोर लगाते हुए छूटने की कोशिश की, चौकीदारों के हाथों से निकल गया और उसका नंगा शरीर पत्थरों के फ़र्श पर लोटने लगा। उसने चीख़ना चाहा, मगर ऐसा नहीं कर सका। उसे बेहोशी की हालत में पलंग पर लाया गया और उसकी यह बेहोशी गहरी, मौत जैसी और लम्बी नींद बन गयी।

2

रात को उसे होश आया। सभी ओर ख़ामोशी थी। बग़ल वाले बड़े कमरे से निद्रामगन रोगियों की साँसों की ध्वनी सुनायी दे रही थी। कहीं दूरी पर रात-भर के लिए अँधेरे कमरे में बन्द कर दिया गया कोई रोगी एक ही अन्दाज़ में अजीब ढंग से अपने आप से बतिया रहा था। हाँ, ऊपर के नारियों वाले हिस्से से फटे-से मन्द नारी-स्वर में एक बेतुका-सा गाना सुनायी दे रहा था। रोगी इन ध्वनियों को सुनता रहा। वह बेहद कमज़ोरी महसूस कर रहा था और उसका अंग-अंग टूट रहा था। उसकी गर्दन में बहुत दर्द हो रहा था।

"मैं कहाँ हूँ? क्या हुआ है मुझे?" उसके दिमाग़ में ये सवाल आये। अचानक उसकी ज़िन्दगी का पिछला महीना बहुत ही साफ़ तौर पर उसके सामने घूम गया और उसे यह समझते देर न लगी कि वह बीमार है और उसे क्या बीमारी है। उसे कुछ अटपटे विचार, शब्द और हरकतें याद हो आयीं और वह सिर से पाँव तक काँप उठा।

"किन्तु, भला हो भगवान का, यह सब तो समाप्त हो गया, समाप्त हो गया!" वह फुसफुसाया और फिर से सो गया।

लोहे के जंगले वाली खुली खिड़की बड़ी इमारतों और पत्थर की मेंड़ के बीच की छोटी-सी गली की ओर खुलती थी। इस गली में कभी कोई नहीं आता था और वहाँ जंगली झाड़-झँखाड़ तथा बकाइन की झाड़ियाँ उग आयी थीं जिन पर इस समय ढेरों फूल खिले हुए थे... झाड़ियों के पीछे, खिड़की के बिल्कुल सामने, पत्थर की ऊँची, काली मेंड़ थी और उसके पीछे से बड़े बाग़ के वृक्षों की फुनगियाँ चाँदनी की किरणों में चमकती-दमकती दिख रही थीं। दायीं ओर अस्पताल की सफ़ेद इमारत थी जिसकी लोहे के जंगले वाली खिड़कियाँ भीतर से रोशन थीं। बायीं ओर मुर्दाघर की सफ़ेद, चाँदनी से चमकती हुई ठोस दीवार थी। खिड़की के लोहे के जंगले में से कमरे में चाँदनी छन रही थी, फ़र्श पर फैल रही थी और पलंग का एक भाग तथा मुँदी आँखों वाले रोगी के अत्यधिक क्लान्त एवं पीले चेहरे को रोशन कर रही थी। इस समय उसमें पागल जैसा कुछ नहीं था। यह तो अत्यधिक क्लान्त व्यक्ति गहरी, बोझिल नींद में सोया हुआ था, किसी तरह के सपने नहीं देख रहा था, ज़रा भी हिलता-डुलता नहीं था और लगभग साँस नहीं ले रहा था। कुछ क्षणों के लिए वह अपनी पूर्ण स्मरण-शक्ति की चेतना अनुभव करता हुआ जागा मानो बिल्कुल स्वस्थ हो, लेकिन सुबह फिर पहले जैसा पागल ही बिस्तर से उठा।

3

"कैसी तबीयत है आपकी?" अगले दिन डॉक्टर ने उससे पूछा।

रोगी की इसी वक़्त आँख खुली थी और वह अपने पलंग पर ही लेटा हुआ था।

"बहुत अच्छी है।" उसने झटपट बिस्तर से उठते, स्लीपर पहनते और गाउन को झपटते हुए जवाब दिया। "बहुत ही अच्छी है! सिर्फ़ – यहाँ!"

उसने गुद्दी की तरफ़ इशारा किया।

"मैं गर्दन इधर-उधर मोड़ता हूँ तो दर्द होता है। लेकिन यह कोई बात नहीं। अगर आदमी इसे समझता है, तो सब कुछ ठीक है, और मैं समझता हूँ।"

"आपको मालूम है कि आप कहाँ हैं?"

"बेशक मालूम है, डॉक्टर। मैं पागलख़ाने में हूँ। लेकिन अगर आदमी इसे समझता है, तो उसे इस सबसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। उसके लिए सब बराबर है।"

डॉक्टर टकटकी बाँधकर उसकी आँखों में देख रहा था। बहुत बढ़िया ढंग

से सँवारी गयी सुनहरी दाढ़ी और सुनहरे चश्मे के पीछे से झाँकती हुई शान्त, नीली आँखों वाला उसका सुन्दर चेहरा, जिसकी बहुत सार-सँभाल की गयी थी, स्थिर और अभेद्य था। वह बहुत ग़ौर से देख रहा था।

"आप मुझे ऐसे एकटक क्यों देख रहे हैं? जो कुछ मेरी आत्मा में है, आप उसे नहीं पढ़ पायेंगे," रोगी कहता गया, "किन्तु आपकी आत्मा में जो कुछ है, उसे मैं बिल्कुल साफ़ पढ़ रहा हूँ। आप यह बुराई क्यों करते हैं? किसलिए आपने क़िस्मत के मारों की यह भीड़ यहाँ जमा की है और इसे यहाँ रोके हुए हैं? मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता – मैं सब कुछ समझता हूँ और शान्त हूँ – लेकिन दूसरे लोग? किसलिए ये सब यातनाएँ? जिस व्यक्ति ने यह प्राप्त कर लिया है कि उसकी आत्मा में महान विचार है, सारगर्भित विचार है, उसके लिए सब बराबर है कि वह कहाँ रहता है, क्या अनुभव करता है। यहाँ तक कि वह ज़िन्दा भी रहता है या नहीं... ठीक है न?"

"हो सकता है," डॉक्टर ने कमरे के कोने में कुर्सी पर इस तरह से बैठते हुए जवाब दिया कि वह रोगी को देख सके जो घोड़े के चमड़े के बड़े-बड़े स्लीपरों को फटफटाता और चौड़ी-चौड़ी लाल धारियों तथा बड़े-बड़े फूलों के छापे वाले सूती कपड़े के गाउन के छोर लहराता हुआ बड़ी तेज़ी से कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आ-जा रहा था। डॉक्टर का सहायक और रोगियों की देखभाल करने वाला दरवाज़े के पास तनकर खड़े थे।

"मेरे पास एक महान विचार है!" रोगी ने चिल्लाकर कहा। "और जब मैंने इसे पा लिया, तो ऐसा अनुभव किया मानो मेरा पुनर्जन्म हो गया हो। भावनाएँ अधिक तीव्र हो गयीं, मस्तिष्क ऐसे काम करता है जैसे पहले कभी नहीं करता था। जो कुछ पहले निष्कर्षों और अनुमानों के लम्बे मार्ग से प्राप्त किया जाता था, उसे अब मैं सहजज्ञान से जान लेता हूँ। दर्शनशास्त्र ने जिसकी कल्पना की है, मैंने वास्तव में उसे प्राप्त कर लिया है। मैं अपने भीतर ही इन महान विचारों को अनुभव करता हूँ कि समय और स्थान कपोल-कल्पना ही हैं। मैं सभी शताब्दियों में रहा हूँ। मैं स्थान के बिना सभी जगह रहता हूँ या कहीं भी नहीं रहता, आप जैसा चाहें कह सकते हैं। इसलिए मुझे इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि आप मुझे यहाँ रखते हैं या मुक्त छोड़ देते हैं, मैं आज़ाद हूँ या बन्दी हूँ। मैंने देखा है कि यहाँ मेरे जैसे कुछ और भी हैं। लेकिन बाक़ी भीड़ के लिए ऐसी स्थिति भयानक है। आप उन्हें क्यों मुक्त नहीं कर देते? किसे ज़रूरत है..."

"आपने कहा," डॉक्टर ने उसे टोका, "कि आप समय और स्थान की क़ैद से आज़ाद हैं। किन्तु यह माने बिना नहीं रहा जा सकता कि हम और आप इस कमरे में हैं और इस वक़्त" – डॉक्टर ने घड़ी निकाली – "सुबह के साढ़े दस बजे हैं और आज सन् 18... की 6 मई का दिन है। इसके बारे में क्या

ख़याल है आपका?"

"कुछ नहीं। मेरे लिए सब बराबर है कि मैं कब और कहाँ हूँ। अगर मेरे लिए सब बराबर है तो क्या इसका यह मतलब नहीं कि मैं हमेशा और हर जगह हूँ?"

डॉक्टर व्यंग्यपूर्वक मुस्कुराया।

"अनूठा तर्क है," उसने उठते हुए कहा। "सम्भवतः आप ठीक कहते हैं। नमस्ते। सिगार लेना चाहेंगे?"

"आभारी हूँ।" रोगी रुका, उसने एक सिगार लिया, बेचैनी से उसका सिरा दाँतों से काट लिया। "यह सोचने में मदद देता है," वह बोला। "यह दुनिया, लघु ब्रह्माण्ड है। एक छोर पर क्षार हैं, दूसरे पर अम्ल... ऐसा सन्तुलन है इस संसार का जिसमें विरोधी तत्व एक-दूसरे को निष्प्रभावी करते हैं। नमस्ते, डॉक्टर!"

डॉक्टर आगे चल दिया। अधिकतर रोगी अपने बिस्तरों के पास तनकर खड़े हुए उसकी राह देख रहे थे। किसी भी संचालक-अधिकारी को अपने अधीनों से इतना अधिक मान-सम्मान नहीं मिलता जितना मनोरोग चिकित्सक को अपने पागल रोगियों से।

नया रोगी अकेला रह जाने पर बड़ी तेज़ चाल से कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चक्कर लगाता रहा। उसके लिए चाय लायी गयी और उसने बैठे बिना ही चाय के बड़े मग को दो बार मुँह से लगाकर उसे ख़ाली कर दिया और पलक झपकते में सफ़ेद डबल रोटी का बड़ा-सा टुकड़ा खा गया। इसके बाद वह कमरे से बाहर निकला और रुके बिना कई घण्टों तक अपनी तेज़ तथा बोझिल चाल से पूरी इमारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आता-जाता रहा। बारिश हो रही थी और इसलिए रोगियों को बाहर बाग़ में नहीं जाने दिया गया था। डॉक्टर का सहायक जब नये रोगी को खोजने लगा, तो दूसरे रोगियों ने गलियारे के सिरे पर उसकी तरफ़ इशारा किया। वह बाग़ के शीशे वाले दरवाज़े से मुँह सटाये हुए वहाँ खड़ा था और टकटकी बाँधकर फुलवाड़ी को देख रहा था। असाधारण रूप से चटक लाल रंग वाले पोस्त की एक ख़ास क़िस्म के फूल पर उसका ध्यान संकेन्द्रित था।

"कृपया अपना वज़न कर लीजिये," सहायक ने उसका कन्धा छूते हुए कहा।

और रोगी जब सहायक की ओर मुड़ा, तो वह डर के मारे पीछे हटता-हटता रह गया - रोगी की उन्मादी आँखें भयानक क्रोध और घृणा से दहक रही थीं। किन्तु डॉक्टर के सहायक को देखते ही रोगी ने फ़ौरन अपने चेहरे का भाव बदल लिया और एक शब्द भी कहे बिना, मानो वह गहरे विचारों

में डूबा हुआ हो, चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल दिया। वे डॉक्टर के कमरे में गये और रोगी अपने आप ही वज़न करने की छोटी-सी मशीन पर खड़ा हो गया। डॉक्टर के सहायक ने उसके नाम के सामने 109 पौण्ड लिख दिया। अगले दिन उसका वज़न 107 पौण्ड और तीसरे दिन 106 पौण्ड रह गया।

"अगर यही हाल रहा, तो वह ज़िन्दा नहीं रह पायेगा," डॉक्टर ने कहा और आदेश दिया जितना भी मुमकिन हो, उसे अच्छी तरह से खिलाया-पिलाया जाये।

किन्तु बेहतर ख़ुराक और रोगी की असाधारण भूख के बावजूद वह हर दिन अधिकाधिक दुबला होता जाता था और डॉक्टर का सहायक अधिकाधिक कम वज़न दर्ज करता जाता था। रोगी लगभग नहीं सोता था और लगातार इधर से उधर चक्कर काटते हुए पूरा दिन बिताता था।

4

उसे इस बात की चेतना थी कि वह पागलख़ाने में है, यह भी जानता था कि वह रोगी है। कभी-कभी, जैसा कि पहली रात को हुआ था, दिन-भर लगातार तेज़ी से इधर-उधर घूमते रहने के बाद रात की ख़ामोशी में उसकी आँख खुल जाती, उसका अंग-अंग टूटता और सिर बेहद भारी होता, किन्तु उसे हर चीज़ की पूरी चेतना होती। शायद रात की नीरवता और धीमे प्रकाश में अनुभूतियों की अनुपस्थिति, और सम्भवतः कुछ ही समय पहले जागे व्यक्ति के मस्तिष्क की धीमी कार्यक्षमता कुछ ऐसा परिणाम सामने लाती थी कि ऐसे क्षणों में वह अपनी स्थिति को बिल्कुल स्पष्ट रूप से समझता था और मानो स्वस्थ होता था। किन्तु दिन निकलते ही, प्रकाश के आते और अस्पताल में जीवन की गतिविधियाँ आरम्भ होते ही अनुभूतियाँ उसे फिर से लहर की तरह अपने साथ बहा ले जातीं; रोगग्रस्त मस्तिष्क उनके रेले की ताब न ला पाता और फिर से पागल हो जाता। उसकी स्थिति सही सूझ-बूझ और बेतुकी बातों का अजीब मेल प्रस्तुत करती थी। वह समझता था कि उसके इर्द-गिर्द सभी रोगी हैं, किन्तु साथ ही उसे हर किसी में गुप्त रूप से अपने चेहरे को छिपाता हुआ या छिपे चेहरे वाला ऐसा व्यक्ति भी दिखायी देता जिसे वह पहले जानता था या जिसके बारे में उसने पहले पढ़ा अथवा सुना था। अस्पताल में मानो सभी वक़्तों और सभी देशों के रोगी थे। यहाँ जीवित भी थे और मृत भी। यहाँ प्रसिद्ध और दुनिया के जाने-माने लोग तथा पिछले युद्ध में मारे गये और पुनर्जीवित हो उठे सैनिक भी थे। वह अपने को पृथ्वी की सारी शक्ति संचित कर लेने वाले जादू-टोने में बँधे घेरे में अनुभव करता और उन्मादी उद्दण्डता से अपने को इस

घेरे का केन्द्र-बिन्दु मानता। अस्पताल के उसके सभी साथी एक कार्य की पूर्ति, पृथ्वी पर बुराई के उन्मूलन की ओर लक्षित एक विराट कार्य की सिद्धि के लिए, जिसकी वह अस्पष्ट-सी कल्पना करता था, यहाँ जमा हुए हैं। इस विराट कार्य का रूप क्या होगा, वह नहीं जानता था, किन्तु यह अवश्य अनुभव करता था कि इसे पूरा करने के लिए उसमें पर्याप्त शक्ति है। वह दूसरे लोगों के मनोभावों को पढ़ सकता था; चीज़ों में उनके पूरे इतिहास को देखता था; अस्पताल के बाग़ में खड़े ऊँचे-ऊँचे एल्म वृक्ष उसे अपने अनुभूत जीवन की पूरी दास्तानें सुनाते थे; इमारत को, जो वास्तव में ही बहुत पुरानी थी, वह पीटर महान के समय में निर्मित मानता था और उसे विश्वास था कि ज़ार पीटर महान पोल्तावा की लड़ाई के वक़्त इसमें रहा था। उसने यह सब दीवारों, गिरे हुए प्लस्तर और बाग़ में उसे मिली ईंटों और टाइलों के टुकड़ों पर पढ़ा; उन पर इस इमारत और बाग़ की पूरी कहानी लिखी हुई थी। उसने कभी के मर चुके दसियों और सैकड़ों लोगों को अस्पताल के छोटे-से शवगृह में बसा दिया, उसके तलघर से बाग़ के कोने में खुलने वाली छोटी-सी खिड़की को वह टकटकी बाँधकर देखता रहता और उसके पुराने, रंगीन तथा गन्दे शीशे के टेढ़े-तिरछे प्रतिबिम्ब में ऐसे चेहरे देखता रहता जिन्हें उसने या तो कभी जीवन में या चित्रों में देखा था।

इसी बीच मौसम साफ़ और सुहाना हो गया। रोगी बाग़ और खुली हवा में पूरा दिन बिताते थे। बाग़ में उनके घूमने के लिए निर्धारित भाग बड़ा नहीं था, किन्तु उसमें ढेरों वृक्ष थे और हर सम्भव स्थान पर फूलों के पौधे लगे हुए थे। रोगियों की निगरानी करने वाला हर उस रोगी को, जो कुछ भी श्रम कर सकता था, यहाँ काम करने को मजबूर करता था। वे दिन-भर बाग़ के संकरे पथों को बुहारते, उन पर बालू बिछाते, अपने हाथों से बनायी फूलों की क्यारियों और अपने द्वारा उगाये गये खीरों, तरबूज़ों और ख़रबूज़ों के बग़ीचे की निराई तथा सिंचाई करते। बाग़ के कोने में चेरी के बहुत-से पेड़ उगे हुए थे, उनके साथ-साथ ही एल्म वृक्ष की वीथी फैली हुई थी, इसके बोचोबीच छोटे-से कृत्रिम टीले पर इस बाग़ की सबसे सुन्दर पुष्प-वाटिका थी। इसके ऊपरी भाग के किनारों पर चटकीले फूल खिले हुए थे और उनके मध्य में लाल चित्तियों वाला पीले रंग का बहुत बड़ा और दुर्लभ डाहलिया वाटिका की शोभा बढ़ा रहा था। वह सारे बाग़ का केन्द्र-बिन्दु था, उसके ऊपर उठा हुआ था और यह भी देखा जा सकता था कि अनेक रोगी इसे कोई रहस्यपूर्ण महत्त्व प्रदान करते थे। नये रोगी को भी वह कुछ असाधारण और बाग़ तथा इमारत का रक्षक-सा प्रतीत हुआ। सभी संकरे मार्गों पर भी रोगियों ने ही पौधे लगाये थे। यहाँ उक्रइना में पाये जाने वाले लगभग सभी फूल – ऊँचे पौधों वाले गुलाब, चटकीले पेटून,

गेंदे, जलकुम्भी और पोस्त – देखे जा सकते थे। यहीं, ओसारे के निकट ही पोस्त के फूलों की एक ख़ास क़िस्म की तीन झाड़ियाँ उगी हुई थीं। यह फूल पोस्त के आम फूलों की तुलना में कहीं छोटा था और असाधारण रूप से चटक लाल रंग के कारण उनसे भिन्न था। अस्पताल में आने के पहले दिन ही रोगी ने जब शीशे के दरवाज़े में से बाग़ में झाँका था, तो इसी फूल ने उसे चकित किया था।

पहली बार बाग़ में जाने पर तथा ओसारे की सीढ़ियों से नीचे उतरे बिना उसने पोस्त के इन चटक फूलों की ओर ही सबसे पहले ध्यान दिया। ये सिर्फ़ दो फूल थे – संयोग से वे दूसरे फूलों से अलग तथा ऐसी जगह पर उगे हुए थे जिसे साफ़ नहीं किया गया था और इसलिए घनी जंगली घास तथा कुछ झाड़ियाँ इन फूलों को घेरे हुए थीं।

एक के बाद एक रोगी दरवाज़े से बाहर निकलता था। दरवाज़े के क़रीब चौकीदार खड़ा था जो हर रोगी को सूती धागों से बुनी हुई एक टोपी देता जाता था। टोपी के अग्रभाग पर रेड क्रास का निशान बना हुआ था। ये टोपियाँ मोर्चे पर हो आयी थीं और इन्हें नीलामी में ख़रीदा गया था। किन्तु रोगी, जैसा कि ज़ाहिर है, रेड क्रास के निशान को एक विशेष, रहस्यपूर्ण महत्त्व देता था। उसने सिर से टोपी उतारी, रेड क्रास और इसके बाद पोस्त के फूलों की तरफ़ देखा। फूल अधिक चटकीले थे।

"अभी तो जीत इसकी है," रोगी ने कहा, "लेकिन बाद में देखा जायेगा।"

और वह ओसारे से नीचे उतरा। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ायी, अपने पीछे खड़े चौकीदार को न देख पाया, क्यारी लाँघी, फूल की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया, मगर उसे तोड़ लेने का निर्णय नहीं कर सका। उसे अपने बढ़े हुए हाथ में आग-सी दहकती और काँटे-से चुभते प्रतीत हुए। कुछ देर बाद उसे सारे शरीर में ही कुछ ऐसी अनुभूति हुई मानो लाल पँखुड़ियों में से कोई ऐसी ज़ोरदार विद्युत-तरंग निकल रही थी, जिससे वह अज्ञात था, और उसके समूचे शरीर में घुसती चली जा रही थी। वह कुछ और निकट हो गया और उसने फूल की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया। किन्तु, जैसा कि उसे प्रतीत हुआ, फूल ज़हरीली और जानलेवा साँसें छोड़ता हुआ अपनी रक्षा कर रहा था। उसका सिर चकराने लगा, उसने पूरा ज़ोर लगाकर अन्तिम प्रयास किया, उसकी डण्डी को पकड़ भी लिया कि अचानक किसी का भारी हाथ उसके कन्धे पर टिक गया। चौकीदार ने उसे रोक दिया।

"फूल तोड़ना मना है," बूढ़े उक्रइनी चौकीदार ने कहा। "और क्यारी पर भी नहीं चलो। यहाँ तुम जैसे पागलों की कुछ कमी नहीं है – हर कोई एक फूल तोड़ेगा तो सारा बाग़ उजड़ जायेगा," रोगी का कन्धा थामे हुए ही चौकीदार

ने दृढ़ता से कहा।

रोगी ने उसकी तरफ़ देखा, चुपचाप अपने को उसके हाथ से मुक्त किया और बड़ी उत्तेजना अनुभव करता हुआ बाग़ की पगडण्डी पर चल दिया।

"ओह, क़िस्मत के मारे लोगो!" उसने सोचा, "तुम कुछ भी नहीं देखते, इस हद तक अन्धे हो चुके हो कि इसकी रक्षा करते हो। लेकिन चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये, मैं इसका काम तमाम करके ही रहूँगा। आज नहीं, तो कल हम ज़रूर दो-दो हाथ करेंगे। अगर मैं मर भी जाऊँगा, तो भी क्या फ़र्क़ पड़ेगा..."

रोगी शाम तक बाग़ में घूमता, दूसरों से जान-पहचान और अजीब-सी बातें करता रहा। इन बातचीतों में हर बात करने वाला अटपटे और रहस्यपूर्ण शब्दों में व्यक्त किये गये अपने उन्मादी विचारों के उत्तर सुनता। रोगी कभी एक, तो कभी दूसरे साथी के साथ घूमता रहा और शाम होने पर उसे इस बात का और भी अधिक विश्वास हो गया कि, जैसा उसने अपने आप से कहा, "सब कुछ तैयार है"। जल्द, बहुत जल्द ही लोहे के सींख़चे टूटकर गिर जायेंगे, ये सभी क़ैदी यहाँ बाहर निकल जायेंगे, पृथ्वी के हर कोने में भाग जायेंगे, सारी दुनिया हिल उठेगी, अपना पुराना, जर्जर आवरण उतार फेंकेगी और नये, अनूठे सौन्दर्य में प्रकट होगी। फूल के बारे में वह लगभग भूल गया, किन्तु बाग़ से जाते और ओसारे की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए घने अँधेरे में काली हो गयी और ओस से कुछ-कुछ भीग चुकी घास में उसे मानो दो लाल अँगारे से दिखायी दे गये। रोगी तब भीड़ से पिछड़ गया और चौकीदार के पीछे खड़ा होकर अनुकूल क्षण की प्रतीक्षा करने लगा। कोई भी यह नहीं देख पाया कि कैसे वह क्यारी के ऊपर से कूदा, कैसे उसने फूल तोड़ा और उसे अपनी क़मीज़ के नीचे छिपा लिया। ताज़ा और ओस से भीगी पँखुड़ियों ने जब उसके शरीर को छुआ, तो उसका चेहरा पीला-जर्द हो गया और डर के मारे उसकी आँखें फैल गयीं। उसके माथे पर ठण्डा पसीना आ गया।

अस्पताल में बत्तियाँ जल गयीं। शाम के भोजन की प्रतीक्षा करते हुए अधिकतर रोगी अपने बिस्तरों पर जा लेटे और केवल कुछ बेचैन ही गलियारे और हॉलों में तेज़ी से इधर-उधर आते-जाते रहे। फूल छिपाये हुए रोगी भी उन्हीं में था। वह बहुत ज़ोर से छाती पर दोनों हाथ बाँधे हुए घूम रहा था। ऐसे प्रतीत होता था कि वह क़मीज़ के नीचे छिपे फूल को कुचलना, उसकी गर्दन तोड़ डालना चाहता था। दूसरे रोगियों के सामने आने पर वह उनसे दूर हटकर निकल जाता, उनके साथ अपनी क़मीज़ का सिरा तक छुआते हुए घबराता। "मेरे पास नहीं आइये, मेरे पास नहीं आइये," वह चिल्लाता। किन्तु इस तरह के अस्पताल में ऐसी चीख़-पुकार की ओर शायद ही कोई ध्यान देता है। उसकी चाल अधिकाधिक तेज़ होती जाती थी, डग अधिकाधिक बड़े होते जाते थे। वह एक,

दो घण्टे तक ग़ुस्से से उबलता हुआ ऐसे ही घूमता रहा।

"मैं तुझे थकाकर चूर कर डालूँगा। गला घोंट दूँगा तेरा।"

वह दबी-घुटी और ग़ुस्से से भरी आवाज़ में कहता जाता था।

कभी-कभी वह दाँत पीसता।

भोजनालय में शाम का खाना परोस दिया गया। मेज़पोशों के बिना बड़ी-बड़ी मेज़ों पर रँगे और सुनहरे किये हुए लकड़ी के कई बड़े-बड़े प्याले रख दिये गये थे जिनमें बाजरे का पतला-पतला दलिया था। रोगी बेंचों पर बैठ गये, उन्हें कोटू की रोटी का एक-एक टुकड़ा दे दिया गया। आठ आदमी लकड़ी के चमचों से एक प्याले में से दलिया खाते थे। जिन रोगियों को बेहतर ख़ुराक दी जाती थी, उनके लिए अलग से खाना परोसा गया। चौकीदार ने हमारे रोगी को उसके कमरे में खाने के लिए बुला लिया। रोगी अपने भोजन को झटपट हड़प गया और उससे तृप्त न होकर भोजनालय में चला गया।

"मुझे यहाँ बैठ जाने दीजिये," उसने निगरानी करने वाले से कहा।

"क्या आपने भोजन नहीं किया?" निगरानी करने वाले ने कुछ प्यालों में कुछ और दलिया डालते हुए पूछा।

"मुझे बहुत भूख लगी है। मेरे लिए ख़ूब तगड़ा होना भी बहुत ज़रूरी है। ख़ुराक ही मेरा सहारा है। आप जानते ही हैं कि मैं बिल्कुल नहीं सोता हूँ।"

"खाइये प्यारे, खाइये। तारास, उनको चमचा और रोटी दे दो।"

रोगी एक प्याले के पास बैठ गया और उसने ढेर सारा दलिया और खा लिया।

"बस, काफ़ी है, काफ़ी है," निगरानी करने वाले ने आख़िर तब कहा, जब सभी भोजन कर चुके थे, किन्तु हमारा रोगी प्याले के पास बैठा एक हाथ से चमचा भर-भरकर दलिया खाता जाता था तथा दूसरे हाथ को वह ज़ोर से छाती पर दबाये था। "बदहजमी हो जायेगी।"

"ओह, काश आपको मालूम होता कि मुझे कितनी ज़्यादा ताक़त की ज़रूरत है, कितनी ज़्यादा ताक़त की! विदा, निकोलाई निकोलायेविच।" रोगी ने मेज़ से उठते और निगरानी करने वाले से बहुत ज़ोर से हाथ मिलाते हुए कहा। "विदा!"

"कहाँ जा रहे हैं आप?" निगरानी करने वाले ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"मैं? कहीं नहीं जा रहा हूँ। यहीं रहूँगा। लेकिन हो सकता है कि कल हमारी मुलाक़ात न हो। आपकी उदारता के लिए आभारी हूँ।"

और उसने एक बार फिर निगरानी करने वाले से तपाक से हाथ मिलाया। उसकी आवाज़ काँप रही थी और आँखें छलछला आयीं।

"शान्त हो जाइये, प्यारे, शान्त हो जाइये," निगरानी करने वाले ने उत्तर

दिया। "ऐसे बुरे-बुरे ख़याल क्यों ला रहे हैं दिल में? जाइये, जाकर लेट जाइये, ख़ूब अच्छी तरह से सो लीजिये। आपको ज़्यादा सोना चाहिए। अगर अच्छी तरह से सोयेंगे, तो जल्द ही अच्छे हो जायेंगे।"

रोगी सिसक रहा था। निगरानी करने वाले ने मुँह दूसरी ओर कर लिया, ताकि चौकीदारों को बचा हुआ भोजन जल्दी से उठा लेने का आदेश दे सके। आधा घण्टे बाद एक व्यक्ति को छोड़कर, जो कोने वाले कमरे में कपड़े उतारे बिना अपने पलंग पर लेटा हुआ था, अस्पताल में बाक़ी सभी लोग सो रहे थे। वह ऐसे काँप रहा था मानो उसे बुख़ार की जूड़ी चढ़ी हो और कसकर छाती को दबाये था, जो, जैसा कि उसे लग रहा था, अनसुने-अनजाने घातक ज़हर से भीगी हुई थी।

5

वह रात-भर नहीं सोया। उसने यह फूल इसलिए तोड़ा था कि इसे दिलेरी का ऐसा काम मानता था जो उसे करना ही चाहिए था। शीशे के दरवाज़े में से पहली नज़र डालते ही लाल पँखुड़ियों ने उसका ध्यान आकर्षित किया और उसे लगा कि इस क्षण से वह अच्छी तरह जान गया है कि उसे पृथ्वी पर कौन-सा कार्य सम्पन्न करना है। इस चटक लाल रंग के फूल में ही दुनिया की सारी बुराई संकेन्द्रित है। उसे मालूम है कि पोस्त से ही अफ़ीम बनायी जाती है और शायद इसी विचार से बढ़कर तथा भयानक रूप धारण करके उसे एक भयानक, काल्पनिक हौवा बनाने को मजबूर किया। उसकी नज़र में फूल सारी बुराई का मूर्त्त रूप था, निर्दोषों का जितना भी रक्त बहा था, वह सब उसने अपने भीतर जज़्ब कर लिया था (इसीलिए तो इतना लाल था), मानवजाति के सारे आँसू, सारा गुस्सा-गिला वह अपने भीतर समेटे हुए था। यह एक रहस्यपूर्ण और भयानक तत्व, भगवान के बिल्कुल उलट, अरीमन था जिसने विनम्रता और मासूमी का रूप धारण कर लिया था। इसे तोड़ना और नष्ट करना एकदम ज़रूरी था। लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं था – यह भी ज़रूरी था कि दम तोड़ते वक़्त वह दुनिया में अपनी सारी बुराई बाहर न निकाल पाये। इसीलिए तो उसने उसे अपनी छाती के साथ चिपका लिया था, इस तरह छिपा रखा था। उसे आशा थी कि सुबह होने तक फूल की सारी शक्ति समाप्त हो जायेगी। उसकी बुराई उसकी छाती में, उसकी आत्मा में चली जायेगी और वहाँ वह या तो पराजित हो जायेगा या विजयी। उसके विजयी हो जाने पर वह ख़ुद मिट जायेगा, मर जायेगा, लेकिन एक सच्चे योद्धा और मानवजाति के श्रेष्ठ सूरमा की तरह अपनी जान देगा, क्योंकि अभी तक किसी ने पृथ्वी की सारी बुराई के विरुद्ध एक बार भी

संघर्ष करने का साहस नहीं किया था।

"दूसरों ने इसे नहीं देखा। मैंने देख लिया। क्या मैं इसे ज़िन्दा रहने दे सकता हूँ? नहीं, मर जाना बेहतर है।"

और वह लेटा-लेटा क्लान्त हो रहा था, काल्पनिक, अस्तित्वहीन संघर्ष से, मगर क्लान्त हो रहा था। सुबह को डॉक्टर के सहायक ने उसे बमुश्किल ज़िन्दा पाया। किन्तु इसके बावजूद, कुछ समय बाद उन्मादी उत्तेजना उस पर हावी हो गयी, वह उछलकर बिस्तर से उठा और अन्य किसी भी समय की तुलना में रोगियों तथा ख़ुद अपने से कहीं अधिक ऊँचे-ऊँचे और बेसिलसिला बातें करते हुए पहले की भाँति अस्पताल में इधर-उधर भागने लगा। उसे बाग़ में नहीं जाने दिया गया। डॉक्टर ने यह देखकर कि उसका वज़न कम होता जा रहा है, वह सोता नहीं और लगातार इधर-उधर चक्कर लगाता रहता है, उसे अफ़ीम की बड़ी सूई लगाने का आदेश दिया। रोगी ने इसका विरोध नहीं किया - सौभाग्य से इस समय उसके उन्मादी विचार इस कार्रवाई के अनुरूप थे। जल्द ही उसकी आँख लग गयी, उन्मादी गतिविधि बन्द हो गयी और उसके तेज़ क़दमों की लय से जन्म लेने तथा निरन्तर उसका साथ देने वाली ऊँची ध्वनि उसके कानों से लुप्त हो गयी। वह ऊँघ गया और उसने हर चीज़, यहाँ तक कि दूसरे फूल के बारे में भी, जिसे उसे तोड़ना था, सोचना बन्द कर दिया।

किन्तु तीन दिन बाद उसने बूढ़े चौकीदार के सामने ही, जो उसे वक़्त पर रोक नहीं पाया, दूसरा फूल भी तोड़ लिया। चौकीदार उसके पीछे भागा। विजय का ऊँचा चीत्कार करते हुए रोगी अस्पताल में दौड़ गया, लपककर अपने कमरे में पहुँचा और उसने फूल को छाती पर दबा लिया।

"तुम फूल क्यों तोड़ते हो?" उसके पीछे भागकर आने वाले चौकीदार ने पूछा। किन्तु रोगी, जो सदा की भाँति छाती पर हाथ बाँधे हुए अपने बिस्तर पर लेटा था, ऐसी बेतुकी बातें करने लगा कि चौकीदार ने चुपचाप उसके सिर पर से रेड क्रास के निशान वाली टोपी उतारी, जिसे वह भागने की उतावली में उतारना भूल गया था, और वापस चला गया। काल्पनिक संघर्ष फिर से शुरू हुआ। रोगी यह महसूस कर रहा था कि फूल में से साँपों जैसी लम्बी-लम्बी, रेंगती धाराओं के रूप में बुराई बाहर आ रही है, ये धाराएँ उसे अपने सर्पीले जाल में उलझा रही हैं, उसके सभी अंगों को दबाती और भींचती हैं और अपने भयानक तत्व को उसके सारे शरीर में उतारती जा रही हैं। वह अपने शत्रु को लगातार कोसता हुआ बीच-बीच में रोता और भगवान से प्रार्थना भी करता। शाम होने तक फूल मुरझा गया। रोगी ने काले हो गये फूल को पैरों तले रौंदा-कुचला, उसके बचे-बचाये भाग को फ़र्श पर से उठाया और उसे ग़ुसलख़ाने में ले गया। आकारहीन-से गोले को कोयले से दहकती हुई भट्‌टी में फेंककर वह देर तक

अपने शत्रु को सूँ-सूँ करते तथा सिमटते-सिकुड़ते देखता रहा। आख़िर वह राख का सफ़ेद बर्फ़ जैसा गोला बन गया। रोगी ने फूँक मारी और उसका अस्तित्व समाप्त हो गया।

अगले दिन रोगी की हालत और बिगड़ गयी। उसके चेहरे का रंग बेहद जर्द था, गाल धसक गये थे और जलती हुई आँखें गड्ढों में धँस गयी थीं। वह अब लड़खड़ाती चाल से, और अक्सर ठोकर खाते हुए अपना उन्मादी चलना-फिरना जारी रख रहा था और लगातार बोलता-बतियाता जाता था।

"मैं बल-प्रयोग नहीं करना चाहता था," बड़े डॉक्टर ने अपने सहायक से कहा।

"लेकिन इस सिलसिले को बन्द करना तो ज़रूरी है। आज उसका वज़न 93 पौण्ड है। अगर आगे भी यही हालत रही, तो दो दिन बाद वह मर जायेगा।"

बड़ा डॉक्टर सोचने लगा।

"अफ़ीम? क्लोरल?" उसने मानो सवाल करते हुए कहा।

"कल अफ़ीम का कोई असर नहीं हुआ।"

"तो उसे बाँधने का आदेश दीजिये। वैसे मुझे बहुत कम आशा है कि वह बच सकेगा।"

6

और मरीज़ को बाँध दिया गया। वह पागलों का कुर्ता पहने और किरमिच के चौड़े पट्टों द्वारा कसकर पलंग से बँधा हुआ लेटा था। किन्तु उसके हिलने-डुलने का उन्माद कम होने के बजाय बढ़ ही गया था। अनेक घण्टों के दौरान वह अपने बन्धनों से मुक्त होने के लिए डटकर प्रयास करता रहा। आख़िर एक बार बहुत ज़ोर लगाने पर उसने एक पट्टा तोड़ डाला, टाँगों को मुक्त कर लिया, दूसरे पट्टों के नीचे से रेंगकर निकल आया। उसके हाथ बँधे रहे और वह वहशियाना तथा समझ में न आने वाली कुछ बातें कहता हुआ कमरे में इधर-उधर चक्कर काटने लगा।

"ओह, यह क्या है!" कमरे में आने वाला चौकीदार चिल्ला उठा। "लगता है शैतान ने तुम्हारी मदद की है! ग्रीत्स्को! इवान! जल्दी से आकर उसे बाँधो, इसने पट्टे खोल लिये हैं।"

वे तीनों रोगी पर झपटे और लम्बा संघर्ष शुरू हुआ जो चौकीदारों के लिए थकाने वाला और अपनी बची-बचायी क्षीण शक्ति को ख़र्च करने वाले रोगी के लिए यातनाप्रद था। आख़िर उन्होंने उसे पलंग पर गिरा दिया और पहले से ज़्यादा कसकर बाँध दिया।

"आप लोग समझते नहीं कि क्या कर रहे हैं!" बुरी तरह से हाँफता हुआ रोगी चिल्ला रहा था। "आप लोग अपना नाश कर रहे हैं। मैंने तीसरा देखा जो ज़रा खिला ही था। अब वह तैयार हो चुका है। मुझे मामले को ख़त्म कर लेने दीजिये! उसे मारना, मार डालना चाहिए! मारना चाहिए! तब सब कुछ समाप्त हो जायेगा, सब कुछ बच जायेगा। मैं आप लोगों को ऐसा करने के लिए भेज देता, लेकिन यह काम तो सिर्फ़ मैं ही कर सकता हूँ। आप लोग तो उसके स्पर्श से ही मर जायेंगे।"

"चुप हो जाइये, जनाब, चुप हो जाइये!" रोगी के पलंग के निकट ड्यूटी बजाने के लिए रह जाने वाले बूढ़े चौकीदार ने कहा।

रोगी अचानक ख़ामोश हो गया। उसने चौकीदारों को चकमा देने का फ़ैसला किया। रोगी को दिन-भर बाँधे रखा गया और रात को भी ऐसे ही छोड़ दिया गया। उसे रात का भोजन कराने के बाद चौकीदार ने उसके पलंग के पास ही अपने सोने के लिए कुछ बिछाया और लेट गया। क्षण-भर बाद ही वह गहरी नींद सो गया और तब रोगी ने अपना काम शुरू किया।

रोगी ने अपने पूरे बदन को ऐसे झुकाया कि पलंग के बग़ल वाले लौह-डण्ड को छू सके और पागलों के कुर्ते की लम्बी आस्तीन में छिपी कलाई से उसे छूने के बाद आस्तीन को जल्दी-जल्दी और ज़ोर से उसके साथ रगड़ने लगा। कुछ समय बाद किरमिच का मोटा कपड़ा फट गया और उसकी तर्जनी बाहर निकल आयी। इसके बाद काम तेज़ी से होने लगा। स्वस्थ व्यक्ति के लिए सर्वथा असम्भव फ़ुर्ती और लोच से उसने आस्तीनों को बाँधने वाली गाँठ को अपने पीछे से खोल लिया, कुर्ते को डोरियों से मुक्त किया और इसके बाद देर तक चौकीदार के खर्राटों पर कान लगाये रहा। किन्तु बूढ़ा गहरी नींद सो रहा था। रोगी ने कुर्ता उतार दिया और पलंग की क़ैद से अपने को छुड़ा लिया। वह अब मुक्त था। उसने दरवाज़े को खोलना चाहा, लेकिन वह भीतर से बन्द था और चाबी सम्भवतः चौकीदार की जेब में थी। इस डर से कि जेब से चाबी निकालते वक़्त चौकीदार की आँख न खुल जाये, उसने ऐसा करने की ज़ुर्रत नहीं की और खिड़की से ही बाहर जाने का निर्णय किया।

शान्त, गरम और अँधेरी रात थी। खिड़की खुली थी, काले आकाश में सितारे चमक रहे थे। उसने उनकी तरफ़ देखा, परिचित तारामण्डल को पहचाना और इस बात से ख़ुश हुआ कि वे, जैसा कि उसे लगा, उसे समझते हैं और उसके साथ सहानुभूति रखते हैं। आँखें मिचमिचाते हुए उसने उन अन्तहीन किरणों की ओर देखा जो वे उसकी तरफ़ भेज रहे थे और उसका उन्मादी संकल्प और अधिक दृढ़ हो गया। उसके लिए लोहे के जंगले की मोटी छड़ को हटाना, तंग-सी जगह में से बाहर निकलकर झाड़ियों से ढँकी गली में

पहुँचना और पत्थर की ऊँची मेंड़ को लाँघना ज़रूरी था। वहाँ अन्तिम संघर्ष होगा और उसके बाद – बेशक उसे मौत आ जाये।

उसने हाथों से ही छड़ को मोड़ने का प्रयास किया, किन्तु लोहा मुड़ा नहीं। तब उसने पागलों के कुर्ते की मज़बूत आस्तीनों की रस्सी–सी बनाकर उसे छड़ के सिरे पर भाले जैसी नोक में डाल दिया और अपने शरीर का पूरा ज़ोर लगाते हुए उसे खींचने लगा। बहुत ज़ोर लगाने पर उसकी रही–सही शक्ति को समाप्त करके वह नुकीली छड़ मुड़ गयी और बाहर निकलने की तंग–सी जगह बन गयी। वह सिमट–सिकुड़कर इसमें से बाहर निकल गया और ऐसा करते समय उसके कन्धे, कोहनियाँ और नंगे घुटने घायल हो गये। उसने झाड़ियाँ लाँघी और दीवार के सामने जा खड़ा हुआ। सभी ओर ख़ामोशी थी। कमरों में जलते रात के चिराग़ों की रोशनी खिड़कियों को हल्के–हल्के रोशन कर रही थी, खिड़कियों में कोई नज़र नहीं आ रहा था। उसे कोई नहीं देखेगा और उसके पलंग के पास ड्यूटी बजाने वाला बूढ़ा सम्भवत: गहरी नींद सो रहा था। सितारे बड़े प्यार से अपनी किरणों को झिलमिला रहे थे जो उसके हृदय की गहराइयों को छू रही थीं।

"मैं तुम्हारे पास आ रहा हूँ," आकाश को ताकते हुए वह फुसफुसाया।

दीवार को लाँघने की पहली नाकाम कोशिश में उसके नाख़ून छिल गये, हाथों और घुटनों से ख़ून बहने लगा तथा वह कोई अधिक अनुकूल स्थान ढूँढ़ने लगा। मुर्दाघर की दीवार जहाँ मेंड़ से मिलती थी, वहाँ मेंड़ और दीवार की कुछ ईंटें नीचे गिर गयी थीं। रोगी ने इन गिरी ईंटों वाले स्थानों को छूकर उनके मज़बूत होने की तसल्ली की और फिर इन्हीं से काम लिया। वह मेंड़ पर चढ़ गया, उसने मेंड़ के दूसरी ओर उगे हुए एल्म वृक्ष की डालों को पकड़ लिया और धीरे–धीरे वृक्ष से ज़मीन पर उतर गया।

रोगी ओसारे के निकट अपनी जानी–पहचानी जगह की तरफ़ लपककर गया। पँखुड़ियों को समेटे हुए फूल का सिरा अँधेरे में काला–सा दिख रहा था और ओस भीगी घास में बिल्कुल अलग नज़र आ रहा था।

"आख़िरी!" रोगी फुसफुसाया। "आख़िरी! आज जीत या मौत! लेकिन मेरे लिए यह सब बराबर है। थोड़ा इन्तज़ार करो," उसने आकाश में सितारों को ताकते हुए कहा, "बहुत जल्द मैं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा।"

उसने फूल तोड़ लिया, उसकी पँखुड़ी–पँखुड़ी अलग कर डाली, उसे नोच डाला और हाथ में लिये हुए उसी रास्ते से अपने कमरे में वापस आ गया। बूढ़ा चौकीदार सो रहा था। रोगी बड़ी मुश्किल से अपने पलंग तक पहुँचा और बेहोश होकर उस पर गिर गया।

सुबह होने पर उसके प्राण–पखेरू उड़ चुके थे। उसके चेहरे पर चैन और

दीप्ति थी। पतले होंठों और गहरी धँसी हुई बन्द आँखों वाला उसका क्लान्त नाक–नक़्शा कुछ गर्वीले सुख को अभिव्यक्त कर रहा था। जब उसे स्ट्रेचर पर लिटाया गया, तो उसकी मुट्ठी खोलने और उसमें से लाल फूल निकालने की कोशिश की गयी। किन्तु उसकी मुट्ठी अकड़कर ऐसे बन्द हो चुकी थी कि बहुत कोशिश करने पर भी नहीं खुली और वह अपनी जीत के इस पुरस्कार को अपने साथ लिये हुए ही क़ब्र में चला गया।

1883

अनु. – मदनलाल 'मधु'



इवान बूनिन

(1870–1953)

इवान बूनिन – एक प्रमुख गद्यकार और कवि थे जिन्होंने 19वीं शताब्दी के अन्त और 20वीं शताब्दी के आरम्भ के रूसी जीवन और रहन–सहन के ढंग के साहित्यिक तथा यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किये हैं। उनका कृतित्व 19वीं शताब्दी के क्लासिक साहित्य और रूसी सोवियत साहित्य के बीच एक तरह का पुल है। "बूनिन को रूसी साहित्य से निकाल दीजिये, तो वह धुँधला जायेगा, उसकी सजीव, रंगीन चमक तथा एकाकी, भटकती आत्मा की तारक आभा से वंचित हो जायेगा..." मक्सिम गोर्की ने लिखा है।

बूनिन का जीवन और साहित्यिक पथ सीधा–सरल नहीं था। अक्टूबर क्रान्ति के बाद वे अपनी मातृभूमि छोड़कर चले गये और जीवन के अन्तिम क्षण तक रूसी धरती के विछोह में, जिसे "हृदय की टीस तक प्यार करते थे" तड़पते रहे। बूनिन 1933 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हुए।

'सान–फ़्रांसिस्को का महानुभाव' कहानी 1915 में लिखी गयी थी।

सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव

सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव - न तो नेपल्ज़ और न काप्री में ही किसी को उसका नाम याद है। वह दो साल तक सिर्फ़ मनबहलाव के लिए अपनी पत्नी और बेटी के साथ पुरानी दुनिया यानी यूरोप की ओर यात्रा कर रहा था।

उसे पक्का विश्वास था कि वह आराम करने, मौज मारने और सभी दृष्टियों से बहुत बढ़िया यात्रा करने का पूरा अधिकार रखता है। ऐसे विश्वास के लिए उसके अपने कारण थे - पहला तो कि वह धनी था और दूसरे यह कि अपनी अठावन वर्ष की आयु के बावजूद उसने अभी जीना शुरू किया था। इस समय तक तो वह अपना अस्तित्व ही बनाये रहा था, यद्यपि कुछ बुरा नहीं, किन्तु सही अर्थ में जिया नहीं था और भविष्य के साथ ही उसने अपनी सारी आशाएँ जोड़ रखी थीं। वह दम लिये बिना काम करता रहा था - जिन चीनियों को वह अपने यहाँ काम करने के लिए हज़ारों की संख्या में अमेरिका बुलवाता था, वे अच्छी तरह से जानते थे कि इसका क्या अर्थ था! आख़िर उसने यह देखा कि वह बहुत कुछ प्राप्त कर चुका है और लगभग उन लोगों के बराबर हो गया है जिन्हें कभी अपने लिए आदर्श मानता था और उसने आराम करने का फ़ैसला किया। वह जिस वर्ग के लोगों से सम्बन्ध रखता था, उनमें यूरोप, भारत और मिस्र की यात्राएँ करके जीवन का आनन्द लूटने की प्रथा-सी बन गयी थी। वह भी ऐसा ही करना चाहता था। ज़ाहिर है कि मुख्य रूप से तो वह कड़ी मेहनत के सालों के लिए अपने को पुरस्कृत करना चाहता था, पर ख़ुश था कि बीवी और बेटी भी उसके साथ मज़े कर सकेंगी। उसकी बीवी ख़ास अनुभूतिशील नहीं थी, लेकिन अधेड़ उम्र की सभी अमेरिकी औरतें पर्यटन और यात्राओं की दीवानी होती हैं। रही बेटी, तो वह अपनी जवानी की सीमा लाँघ चुकी थी, कुछ-कुछ बीमार रहती थी और इसलिए उसका यात्रा करना एकदम ज़रूरी था। इसका तो ज़िक्र ही क्या किया जाये कि इससे उसकी सेहत बेहतर हो जायेगी और फिर यात्राओं के दौरान क्या बड़ी सुखद मुलाक़ातें नहीं हो जातीं? यात्राओं के समय कभी-कभी तो हम अपने को किसी करोड़पति के

साथ एक ही मेज़ पर भोजन करते या भित्तिचित्रों को निहारते हुए पाते हैं।

सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव ने बहुत बड़ा यात्रा-कार्यक्रम बनाया था। उसे आशा थी कि दिसम्बर और जनवरी में वह दक्षिणी इटली की धूप सेंकेगा, प्राचीन स्मारकों को देखकर आनन्दित होगा, इटली का लोक-नृत्य - तारानतेल्ला और जगह-जगह घूमने वाले गायकों के प्रेमगीतों के रंग-रस में डूबेगा और वह ख़ुशी हासिल कर सकेगा जिसे उसकी उम्र के लोग विशेषत: सूक्ष्म रूप से अनुभव करते हैं अर्थात नेपल्ज़ की युवतियों का प्यार पा सकेगा जो बेशक पूरी तरह से स्वार्थहीन नहीं होता। उसका विचार था कि नीस और मोण्टे कार्लो में, जहाँ इस वक़्त चुनी हुई सोसाइटी के लोग जमा होते हैं, वह कार्निवल में भाग लेगा। इन लोगों में से कुछ तो मोटरगाड़ियों या पाल वाली नावों की दौड़ों में बड़े जोश से हिस्सा लेते हैं, कुछ रूलेट जुए में, कुछ तथाकथित हल्की-फुल्की चोचलेबाज़ी और कुछ कबूतरों की निशानेबाज़ी में। ये कबूतर नीले सागर की पृष्ठभूमि में अपने पिंज़रों से हरे-भरे मैदानों के ऊपर बड़े सुन्दर ढंग से चक्कर काटते हुए ऊपर उड़ते हैं और अगले ही क्षण सफ़ेद गोले-से बनकर ज़मीन पर गिर जाते हैं। मार्च के प्रारम्भिक दिन वह फ़्लोरेंस में बिताना चाहता था, 'दु:ख-भोग सप्ताह' के अवसर पर रोम पहुँचने का इच्छुक था ताकि वहाँ रोमन कैथोलिकों की *Miserere* प्रार्थना सुन सके। उसकी यात्रा-योजना में वेनिस, पेरिस, सेविले में साँड़ों की लड़ाई, बर्तानवी द्वीपों में समुद्र-स्नान, एथेन, कुस्तुन्तुनिया, फ़िलीस्तीन, मिस्र और जापान भी शामिल थे - ज़ाहिर है कि लौटते समय... और शुरू में सब कुछ बहुत बढ़िया रहा।

नवम्बर के आख़िरी दिन थे। जिबराल्टर तक या तो बर्फ़ीले कुहासे या गीली बर्फ़ सहित तूफ़ान-बवण्डर में यात्रा करनी पड़ी, लेकिन जहाज़ सही-सलामत आगे बढ़ता चला गया। यात्री बहुत थे और विख्यात 'एटलाण्टिस' जलयान सभी सुविधाओं वाले एक विराट होटल जैसा था। इसमें नाइट बार थी, तुर्की हमाम थे, जहाज़ का अपना अख़बार भी था और ज़िन्दगी नपे-तुले ढंग से गुज़रती थी। जहाज़ के गलियारों में बजने वाले बिगुलों की आवाज़ से यात्री उस समय ही जाग जाते जब कुहासे में लहराते सागर के धुँधले-हरे विस्तार पर धीरे-धीरे और उदास-सा उजाला होने लगता था। वे फ़्लानेल के अपने कुर्ते-पाजामे पहनते, कॉफ़ी, चाकलेट या कोको पीते; इसके बाद नहाते, भूख बढ़ाने और अपने को स्वस्थ अनुभव करने के लिए व्यायाम करते, कपड़े पहनते और नाश्ता करने जाते। ग्यारह बजे तक उन्हें डेकों पर घूमते हुए महासागर की ठण्डी ताज़गी में हवाख़ोरी करनी होती थी या फिर से भूख तेज़ करने के लिए shuffleboarol और दूसरे खेल खेलने होते थे। ग्यारह बजे वे सैण्डविच और अख़्नी से पहले जिस्म में ताक़त लाते, ऐसे मज़बूत होकर मज़े से अख़बार पढ़ते

तथा चैन से दोपहर के खाने का इन्तज़ार करते जो और भी अधिक पौष्टिक तथा विविधतापूर्ण होता था। अगले दो घण्टे आराम किया जाता था। उस समय सभी डेकों पर बेंत की लम्बी आरामकुर्सियाँ रख दी जाती थीं, यात्री उन पर कम्बल ओढ़कर लेट जाते और बादलों वाले आकाश अथवा डेक के परे झलक देने वाले लहरों के फ़ेनिल टीलों को ताकते रहते या प्यारी-सी झपकी ले लेते। दिन के चार बचे के बाद ताज़ादम और प्रफुल्ल हुए यात्रियों के सामने तेज़, सुगन्धित चाय और बिस्कुट पेश किये जाते। सात बजे बिगुलों की आवाज़ उस क्षण के आगमन का संकेत देती जो उनके इस अस्तित्व का मुख्य ध्येय, उसका चरम-बिन्दु होता था... सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव झटपट अपने बढ़िया केबिन में कपड़े बदलने चला जाता।

रातों को 'एटलाण्टिस' अपनी असंख्य आँखों से अँधेरे को ताकता प्रतीत होता और अनेक नौकर रसोईघरों, बर्तन धोने और शराब वाले तहख़ानों में काम करते रहते। जहाज़ की दीवारों के पास महासागर बड़ा भयानक लगता, किन्तु यात्रियों को इस बात का विश्वास था कि लाल बालों वाले भीमकाय और भारी-भरकम कप्तान का उस पर पूरा अधिकार है और इसलिए कभी इसकी चिन्ता नहीं करते थे। हमेशा उनींदा-सा, चौड़ी, सुनहरी पट्टियों वाली वर्दी पहने कप्तान एक विराट बुत-सा लगता था और कभी-कभार ही अपने रहस्यपूर्ण कक्षों से लोगों के बीच आता था। जहाज़ के अग्रभाग से भोंपू मानो नारकीय उदासी में डूबा विलाप-सा करता या बहुत ग़ुस्से से चीख़ता रहता, किन्तु समारोही ढंग से रोशनियों से जगमगाते, खुले गले के सन्ध्याकालीन फ़्राक पहने महिलाओं, फ़्राक-कोट या डिनर-सूट डाले पुरुषों, सुघड़-सुडौल बैरों, आदरपूर्ण बड़े बैरों (जिनमें एक ऐसा भी था जो केवल शराब का ऑर्डर लेता था और लार्डमेयर की तरह गले में ज़ंजीर डाले रहता था) से भरे डाइनिंग-हॉल में भोजन करने वाले यात्रियों में से कुछ ही भोंपू की आवाज़ सुनते थे, क्योंकि तार-वाद्ययन्त्रों का बहुत बढ़िया बड़े ज़ोर से तथा लगातार बजने वाला आर्केस्ट्रा भोंपू की आवाज़ को दबा देता था। डिनर-सूट और सफ़ेद क़मीज़ सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव को बहुत जवान बना देते थे। दुबला-पतला, नाटा, भद्दी, किन्तु मज़बूत काठी वाला यह महाशय सुनहरी-मोतिया रोशनी में शराब की बोतल, बढ़िया, पतले शीशे के छोटे-बड़े गिलासों-जामों और घुँघराले सम्बुल फूलों सहित फूलदान से सजी मेज़ पर बैठा रहता। कटी-छँटी सफ़ेद मूँछों वाले उसके पीले चेहरे में कुछ मंगोली झलक थी, सोने से भरे हुए उसके बड़े-बड़े दाँत चमकते थे और उसका गंजा, मज़बूत सिर पुराने हाथी-दाँत जैसा लगता था। उसकी तगड़ी, लम्बी-चौड़ी, शान्त और इतमीनान से हर काम करने वाली बीवी बहुत बढ़िया, किन्तु अपनी उम्र के अनुरूप पोशाक पहने होती थी।

सुन्दर बालों को अच्छे ढंग से सँवारे, ख़ुशबूदार गोली चूसकर अपनी साँस को सुगन्धित बनाये, होंठों के निकट और स्कन्धास्थियों के बीच छोटी-छोटी गुलाबी फुँसियों पर पाउडर छिड़के उसकी लम्बी और छरहरी तथा निश्छल, मासूम बेटी अनूठी, किन्तु हल्की और पारदर्शी पोशाक में होती थी। रात का भोजन एक घण्टे से अधिक समय तक चलता और उसके बाद बॉल-नृत्य के हॉल में नाच-पार्टी शुरू हो जाती जिसके दौरान पुरुष – जिनमें सान-फ़्रांसिस्को का हमारा महानुभाव भी होता – अपनी टाँगें कुर्सियों के हत्थों पर फैलाकर बैठ जाते, मुँह लाल हो जाने की हद तक हवाना के सिगार और बार में जाकर लिकर पीते, जहाँ लाल कोट पहने नीग्रो काम करते थे और जिनकी आँखों की सफ़ेदी पूरी तरह उबले और छिले अण्डों जैसी थी। इसी समय दीवार के दूसरी ओर महासागर काले पर्वत की तरह गरजता रहता था, भीगकर भारी हो गये जहाज़ के साज़-सामान में बवण्डर ज़ोरों से सीटियाँ बजाता था, तूफ़ान और पहाड़ों जैसी लहरों से मोर्चा लेता हुआ पोत नीचे से ऊपर तक काँपता था, वह डोलती लहरों को हल की तरह चीरता था जो रह-रहकर ढेरों झाग उगलती थीं और अपनी फ़ेनिल पूँछों को ऊपर उछालती थीं। कुहासे के कारण घुटन-सी महसूस करता हुआ भोंपू भयानक और पीड़ायुक्त ढंग से कराहता था, निगरानी वाली मीनार में ड्यूटी बजाते लोग ठण्ड से अकड़ जाते थे और नज़रों पर बेहद तनाव के कारण उनके सिर चकराते थे। पानी में डूबा हुआ जहाज़ का तल बहुत ही उदासी और उमस भरा था, जहन्नुम के अन्तिम, नौवें चक्र जैसा था जिसमें बड़ी-बड़ी भट्ठियाँ अपने दहकते जबड़े दिखाती हुई उस समय ठहाके लगाती-सी प्रतीत होती थीं, जब दुर्गन्ध उड़ाते पसीने से तर, गन्दे अधनंगे और अँगारों की चमक में लाल-लाल दिखने वाले लोग खड़खड़ की आवाज़ करता हुआ टनोंटन पत्थर का कोयला उनके मुँह में डालते थे। इसी समय ऊपर बार में लोग आरामकुर्सियों के हत्थों पर टाँगें फैलाकर मज़े-मज़े ब्राण्डी और लिकर की चुस्कियाँ लेते, हवा में सुगन्धित धुएँ के लहरिये बनाते, नाच के हॉल में सब कुछ जगमग और चमचम करता होता, प्यारी-सुखद गरमी और ख़ुशी की तरंग होती, वाल्ज नाचते हुए जोड़े चक्कर काटते या ताँगो नाच में धीरे-धीरे झूमते और मधुर-निर्लज्ज उदासी में डूबा-सा संगीत लगातार एक ही तरह की रट लगाये रहता। इस शानदार भीड़ में कोई बहुत बड़ा धन्नासेठ भी था, लम्बा-तड़ंगा, सफ़ाचट दाढ़ी-मूँछ, पुराने ढंग का फ़्राक-कोट पहने; प्रसिद्ध स्पेनी लेखक भी था; दुनिया की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी भी थी और प्यार में खोया हुआ एक सजीला जोड़ा भी था जिसे सभी जिज्ञासा की दृष्टि से देखते थे और जो अपनी ख़ुशी को छिपाने की ज़रा भी कोशिश नहीं करता था। यह प्रेमी केवल अपनी प्रेमिका के साथ ही नाचता। इनका नाच बड़ा कलात्मक तथा

मोहक होता और जहाज़ के कप्तान के अलावा कोई भी यह नहीं जानता था कि 'लोयड्ज़' ने ख़ासी अच्छी रक़म देकर यही प्रेम-लीला दिखाने के लिए इन दोनों को जहाज़ पर नौकर रखा हुआ है और वे अर्से से कभी एक, तो कभी दूसरे जहाज़ पर यात्रा करते रहते हैं।

जिबराल्टर में सूरज दिखायी दिया और सभी यात्रियों के मन खिल उठे। वसन्त के आरम्भ जैसा मौसम था। 'एटलाण्टिस' जहाज़ पर एक नया यात्री आ गया जिसने सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। वह एशिया के किसी राज्य का युवराज था जो गुप्त रूप से यात्रा कर रहा था। बहुत छोटा क़द, सर्वथा अभिव्यक्तिहीन चौड़ा चेहरा, छोटी-छोटी आँखों पर सोने की कमानी का चश्मा, देखने में कुछ हद तक इसलिए अप्रिय कि उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें मृतक की भाँति विरली और रेशेदार थीं। वैसे कुल मिलाकर वह प्यारा, सीधा-सादा और विनम्र व्यक्ति था। भूमध्यसागर में बहुत बड़ी और मोर की पूँछ की तरह रंगीन लहरें उठ रही थीं जिन्हें चमकते और एकदम निर्मल आकाश की स्थिति में जहाज़ की ओर आने वाली ख़ुशी से हुमकती तथा पागलों की तरह झपटती ठण्डी पहाड़ी हवा बहाये ला रही थी... अगले दिन आकाश का रंग पीला होने लगा, क्षितिज कुहासे से ढँक गया – पृथ्वी निकट आ रही थी, इसचिया और काप्री नज़र आने लगे थे और दूरबीन में से भूरे-नीलगूँ पर्वत के दामन में सफ़ेद चीनी के टुकड़ों की तरह नेपल्ज़ की भी झलक मिलने लगी थी... अधिकतर महिलाओं और महानुभावों ने फ़र के हल्के-हल्के कोट भी पहन लिये थे। आज्ञाकारी, हमेशा फुसफुसाकर बात करने वाले चीनी नौकर लड़के, एड़ियों तक काले बालों की चोटियों तथा युवतियों जैसी घनी बरौनियों वाले किशोर सीढ़ियों की ओर धीरे-धीरे कम्बल, छड़ियाँ, सूटकेस और शृंगारदान ले जा रहे थे... सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव की बेटी युवराज के निकट, जिसके साथ पिछली शाम को उसका संयोग से परिचय हो गया था, डेक पर खड़ी थी और ऐसे ज़ाहिर कर रही थी कि टकटकी बाँधकर दूरी पर उधर ही देख रही है, जिधर वह इशारा करते, कुछ समझाते, जल्दी-जल्दी और धीमी आवाज़ में कुछ बताते हुए उसे कोई चीज़ दिखा रहा था। क़द की दृष्टि से वह अन्य लोगों के बीच छोकरा-सा लगता था, तनिक भी आकर्षक नहीं था और अपने चश्मे, टोप, अंग्रेज़ी ओवरकोट, विरली मूँछों के घोड़े जैसे बालों, चपटे चेहरे पर पतली, साँवली त्वचा के कारण, जो मानो खिंची हुई थी, और जिस पर जैसे हल्का-सा वार्निश कर दिया गया था, अजीब-सा प्रतीत होता था। किन्तु महानुभाव की बेटी बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रही थी और उत्तेजना के कारण वह सब समझ नहीं पा रही थी जो युवराज उससे कहता था। अनबूझ उल्लास से उसका हृदय धड़क रहा था, उसे युवराज की हर चीज़ दूसरों से भिन्न लग रही थी – उसके पतले-पतले हाथ, उसकी साफ़ त्वचा, जिसके नीचे राजवंश का प्राचीन

रक्त बह रहा था, यहाँ तक कि उसकी यूरोपीय, बिल्कुल साधारण, किन्तु मानो विशेष रूप से साफ़-सुथरी पोशाक भी ऐसा आकर्षण रखती थी जिसे बयान करना सम्भव नहीं था। और इसी वक़्त सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव बढ़िया जूते और भूरी जुराबें पहने लम्बी, बहुत ही सुडौल, पेरिस के नवीनतम फ़ैशन के मुताबिक़ अपनी आँखों को रँगे, सुनहरे बालोंवाली विख्यात सुन्दरी को निहारे जा रहा था जो झुकी पीठ और झड़े बालोंवाले छोटे-से कुत्ते को चाँदी की ज़ंजीर से थामे और लगातार उससे बातें करते हुए उसके क़रीब खड़ी थी। बेटी अस्पष्ट-सा अटपटापन अनुभव करते हुए बाप को नज़रन्दाज़ करने का प्रयास कर रही थी।

सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव यात्रा के दौरान काफ़ी मेहरबान था और इसलिए अपने बारे में उन सबकी चिन्ता पर पूरा भरोसा करता था जो उसे खिलाते-पिलाते थे, उसकी छोटी से छोटी इच्छा का पूर्वानुमान लगाते हुए सुबह से शाम तक उसकी सेवा करते थे, उसकी स्वच्छता और चैन को सुरक्षित रखते थे, उसकी चीज़ें लादकर ले जाते थे, उसके लिए कुली बुलाते थे और उसके सन्दूक़ों को होटलों में पहुँचाते थे। सभी जगह ऐसा हुआ था, जहाज़ पर यात्रा करते समय भी ऐसा ही हुआ था और नेपल्ज़ में भी ऐसा ही होना चाहिए था। नेपल्ज़ निकट आता और बड़ा होता जाता था। बाजे बजाने वाले फूँक-बाजों के ताँबे-काँसे की चमक दिखाते हुए डेक पर जमा हो गये थे और अचानक उन्होंने समारोही कूच की धुन बजाते हुए सभी आवाज़ों को उसमें दबा दिया। समारोही पोशाक पहने हुए जहाज़ का भीमकाय कप्तान अपने ऊँचे मंच पर प्रकट हुआ और बुतपरस्तों के कृपालु देवता की तरह यात्रियों का अभिवादन करते हुए उसने हाथ हिलाया। और आख़िर 'एटलाण्टिस' जब बन्दरगाह में दाख़िल हुआ और कई मंज़िलों वाले इस विराट जहाज़ ने, जिसके रेलिंगों पर लोगों की भीड़ जमा थी, लंगर डाल दिया तथा यात्रियों के उतरने के लिए बिछाये जाने वाले तख़्ते की ज़ंजीरें खनखना उठीं, तो कितनी बड़ी संख्या में सुनहरे गोटे से सजी टोपियाँ पहने होटल कर्मचारी और उनके सहायक, तरह-तरह के कितने ही दलाल, सीटियाँ बजाते छोकरे और हट्टे-कट्टे फटेहाल लोग, जो अपने हाथों में रंगीन कार्डों की गड्डियाँ लिये थे, अपनी सेवाएँ पेश करते हुए उसकी ओर लपके। और वह इन फटेहाल लोगों पर मुस्कुराता हुआ उस होटल की कार की तरफ़ बढ़ चला, जहाँ युवराज के भी ठहरने की सम्भवना हो सकती थी तथा दाँत भींचे हुए बड़ी शान्ति से सभी अंग्रेज़ी और कभी इतालवी में कहता जाता था - "Go away! Via!"*

नेपल्ज़ में फ़ौरन ही बहुत नपे-तुले ढंग से जीवन-क्रम चल पड़ा। तड़के ही, अध-अँधेरे भोजनालय में नाश्ता, बादलों से ढँका, सुहाने दिन की बहुत कम आशा बँधाने वाला आकाश और होटल के प्रवेश-कक्ष के दरवाज़े के क़रीब

* भाग जाओ! (इतालवी)

गाइडों की भीड़। इसके बाद कुछ-कुछ गरम, गुलाबी सूरज की पहली मुस्कानों, ऊँचे छज्जे से सुबह की चमकती भाप से दामन तक ढँके वेसूवीअस पर्वत, खाड़ी में रूपहली-मोतिया छोटी-छोटी तरंगों तथा क्षितिज पर काप्री की हल्की रेखाओं, नीचे तट के साथ-साथ गाड़ियों में जुते भागे जाते छोटे-छोटे गधों और प्रफुल्ल तथा ललकारते संगीत के साथ किसी ओर क़दम बढ़ाते खिलौनों जैसे सैनिकों का दृश्य-दर्शन। इसके पश्चात बाहर निकलकर मोटर की सवारी, ऊँचे-ऊँचे तथा अनेक खिड़कियों वाले मकानों के बीच से तंग और लोगों की भीड़ वाली गलियों के नम गालियारों में धीरे-धीरे सैर, मातमी सफ़ाई वाले, अच्छे और सुखद ढंग से रोशन, किन्तु बेहद ऊब भरे संग्रहालयों या ठण्डे और मोम की गन्ध वाले गिरजाघरों के चक्कर, जहाँ बार-बार एक जैसा दृश्य सामने आता – भव्य प्रवेश-द्वार और उस पर लटकता हुआ चमड़े का भारी पर्दा, भीतर सुनसान और सन्नाटा, हॉल के कोने में लेस से सजी वेदी पर लाल रोशनी देती और फड़फड़ाती सात मोमबत्तियों का शमादान, लकड़ी के काले डेस्कों के बीच कोई बुढ़िया, पैरों के नीचे फिसलते क़ब्र-पत्थर और दीवार पर अनिवार्य रूप से 'सलीब से अवतारण' नामक कोई विख्यात चित्र। दिन के एक बजे सान मार्टीनो पहाड़ी पर दोपहर का भोजन किया जाता था, जहाँ बहुत-से अमीर लोग मध्याह्न को पहुँच जाते थे। वहीं सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव की बेटी एक बार लगभग बेहोश हो गयी थी, क्योंकि उसे ऐसा लगा था कि उसने राजकुमार को कमरे में बैठे देखा है, जबकि समाचारपत्रों के अनुसार वह रोम में था। शाम के पाँच बजे मोटे कालीनों और दहकती अँगीठियों से गरम होटल के सजे-बजे ड्राइंग-रूम में चाय पेश की जाती। और उसके बाद फिर से रात के भोजन की तैयारी शुरू हो जाती – फिर से सभी मंज़िलों पर ज़ोरदार तथा प्रभावपूर्ण घण्टे की आवाज़ गूँज उठती, फिर से खुले गले की रेशमी पोशाकों को सरसराती और सीढ़ियों से नीचे उतरती महिलाओं की पाँतें दर्पणों में प्रतिबिम्बित होतीं, फिर से शानदार भोजनालय के दरवाज़े आतिथ्यपूर्ण ढंग से चौपट खोल दिये जाते, लाल कोट पहने साज़िन्दे अपने मंच पर आ जाते और काले सूटों में वेटरों की भीड़ बड़े बैरे के गिर्द जमा हो जाती जो बड़ी दक्षता से प्लेटों में गाढ़ा, गुलाबी शोरबा डालता होता। रात के भोजन में उन्हें इतनी अधिक चीज़ें खिलायी जातीं, खनिज जल और शराबें पिलायी जातीं, मिठाइयों और फलों से इनकी इतनी अधिक ख़ातिरदारी की जाती कि ग्यारह बजते न बजते परिचारिकाओं को पेट सेंकने के लिए सभी कमरों में गरम पानी से भरी रबड़ की बोतलें पहुँचानी पड़तीं।

उस साल दिसम्बर का महीना कुछ अच्छा नहीं था। दरबानों से जब मौसम की बात की जाती, तो वे अपराधियों की तरह अपने कन्धे झटक देते और बड़बड़ाते कि ऐसा बुरा मौसम तो उन्हें याद ही नहीं है, यद्यपि यह पहला साल

नहीं था जब उन्हें इस तरह बड़बड़ाना और यही कहना पड़ा था कि सभी जगह कुछ भयानक बात हो रही है – रिवेरा में मूसलाधार बारिश है, तूफ़ान आ रहा है, एथेन में बर्फ़ गिर रही है, एटना भी बर्फ़ से ढँका हुआ है और रात को चमकता है तथा पालेरमो में तो यात्री ठण्ड से बचने के लिए कहीं दूर भागे जा रहे हैं... सुबह को निकलने वाला सूरज हर दिन धोखा देता – दोपहर को अवश्य ही आकाश धूमिल–धूसर हो जाता और बारिश होने लगती, जो अधिकाधिक तेज़ और ठण्डी होती जाती। तब होटल के दरवाज़े के क़रीब ताड़ के पेड़ टीन की तरह चमकने लगते, शहर ख़ास तौर पर गन्दा और तंग–सा प्रतीत होता, संग्रहालय अत्यधिक नीरस और एक जैसे लगते, हवा में पंखों की तरह फड़फड़ाने वाले रबड़ के लबादे पहने मोटे कोचवानों द्वारा फेंके गये सिगारों के टोटे असह्य रूप से दुर्गन्धपूर्ण और पतली गर्दनों वाली घोड़ियों पर उनके चाबुकों की ज़ोरदार सटकार स्पष्टतः बनावटी प्रतीत होती, ट्रामों की लाइनों को साफ़ करते पुरुषों के जूते भयानक और कीचड़ को छपछपाती नंगे सिर तथा काले बालों वाली औरतों की टाँगें अत्यधिक छोटी लगतीं। घाट के निकट फेन उगलते सागर से आने वाली नमी और सड़ी मछलियों की दुर्गन्ध की तो चर्चा ही क्या की जाये। सान–फ़्रांसिस्को का महानुभाव और उसकी पत्नी सुबहों को अब आपस में झगड़ते, उनकी बेटी का चेहरा कभी तो पीला होता और वह सिरदर्द की शिकायत करती या फिर उसमें सजीवता आ जाती और वह हर चीज़ पर मुग्ध होती रहती। तब वह प्यारी और सुन्दर लगती – सुन्दर थी वे कोमल और जटिल भावनाएँ भी जो उस असुन्दर व्यक्ति से भेंटों के फलस्वरूप, जिसकी रगों में असाधारण रक्त बहता था, उसकी आत्मा में जागृत होतीं, क्योंकि कौन–सी चीज़ – पैसा, ख्याति या ऊँचा कुल – किसी लड़की की आत्मा को जागृत करती है, कोई महत्त्व नहीं रखती... सब लोग उन्हें यह विश्वास दिलाते थे कि सोरेण्टो और काप्री में बिल्कुल दूसरी ही बात है – वहाँ मौसम अधिक गरम–सुहाना है, धूप ज़्यादा है, नीबुओं के पेड़ों पर फूल आये हुए हैं, लोग अधिक अच्छे हैं और शराब बेहतर है। इसलिए सान–फ़्रांसिस्को के परिवार ने इस विचार से काप्री जाने का इरादा बनाया कि उसे पूरी तरह देखने, जहाँ कभी तिबेरियस के महल खड़े थे, उन पत्थरों पर घूमने, दन्त–कथाओं जैसी अज़ूरे ग्रोटो गुफाओं में जाने और अबरूज़िया के मश्कबीन बजाने वालों को सुनने के बाद, जो क्रिसमस के एक महीना पहले कुमारी मरियम की प्रशस्ति गाते हुए द्वीप पर घूमते रहते हैं, सोरेण्टो में जा टिकेंगे।

सान–फ़्रांसिस्को के परिवार के रवाना होने के दिन – जो उसके लिए बहुत स्मरणीय दिन था – सुबह के वक़्त भी सूरज नहीं निकला। घनी धुँध ने वेसूवीअस को पूरी तरह ढँक रखा था और वह मानो सागर की डोलती, सुरमई

सतह पर नीचे, धूसर बादल की तरह लटका हुआ था। काप्री तो बिल्कुल नज़र नहीं आ रहा था – जैसे कि वह धरती पर कभी था ही नहीं। इस द्वीप की ओर जाने वाला छोटा-सा जहाज़ इतने ज़ोर से दायें-बायें झटके देता था, हिचकोले खाता था कि सान-फ़्रांसिस्को के परिवार को इसके घटिया-से केबिन में कम्बलों से पैरों को लपेटकर और मतली से बचने के लिए आँखें मूँदकर हिले-डुले बिना सोफ़ों पर लेटे रहना पड़ा। श्रीमती यह सोचती थी कि वह सबसे अधिक यातना सहन कर रही है – कई बार मतली ने उसे धर दबाया, उसे लगा कि वह मर जायेगी, लेकिन वह नौकरानी जो चिलमची लेकर उसके पास भागी आती थी और बरसों से गरमी-सर्दी में हर दिन इसी जहाज़ पर रहती थी और फिर भी थकी नहीं थी, केवल हँस देती थी। बेटी के चेहरे का रंग बिल्कुल ज़र्द था और वह नीबू की फाँक दाँतों तले दबाये थी। स्वयं महानुभाव चौड़ा ओवरकोट पहने और बड़ी-सी टोपी ओढ़े चित लेटा था और उसने रास्ते-भर अपना जबड़ा खोलने की हिम्मत नहीं की। उसका चेहरा काला-सा हो गया था, मूँछें सफ़ेद हो गयी थीं और उसके सिर में बहुत ज़ोर का दर्द था – बुरे मौसम के कारण वह रातों को शराब में बहुत अधिक गड़गच्च होता तथा घटिया स्थानों पर "जीवित चित्रों" को बहुत अधिक निहारता रहा था। बारिश छनछनाते शीशों पर अपने कोड़े मार रही थी, सोफ़ों पर शीशों से पानी रिसता था, हवा चीख़ती हुई मस्तूलों को झकझोरती, ज़ोरदार लहर के प्रहार से जहाज़ को कभी-कभी बिल्कुल एक पहलू की ओर झुका देती और उस समय नीचे किसी चीज़ के ज़ोर से लुढ़कने की आवाज़ सुनायी पड़ती। कास्टेलामारे और सोरेण्टो के स्टॉपों पर कुछ चैन रहा, मगर यहाँ भी इतने ज़ोर से लहर आती कि जहाज़ की खिड़की के बाहर अपनी खड़ी चट्टानों, बाग़-बग़ीचों, देवदार के पेड़ों, गुलाबी और सफ़ेद होटलों और धुँधले, घुँघराले-हरे पर्वतों सहित तट झूले की तरह ऊपर-नीचे झूलता प्रतीत होता। नावें जहाज़ के पहलुओं से टकराती रहतीं, नम हवा दरवाज़े में से भीतर आती और 'Royal' होटल के झण्डे वाली लहरों पर डोलती बड़ी नाव से यात्रियों को आकर्षित करने के लिए एक छोकरा तुतली आवाज़ में लगातार होटल का नाम चिल्लाता जाता था। और सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव अपने को बिल्कुल बूढ़ा महसूस करते हुए – जैसा कि उसे महसूस करना चाहिए था – इन सभी लालची, लहसुन की दुर्गन्ध वाले इन लोगों के बारे में, जिन्हें इतालवी कहते हैं, बड़ी ऊब और खीझ से सोचने लगा। एक स्टॉप पर उसने आँखें खोलीं, सोफ़े से उठा और पानी, नावों, चिथड़ों, टीन के पीपों तथा कत्थई रंग के जालों के बिल्कुल निकट एक चट्टान के दामन में फफूँद से ढँके और एक-दूसरे के साथ गड्डमड्ड हुए पत्थर के छोटे-छोटे भद्दे घर देखे और यह ध्यान आने पर कि यही असली

इटली है जहाँ वह मौज मनाने आया है, उसका मन हताश हो उठा... आख़िर शाम का झुटपुटा हो जाने पर पहाड़ के दामन में लाल बत्तियों से आर-पार बिंधे द्वीप का काला आकार निकट आने लगा, हवा मन्द, गरम और सुगन्धित हो गयी और काले तेल की भाँति चमकती, शान्त लहरों पर घाट की लालटेनों से सुनहरे अजगर-से बहने लगे... कुछ देर बाद लंगर खनखनाया और छपछपाता हुआ पानी में जा गिरा, एक-दूसरे से अधिक ऊँचे चिल्लाते हुए माँझियों की तेज़ आवाज़ें सभी ओर से सुनायी देने लगीं... और बस, मन को फ़ौरन राहत मिल गयी, जहाज़ का केबिन अधिक रोशन हो गया, खाने, पीने, सिगरेट के कश खींचने और चलने-फिरने को मन होने लगा। दस मिनट बाद सान-फ़्रांसिस्को का यह परिवार एक बड़ी नाव पर सवार हो गया, पन्द्रह मिनट में घाट पर जा उतरा और फिर ये लोग रज्जु-मार्ग के एक छोटे-से चमकते केबिन में जा बैठे जो घर्र-घर्र की आवाज़ करता, अंगूर के बग़ीचों में लगे बाँसों, पत्थर की टूटी मेंड़ों, सन्तरों के गीले और गठीले पेड़ों के पास से गुज़रता हुआ उन्हें ढाल के ऊपर ले चला। सन्तरों के ये पेड़ जहाँ-तहाँ चटाइयों से ढँके थे, इनके नारंगी रंग के फल और मोटे, चमकते पत्ते रज्जु-मार्ग के केबिन के खुले शीशों से नीचे को फिसलते जाते प्रतीत होते थे। इटली में बारिश के बाद ज़मीन की गन्ध बड़ी प्यारी होती है और हर द्वीप अपनी अलग गन्ध रखता है।

इस शाम को काप्री द्वीप नम और अँधेरे में लिपटा हुआ था। किन्तु अब थोड़ी देर को वह सजीव हो उठा और कहीं-कहीं रोशनी हो गयी। पहाड़ की चोटी पर बने रज्जु-मार्ग के प्लेटफ़ार्म पर फिर से ऐसे लोगों की भीड़ जमा थी जिन्हें सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव का उचित ढंग से स्वागत-सत्कार करने के लिए भेजा गया था। दूसरे लोग भी आये थे, मगर वे इस तरह के आदर-सत्कार के योग्य नहीं थे। ये लोग थे – काप्री में ही बस जाने वाले, चश्माधारी, दढ़ियल, भद्दे ढंग से कपड़े पहने और खोये-खोये कुछ रूसी, जिनके पुराने-धुराने ओवरकोटों के कॉलर ऊपर उठे हुए थे, टिरोलिअन के सूट पहने और कन्धों पर किरमिच के थैले लटकाये, लम्बी टाँगों और गोल सिरों वाले जर्मन नौजवानों का एक दल जिन्हें किसी की भी सेवा की आवश्यकता नहीं थी और जो पैसे ख़र्च करने के मामले में भी बहुत उदार नहीं थे। रूसियों और जर्मन, दोनों से ही बड़ी शान्ति से कन्नी काटने वाला सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव बड़ी आसानी से पहचान लिया गया। उसे और उसकी बीवी तथा बेटी को सहारा देकर नीचे उतारा गया, उसे रास्ता दिखाते हुए लोग उसके आगे-आगे भागने लगे, उसे फिर से छोकरों और काप्री की उन हट्टी-कट्टी औरतों ने घेर लिया जो ढंग से धनी यात्रियों के सन्दूक़ और सूटकेस अपने सिरों पर लादकर ले जाती थीं। ऑपेरा के मंच जैसे उस छोटे-से मैदान में, जिसके ऊपर नम हवा में बिजली का गोल लैम्प हिल-डुल रहा था, इन

औरतों के खड़ाऊ बज रहे थे और लड़कों की भीड़ पक्षियों की तरह सीटियाँ बजाती हुई कलाबाज़ियाँ खा रही थी। और सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव सिरों के ऊपर आपस में मिल जाने वाले घरों द्वारा बनायी गयी मध्ययुगीन मेहराब के नीचे उनके बीच मानो रंगमंच पर चल रहा था। उस मेहराब के पीछे कोलाहलपूर्ण छोटी-सी गली थी जो होटल के जगमगाते प्रवेश-द्वार की तरफ़ जाती थी जहाँ बायीं ओर चपटी छतों के ऊपर ताड़ वृक्ष के पत्तों का गुच्छा-सा था और उसके ऊपर तथा उससे आगे नीले सितारों से जड़ा हुआ काला आकाश था। ऐसे लगता था कि भूमध्यसागर के चट्टानी द्वीप पर बसा यह छोटा-सा, नमी भरा पथरीला नगर सान-फ़्रांसिस्को से आये मेहमानों के सम्मान में सजीव हो उठा है, कि उन्हीं ने होटल के मालिक को इतना अधिक प्रसन्न कर दिया है और आतिथ्यपूर्ण बना दिया है, कि बड़ा चीनी घण्टा इन्हीं के प्रवेश-कक्ष में आने की राह देख रहा है और उनके आते ही सारी इमारत में उसकी आवाज़ गूँज उठेगी और इस तरह हर किसी को रात के भोजन के लिए आमन्त्रित किया जायेगा।

बड़े आदर और बहुत ही शिष्टता से इनका स्वागत करने वाले होटल के नौजवान और बहुत ही बने-ठने मालिक ने सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव को क्षण-भर के लिए आश्चर्यचकित कर दिया। अचानक उसे याद हो आया कि पिछली रात को नींद के अटपटे सपनों में उसने इसी व्यक्ति को देखा था, हू-ब-हू ऐसे ही आदमी को, जैसा यह था, इसी तरह का छोटा कोट पहने, शीशे की तरह चमकते बालों को ढंग से सँवारे। कमाल ही हो गया, वह तो ठिठककर रुकते-रुकते रह गया। लेकिन चूँकि उसकी आत्मा में बहुत पहले से ही तथाकथित रहस्यवादी भावनाएँ रत्ती-भर भी नहीं रह गयी थीं, इसलिए उसकी हैरानी फ़ौरन ग़ायब हो गयी। उसने होटल के गलियारे में से जाते हुए अपनी बीवी और बेटी से मज़ाक़ में सपने और यथार्थ की इस समानता की चर्चा की। किन्तु बेटी ने इस क्षण परेशानी से उसकी तरफ़ देखा, उदासी और इस अजनबी तथा अँधेरे द्वीप पर भयानक एकाकीपन की भावना ने अचानक उसके मन को दबोच लिया...

कोई ख़ास बड़ा आदमी कुछ ही देर पहले काप्री द्वीप के इस होटल से गया था। सान-फ़्रांसिस्को से आने वालों को कमरों का वही बढ़िया सेट दे दिया गया जिसमें वह रहा था। सबसे सुन्दर और काम में सबसे अधिक दक्ष, पतली और चौड़ी पेटी से कसी कमर वाली बेल्जियन नौकरानी को, जो छोटे-से दाँतेदार ताज़ जैसी कलफ़दार टोपी पहने थी, उनकी सेवा में लगाया गया। काले बालों और दहकती आँखों वाले सबसे प्रभावपूर्ण बैरे और उनके दरवाज़े के पास हर समय ड्यूटी बजाने के लिए नाटे, मोटे तथा सबसे फुर्तीले लुइजी को, जो अनेक बार अपनी नौकरी की ऐसी जगहें बदल चुका था, तैनात किया गया। कुछ क्षण बाद

बड़े बैरे ने जो फ़्रांसीसी था, सान-फ़्रांसिस्को के मेहमान के दरवाज़े पर धीरे-से दस्तक दी। वह यह जानने को आया था कि आगन्तुक महानुभाव शाम का भोजन करेंगे या नहीं और अगर उनका जवाब "हाँ" में होगा, जिसके बारे में उसे कोई सन्देह नहीं था, तो वह बतायेगा कि आज की भोजन-सूची में लोबस्टर, भुना मांस, एस्पैरागस और तीतर आदि हैं। इटली के उस बेहद घटिया जहाज़ ने सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव को ऐसे झटके-हिचकोले दिये थे कि अभी तक उसका सिर घूमता था, लेकिन फिर भी धीरे-धीरे क़दम रखते खिड़की के ग़रीब जाकर जो बड़े बैरे के भीतर आने पर खुल गयी थी और जिसमें से दूर के रसोईघर तथा बाग़ के गीले फूलों की गन्ध आ रही थी, उसने उसे बन्द कर दिया, यद्यपि आदत न होने के कारण वह बेढंगेपन से ही ऐसा कर पाया। महानुभाव ने धीरे-धीरे और स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया कि वे भोजन करेंगे, कि उनके लिए दरवाज़े से दूर और हॉल के सिरे पर मेज़ लगायी जाये, कि वे केवल स्थानीय शराब पियेंगे और बड़ा बैरा उसके हर शब्द का यही भाव प्रकट करने वाली ऊँची-नीची आवाज़ों में ऐसे समर्थन कर रहा था कि सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव की हर इच्छा बिल्कुल उचित है और उसे उसी रूप में पूरा किया जायेगा। अन्त में उसने सिर झुकाया और बड़ी नम्रता से पूछा –

"बस, हुज़ूर?"

और जवाब में विचारों में डूबा-सा "Yes" शब्द सुनने के बाद उसने इतना और कह दिया कि आज उनकी लॉबी में करमेल्ला और जूज़ेप्पे, जो सारे इटली तथा "पूरे पर्यटक जगत" में विख्यात हैं, तारान्तेल्ला नाच पेश करेंगे।

"मैंने पोस्टकार्डों पर उसका चित्र देखा है," सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव ने कुछ भी व्यक्त न करने वाली आवाज़ में कहा। "यह जूज़ेप्पे – उसका पति है क्या?"

"उसका चचेरा भाई, हुज़ूर," बड़े बैरे ने जवाब दिया।

और कुछ क्षण चुप रहने, कुछ सोचने के बाद, किन्तु कुछ भी कहे बिना सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव ने तनिक सिर झुकाकर बड़े बैरे को जाने का संकेत किया।

इसके पश्चात वह दूल्हे की तरह तैयार होने लगा। उसने सभी ओर बिजली की बत्तियाँ जला दीं, सभी दर्पण रोशनी और चमक, फ़र्नीचर तथा खुले सन्दूक़ों के प्रतिबिम्बों से मानो भर गये। वह दाढ़ी बनाने, नहाने और रह-रहकर घण्टी बजाने लगा। उसकी बीवी तथा बेटी के कमरों की घण्टियों की अधीर आवाज़ें भी उसी वक़्त होटल के गलियारे में उसकी घण्टी की आवाज़ को काटती हुई गूँजतीं। लाल पेशबन्द बाँधे हुए लूईजी ऐसी फूर्ती से, जो अनेक मोटों का विशेष लक्षण है और चेहरे पर भय का ऐसा भाव लाकर जिसे देख पानी की चमकती

बालटियाँ लिये निकट से गुज़रने वाली नौकरानियाँ इतना अधिक हँसतीं कि उनकी आँखों में आँसू तक आ जाते, घण्टी की आवाज़ पर फिरकी की तरह लुढ़कता जाता, उँगलियों की गाँठों से दरवाज़े को खटखटाता, बनावटी भीरुता और मूर्खता की सीमा तक पहुँची नम्रता दिखाते हुए पूछता –

"Ha sonato, signore?" *

और दरवाज़े के पीछे से उसे धीमी-धीमी, खरखरी और दिल को कचोटती-सी शिष्टतापूर्ण आवाज़ में सुनायी देता –

"Yes, come in..."

सान-फ़्रांसिस्को का यह महानुभाव अपने लिए इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण इस शाम को क्या अनुभव कर रहा था, क्या सोच रहा था? जहाज़ पर मतली महसूस करने वाले हर आदमी की तरह वह भी यही चाहता था कि भोजन करे, बहुत मज़ा लेते हुए सूप के पहले चम्मच, शराब के पहले घूँट की कल्पना कर रहा था और कपड़े आदि पहनकर तैयार होने का आम काम भी कुछ ऐसी उत्तेजना से कर रहा था कि उसके पास भावना में बहने या सोचने-विचारने के लिए वक़्त नहीं था।

दाढ़ी बनाने, मुँह-हाथ धोने और अपने कुछ नक़ली दाँतों को उनकी जगह पर फिर से लगाने के बाद उसने दर्पण के सामने खड़े होकर बाल भिगोये, चाँदी के फ़्रेम वाले ब्रशों से अपने बचे-बचाये सफ़ेद बाल गहरे पीले रंग की खोपड़ी के गिर्द जमाये, बहुत ज़्यादा पौष्टिक भोजन के कारण कमर के गिर्द थलथल हो गये अपने बूढ़े, मज़बूत शरीर पर मोतिया रंग के रेशमी अण्डरवीयर को खींचकर चढ़ाया, पतले-पतले, चपटे पैरों में काली रेशमी जुराबें और बढ़िया जूते पहने, घुटने झुकाकर अपने काले पतलून के रेशमी गेलिस और कलफ़ लगी तथा सामने की ओर उभरी हुई बर्फ़ जैसी सफ़ेद क़मीज़ को ठीक किया, कफ़ों में चमकते स्टड लगाये और इस सबके बाद अकड़े हुए कॉलर में कॉलर-स्टड लगाने का संघर्ष शुरू हुआ। फ़र्श अभी भी उनके पैरों के नीचे डोल रहा था, उँगलियों के सिरों में दर्द होता था, स्टड टेंटुए के नीचे की पिलपिली त्वचा पर चुभता था, लेकिन उसने सब्र से काम लिया और आख़िर कामयाब हो गया। तनाव से उसकी आँखें चमक रही थीं, बहुत ही कसे हुए तथा गला घोंटने वाले कॉलर के कारण उसका चेहरा सुरमई रंग का हो गया था और वह थककर सिंगार-मेज़ के सामने धम-से स्टूल पर बैठ गया। बड़े दर्पण में उसका पूरा प्रतिबिम्ब दिखायी दे रहा था और वह दूसरे दर्पणों में भी प्रतिबिम्बित हो रहा था।

"ओह, यह तो बड़ी भयानक बात है।" अपने गंजे, मज़बूत सिर को झुकाते हुए और यह समझने तथा विचार करने की कोशिश किये बिना कि क्या

* "आपने बुलाया, हुज़ुर?" (इतालवी)

भयानक बात है, वह बड़बड़ाया। इसके बाद उसने आदत के मुताबिक़ गाऊट की बीमारी के कारण सख़्त हुए जोड़ों वाली छोटी-छोटी उँगलियों, बादाम की शक्ल और बादामी रंग वाले बड़े-बड़े नाख़ूनों को ग़ौर से देखा और दृढ़ता से दोहराया, "यह बड़ी भयानक बात है..."

किन्तु इसी समय भोजन के लिए जाने की सूचना देने वाला घण्टा बुतपरस्तों के मन्दिर के घण्टे की तरह बहुत ज़ोर से दूसरी बार बजा। सान-फ़्रांसिस्को का महानुभाव झटपट उठा, टाई लगाकर और वास्कट पहनकर उसने अपने पेट को और कस लिया, कोट पहना, कफ़ों को ठीक किया और एक बार फिर अपने को दर्पण में निहारा। "यह साँवली, चंचल नयना, नारंगी रंग की फूलदार पोशाक पहनने वाली संकर-नीग्रो जैसी करमेल्ला अवश्य ही अद्‌भुत ढंग से नाचती होगी," वह सोच रहा था। फ़ुर्ती से क़दम बढ़ाता वह अपने कमरे से बाहर निकला, कालीन पर चलता हुआ बीवी के बग़लवाले कमरे के पास गया और ऊँची आवाज़ में पूछा कि क्या वे जल्द ही तैयार हो जायेंगी।

"पाँच मिनट में!" बेटी ने गूँजती और अब चहकती-सी आवाज़ में जवाब दिया।

"बहुत अच्छी बात है," सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव ने कहा।

और वह वाचनालय की खोज में बरामदों को लाँघने तथा लाल कालीन बिछी सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा। सामने से आने वाले नौकर उसे देखकर दीवार से सट जाते, किन्तु वह ऐसे चलता जाता मानो उनकी तरफ़ उसका ध्यान ही न गया हो। झुकी पीठ और सफ़ेद बालों वाली एक बुढ़िया को, जो बुढ़ापे के बावजूद उघाड़े गले की काट वाला हल्के सलेटी रंग का रेशमी फ़्राक पहने थी और भोजन के लिए हॉल में पहुँचने में देर हो जाने के कारण अपना पूरा ज़ोर लगाकर जल्दी-जल्दी, किन्तु मुर्ग़ी जैसी हास्यास्पद चाल से उसके आगे-आगे जा रही थी, वह बड़ी आसानी से पीछे छोड़कर आगे निकल गया। भोजनालय में सभी लोग मेज़ों पर बैठे थे और खाना आरम्भ कर चुके थे। वह उसके शीशे के दरवाज़े के पास एक मेज़ के सामने रुका जिस पर सिगारों और मिस्री सिगरेटों के पैकेटों का ढेर लगा हुआ था। उसने बड़ा मानीला सिगार चुना और तीन लीर का सिक्का मेज़ पर फेंक दिया। बन्द बग़ीचे को लाँघते हुए उसने खुली खिड़की से यों ही बाहर झाँक लिया – अँधेरे में से प्यारी-सी हवा का हल्का झोंका आया, उसे लगा कि उसे बूढ़े ताड़ वृक्ष की विराटकाय प्रतीत होने वाली फुनगी तथा सितारों पर फैली हुई उसकी शाखाएँ दिखायी दे रही हैं, सम लय में दूर से सागर का शोर सुनायी दे रहा है... आरामदेह, शान्त और केवल मेज़ों के ऊपर प्रकाश वाले वाचनालय में ईब्सन जैसा दिखने वाला कोई जर्मन, जिसके बाल सफ़ेद थे, जो गोल कमानी

वाला चाँदी का चश्मा चढ़ाये था और जिसकी पागलों जैसी तथा बहकी-बहकी-सी आँखें थीं, खड़ा हुआ अख़बारों को उलट-पलट रहा था, उन्हें सरसरा रहा था। सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव ने उसे उदासीनता से देखा, हरे शेड वाले लैम्प के ग़रीब कोने में रखी चमड़े की गहरी आरामकुर्सी पर बैठ गया, एक आँख का चश्मा चढ़ाया, गले को दबाने वाले कॉलर से कुछ राहत पाने के लिए सिर को झटका और पूरी तरह अख़बार की ओट में ग़ायब हो गया। उसने कुछ लेखों के शीर्षकों पर जल्दी-जल्दी नज़र डाली, अन्तहीन बाल्कान युद्ध के बारे में कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं, अपने अभ्यस्त अन्दाज़ में अख़बार का पृष्ठ उलटा – अचानक इसी समय शीशे जैसी चमक के साथ पंक्तियाँ उसके सामने चमचमा उठीं, उसकी गर्दन आगे की ओर तन गयी, आँखें बाहर को निकल आयीं और एक आँख का चश्मा नाक से नीचे गिर गया... वह झटके के साथ आगे की ओर बढ़ा, उसने साँस लेनी चाही – और उसके गले से बहुत ज़ोर से घरघर की आवाज़ निकलने लगी, उसका नीचे वाला जबड़ा खुल गया, सोने से भरे हुए उसके दाँत अपनी चमक दिखाने लगे, सिर कन्धे पर लुढ़क गया और बेजान-सा डोलने लगा, क़मीज़ का सामने वाला भाग ऊपर को उभर आया और कालीन पर एड़ियाँ रगड़ता, छटपटाता तथा किसी के साथ बुरी तरह संघर्ष करता हुआ उसका पूरा शरीर फ़र्श की ओर लुढ़कने-खिसकने लगा।

वाचनालय में अगर जर्मन न होता, तो इस भयानक घटना पर तुरत-फुरत तथा बड़ी होशियारी से पर्दा डाल दिया गया होता, सान-फ़्रांसिस्को के महानुभाव को फ़ौरन सिर और टाँगों से पकड़कर पिछले दरवाज़े से कहीं दूर ले जाया गया होता और होटल में किसी को कानोकान यह ख़बर न होती कि इसने क्या मुसीबत पैदा कर डाली है। लेकिन जर्मन तो चीख़ता हुआ वाचनालय से बाहर भागा और उसने पूरे होटल और पूरे भोजनालय को अपने शोर से सिर पर उठा लिया। बहुत-से लोग भोजन छोड़कर भाग पड़े, बहुतों के चेहरों का रंग उड़ गया और वे वाचनालय की तरफ़ दौड़ चले, अनेक भाषाओं में यही सुनायी देने लगा – "क्या हो गया?" – और कोई भी ढंग से जवाब नहीं दे पाया, किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्योंकि लोग अभी तक मौत से सबसे अधिक हैरान होते हैं और उस पर यक़ीन नहीं करना चाहते। होटल का मालिक एक के बाद दूसरे मेहमान की ओर लपक रहा था, भागे जाने वालों को रोकने और जल्दी-जल्दी यह तसल्ली देकर उन्हें शान्त करने की कोशिश कर रहा था कि कोई ख़ास बात नहीं हुई, कि सान-फ़्रांसिस्को के एक महानुभाव को ज़रा-सा ग़श आ गया है... लेकिन इसके शब्दों पर कोई भी कान नहीं दे रहा था, क्योंकि बहुतों ने अपनी आँखों से बैरों तथा नौकरों को इस महानुभाव की टाई, वास्केट, मिचुड़ा डिनर-कोट और न जाने क्यों, रेशमी काली जुराब पहने चपटे पैरों पर से

बढ़िया जूते भी उतारते देखा था। वह अभी भी छटपटा रहा था। वह डटकर मौत से मोर्चा ले रहा था, किसी हालत में भी उसके सामने, जो ऐसे अप्रत्याशित और भद्दे ढंग से उस पर झपटी थी, घुटने नहीं टेकना चाहता था। वह अपने सिर को इधर-उधर झटक रहा था, ऐसे घरघर की आवाज़ निकाल रहा था मानो उसका गला काट दिया गया हो, शराबी की तरह अपनी आँखों को दायें-बायें घुमा रहा था... जब उसे नीचे वाले गलियारे के सिरे पर सबसे छोटे, सबसे घटिया, सबसे नम और ठण्डे, तैंतालीस नम्बर के कमरे के पलंग पर जल्दी से लाकर लिटा दिया गया, तो उसकी बेटी भागी हुई आयी। उसके बाल खुले थे और चोली से ऊपर उठे हुए उरोज दिखायी दे रहे थे। उसके पीछे-पीछे महानुभाव की लम्बी-मोटी बीवी आयी, जो डिनर के लिए बन-ठनकर बिल्कुल तैयार थी। भय से उसका मुँह गोल था... लेकिन महानुभाव ने इस समय तक सिर को हिलाना-डुलाना भी बन्द कर दिया था।

पन्द्रह मिनट बाद होटल में सब कुछ जैसे-तैसे सामान्य हो गया। किन्तु शाम का समारोही रंग ऐसे बिगड़ गया था कि उसे ठीक करना सम्भव नहीं था। कुछ लोग भोजनालय में लौट आये थे और चुपचाप तथा ग़मगीन-सी सूरत बनाये हुए भोजन समाप्त कर रहे थे, जबकि होटल का मालिक एक के बाद दूसरी मेज़ पर जाता, किसी अपराध के बिना अपने को अपराधी अनुभव करता हुआ विवशता तथा शिष्टतापूर्ण खिन्नता से कन्धे झटकता, सबको विश्वास दिलाता कि वह बहुत अच्छी तरह से यह समझता है कि "यह कितनी अप्रिय बात है" और वचन देता है कि इस अप्रियता को दूर करने के लिए "अपने बस-भर सब कुछ करेगा"। तारान्तेल्ला का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा, फ़ालतू बत्तियों को बुझा दिया गया, होटल में रहने वाले अधिकतर लोग शहर के बियरख़ाने में चले गये और ऐसी ख़ामोशी छा गयी कि लॉबी में घड़ी की टिक-टिक साफ़ सुनायी दे रही थी जहाँ केवल एक तोता अपने पिंजरे में बेमानी-सा कुछ बड़बड़ा रहा था और जिसने सोने की कोशिश में हास्यास्पद ढंग से ऊपर की छड़ पर किसी तरह अपना पंजा टिका लिया था... सान-फ्रांसिस्को का महानुभाव खुरदरे, ऊनी कम्बलों के नीचे, जिनके ऊपर सिर्फ़ एक धीमा-सा बल्ब जल रहा था, लोहे के घटिया-से पलंग पर पड़ा था। बर्फ़ से भरी रबड़ की बोतल उसके गीले और ठण्डे मस्तक पर खिसक आयी थी। उसका निर्जीव हो चुका नीलगूँ चेहरा धीरे-धीरे ठण्डा होता जा रहा था और सोने की लौ देने वाले खुले मुँह से निकलने वाली खरखरी आवाज़ धीमी पड़ती जा रही थी। यह खरखरी आवाज़ सान-फ्रांसिस्को के महानुभाव की नहीं थी - वह तो ख़त्म हो चुका था - किसी दूसरे की ही थी। उसकी बीवी, बेटी, डॉक्टर और नौकर-चाकर खड़े हुए उसे देख रहे थे। ये लोग जिस चीज़ के

इन्तज़ार में थे और जिसके होने से डरते थे – अचानक वह हो गयी यानी साँस की खरखराहट बन्द हो गयी। धीरे–धीरे इन सबके देखते–देखते ही मृत का चेहरा पीला हो गया और उसका नाक–नक़्शा तीखा तथा उजला होने लगा...

होटल का मालिक आया। "Jià è morto"* डॉक्टर ने फुसफुसाकर उससे कहा। मालिक ने शान्त चेहरे से कन्धे झटक दिये। महानुभाव की पत्नी, जिसके गालों पर धीरे–धीरे आँसू बह रहे थे, होटल के मालिक के क़रीब गयी और उसने सहमी–सी आवाज़ में उससे कहा कि मृत को अब उसके कमरे में ले चलना चाहिए।

"ओह, नहीं, मदाम," होटल के मालिक ने झटपट, आदर से, किन्तु किसी प्रकार की नम्रता के बिना, अंग्रेज़ी में नहीं, बल्कि फ़्रांसीसी में इस बात का विरोध किया। उसे अब उन थोड़े–से पैसों में ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी जो सन–फ़्रांसिस्को से आने वाले मेहमान उसकी तिज़ोरी में छोड़ सकते थे। "यह तो बिल्कुल मुमकिन नहीं है, मदाम," उसने कहा और बात को साफ़ करने के लिए यह भी जोड़ दिया कि वह कमरों के इस सेट को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है, कि अगर वह उसकी इच्छा पूरी करेगा तो सारे काप्री को यह मालूम हो जायेगा और पर्यटक इससे कतराने लगेंगे।

सान–फ़्रासिस्को के महानुभाव की बेटी, जो होटल के मालिक को अजीब ढंग से लगातार देखती रही थी, कुर्सी पर बैठ गयी और अपने मुँह पर रूमाल रखकर सिसकने लगी। महानुभाव की पत्नी के आँसू एकदम सूख गये और चेहरा तमतमा उठा। उसने आवाज़ ऊँची की और अपनी भाषा में बोलते हुए अपनी इच्छा की पूर्ति की माँग करने लगी। उसे अभी तक यह विश्वास नहीं था कि उनके प्रति आदर की भावना का पूरी तरह अन्त हो गया है। होटल के मालिक ने आदरपूर्ण गरिमा से उसे टोकते हुए कहा – अगर मदाम को होटल का क़ानून–क़ायदा पसन्द नहीं है तो वह उसे यहीं रोके रखने की जुर्रत नहीं कर सकता। उसने दृढ़तापूर्वक यह घोषणा की कि आज तड़के ही शव को यहाँ से ले जाया जाना चाहिए, कि पुलिस को इस मामले की ख़बर दी जा चुकी है, कि पुलिस का प्रतिनिधि अभी यहाँ आ जायेगा और ज़रूरी कार्रवाई पूरी कर देगा... मदाम ने पूछा कि क्या काप्री में कोई तैयार ताबूत, बेशक मामूली–सा ही, मिल जायेगा या नहीं? बड़े अफ़सोस की बात थी, मगर यह बिल्कुल नामुमकिन था और किसी के लिए इतने थोड़े वक़्त में उसे बनाना भी सम्भव नहीं था। कोई दूसरा ही रास्ता ढूँढ़ना होगा... मिसाल के तौर पर उसके यहाँ बड़ी और लम्बी पेटियों में अंग्रेज़ी सोडे की बोतलें आती हैं... ऐसी एक पेटी में भीतर लगी हुई तख़्तियों को निकाला जा सकता था...

* "चल बसा" (इतावली)

रात के वक़्त होटल में सभी लोग सो रहे थे। तैंतालीस नम्बर के कमरे की खिड़की खोल दी गयी। यह खिड़की बाग़ के कोने में खुलती थी जहाँ पत्थर की ऊँची दीवार के नीचे, जिसके ऊपर टूटा शीशा धँसा था, केले का मरियल-सा पेड़ उगा हुआ था। बत्तियाँ बुझा दी गयीं, दरवाज़े का ताला बन्द कर दिया गया और सब चले गये। अँधेरे में केवल मृत रह गया, आकाश से नीले सितारे उसे ताक रहे थे और दीवार में से झींगुर ने उदासी भरी मस्ती में अपना झीं-झीं का राग अलापना शुरू कर दिया था... होटल के गलियारे में, जहाँ बहुत ही मद्धिम रोशनी थी, दो नौकरानियाँ खिड़की के दासे पर बैठी हुई कुछ रफ़ू कर रही थीं। स्लीपर पहने और बाँह पर ढेर सारे कपड़े डाले हुए लूइजी ने प्रवेश किया।

"Pronto?" (तैयार हो गया?) दालान के सिरे पर भयानक दरवाज़े की ओर आँखों से इशारा करते हुए उसने चिन्तापूर्ण ऊँची फुसफुसाहट में पूछा। अपना ख़ाली हाथ उस दिशा में धीरे-से हिलाते हुए वह ऊँची आवाज़ में और मानो गाड़ी को विदा करते हुए "Partenza"!* फुसफुसाकर चिलाया। इटली में गाड़ी के किसी स्टेशन से चलने पर ऊँची आवाज़ में यही शब्द कहा जाता है। दोनों नौकरानियाँ अपनी मूक हँसी को दबाते हुए एक-दूसरी के कन्धे पर गिर गयीं।

इसके बाद वह धीरे-धीरे उछलते और भागते हुए दरवाज़े के पास पहुँचा, उसने धीरे-से उस पर दस्तक दी, एक ओर को सिर झुकाया और बहुत ही आदरपूर्ण धीमी आवाज़ में पूछा –

"Ha sonato, signore?"

और अपने गले को दबाकर, नीचे वाले जबड़े को आगे की ओर बढ़ाकर, खरखरी, लटकती-सी और दर्द भरी आवाज़ में मानो दरवाज़े के पीछे से ख़ुद को ही उत्तर दिया –

"Yes, come in..."

पौ फटने पर जब तैंतालीस नम्बर के कमरे की खिड़की के सामने कुछ उजाला हो गया, जब नम हवा में केले के जर्जर पत्ते सरसरा उठे, जब आकाश ने पलक खोली तथा काप्री द्वीप के ऊपर अपनी प्रातःकालीन नीलिमा फैला दी और इटली के दूरस्थ नीले पर्वतों के पीछे से ऊपर उठने वाले सूरज की रोशनी में मोटे-सोल्यारो की साफ़ दिखायी देने वाली चोटी सुनहरी हो उठी, जब सड़क की मरम्मत करने वाले पर्यटकों के लिए द्वीप की पगडण्डियों की मरम्मत करने चल दिये, उसी समय तैंतालीस नम्बर के कमरे में सोडावाटर की बोतलों की एक लम्बी, ख़ाली पेटी लायी गयी। जल्दी ही वह बहुत भारी हो गयी और उस छोटे

* "गाड़ी चल दी"! (इतालवी)

दरबान के घुटनों को ज़ोर से दबाने लगी जो एक घोड़ा-जुती गाड़ी में पत्थरों की दीवारों और अंगूरों के बग़ीचों के बीच से बल खाती, काप्री की ढालों पर नीचे ही नीचे, ठीक सागर तक जाती सफ़ेद सड़क पर बहुत तेज़ी से उसे लिये जा रहा था। पुराना-धुराना कोट, जिसकी आस्तीनें छोटी थीं और टूटे हुए बूट पहने, थलथल शरीर और लाल-लाल आँखों वाले कोचवान का सिर भारी था, क्योंकि वह सारी रात पाँसे खेलता रहा था। वह अपने तगड़े, जवान घोड़े पर लगातार चाबुक बरसाता जाता था जिसकी लगाम का सिर वाला भाग सिसली के अन्दाज़ में ज़ोर से बजने वाली सभी तरह की घण्टियों और ऊन के लाल फुँदनों से सजा हुआ था तथा भागते समय जिसके कटे-छँटे माथे के बालों के ऊपर गज-भर लम्बा पंख हिल-डुल रहा था। कोचवान अपनी बुरी आदतों और ऐबों-बुराइयों तथा इस बात से बेहद दुखी था कि पिछली रात वह आख़िरी कौड़ी तक जुए में हार गया था। किन्तु सुबह बड़ी ताज़गी देने वाली थी। प्यारी हवा, सागर की निकटता तथा सुबह के निर्मल आकाश के प्रभाव से सिर का भारीपन फ़ौरन ग़ायब हो जाता है और बेफ़िक्री लौट आती है। इसके अलावा उस अप्रत्याशित आमदनी से भी कोचवान के दिल को तसल्ली मिली थी जो उसे सान-फ़्रांसिस्को के किसी महानुभाव से प्राप्त हुई थी और जिसका बेजान सिर उसके पीछे रखी पेटी में हिल-डुल रहा था... नीचे, नेपल्ज़ की खाड़ी की कोमल और उजली नीलिमा पर, जिसकी वहाँ कुछ कमी नहीं, गुबरैले की भाँति लेटा हुआ छोटा-सा जहाज़ अपने भोंपू को आख़िरी बार बजा रहा था और उसकी ये आवाज़ें सारे द्वीप में, जिसका हर मोड़, हर पहाड़ी चोटी, हर पत्थर सभी जगह से इतना साफ़ दिखायी दे रहा था मानो हवा का आवरण हो ही नहीं, बड़े ज़ोर से प्रतिध्वनित हो रही थीं। घाट के क़रीब बड़ा दरबान, जो महानुभाव की बीवी और बेटी को कार में ला रहा था, जिनकी उनींदेपन तथा रोने के कारण आँखें धँसी हुई थीं, छोटे दरबान की घोड़ागाड़ी के बराबर पहुँच गया। दस मिनट बाद छोटा-सा जहाज़ पानी को छपछपाता तथा सान-फ़्रांसिस्को के परिवार को हमेशा के लिए काप्री से ले जाता हुआ सोरेण्टो और कास्टेलामारे की ओर बढ़ चला... और द्वीप पर फिर से शान्ति हो गयी, चैन छा गया।

दो हज़ार साल पहले इस द्वीप पर एक ऐसा आदमी रहता था जो अपनी लालसाओं-वासनाओं की पूर्ति के मामले में बड़ा नीच था, न जाने क्यों, करोड़ों लोगों पर हुक्म चलाता था और उसने उन पर हद से ज़्यादा ज़ुल्म ढाये थे। मानवजाति उसे सदियों तक याद रख रही है और दुनिया के कोने-कोने से लोग पत्थर के उस घर को देखने आते हैं, जहाँ वह द्वीप की एक सबसे खड़ी उठान पर रहता था। इस अनूठी सुबह को इसी उद्देश्य से काप्री आने वाले लोग अभी तक होटलों में सो रहे थे, यद्यपि उनके दरवाज़ों के सामने चूहे जैसे रंग वाले

छोटे गधे, जिन पर लाल ज़ीन कसे हुए थे, आकर खड़े हो चुके थे। पर्यटकों – जवान और बूढ़े अमेरिकी तथा जर्मन मर्द–औरतों को जागने और खा–पी लेने के बाद फिर से इन्हीं गधों पर सवार होकर ऊपर जाना था और काप्री की ख़स्ताहाल बुढ़ियों को उभरी नसों वाले हाथों में डण्डा लेकर इन्हें फिर से हाँकते हुए पथरीली पगडण्डियों पर मोटे–तिबेरिओ की चोटी तक उनके पीछे–पीछे भागना था। इस बात से सान्त्वना पाकर कि सान–फ़्रांसिस्को के मृत बूढ़े को, जो उनके साथ ही जाने वाला था और जिसने ऐसा करने के बजाय मौत की याद दिलाकर उन्हें केवल डरा दिया था, नेपल्ज़ भेजा जा चुका है, पर्यटक गहरी नींद सो रहे थे। द्वीप पर अभी तक नीरवता छाई थी, शहर अभी तक ऊँघ रहा था और दुकानें बन्द थीं। छोटे–से चौक में केवल मछलियाँ और सागपात ही बिक रहे थे। वहाँ केवल साधारण लोग ही थे और उन्हीं के बीच, किसी कामकाज के बिना लम्बा–तड़ंगा, मस्त–फक्कड़ आवारा, बहुत ही ख़ूबसूरत बूढ़ा माँझी लोरेन्त्सो भी खड़ा था जो इटली–भर में मशहूर था और कई चित्रकारों के चित्रों का मॉडल भी बन चुका था। पिछली रात उसने जो दो समुद्री झींगे पकड़े थे, उन्हें कौड़ियों के मोल बेच दिया था और अब वे उसी होटल के बावर्ची के पेशबन्द में सरसर की आवाज़ पैदा कर रहे थे जहाँ सान–फ़्रासिस्को के परिवार ने रात बितायी थी। अब वह अपने चिथड़ों, मिट्टी की पाइप और एक कान पर झुकी हुई लाल रंग की ऊनी टोपी की छवि दिखाता, अपने इर्द–गिर्द नज़र दौड़ाता हुआ शाही अन्दाज़ में बेशक शाम तक बड़े इत्मीनान से यहीं खड़ा रह सकता था। अनाकाप्री से दो अबरूज़ी पहाड़ी आदमी चट्टानों को काटकर बनाये गये प्राचीन फ़िनीशिया मार्ग, उसकी पथरीली पैड़ियों से मोण्टे–सोल्यारो की खड़ी चट्टान से नीचे आ रहे थे। एक की चमड़े की बरसाती के नीचे मश्कबीन थी – दो बीनों के साथ बकरे की बड़ी–सी खाल और दूसरे के पास लकड़ी की बाँसुरी जैसी कोई चीज़ थी। वे पहाड़ी से उतरते आ रहे थे और उनके नीचे ख़ुशी–भरा, सुन्दर और धूप नहाया पूरा देश फैला था – उनके क़दमों पर पड़े थे लगभग पूरे द्वीप के चट्टानी शिखर, वह अद्‌भुत नीलिमा जिसमें द्वीप तैर रहा था, अधिकाधिक ऊपर उठते और गरम हो चुके चकाचौंध करते सूरज के नीचे और पूरब की ओर सागर के ऊपर चमकती भाप, भोर के अनुरूप अभी तक अस्पष्ट इटली का असीम विस्तार, उसके निकट तथा दूरवर्ती पर्वत जिनके सौन्दर्य का वर्णन करना इन्सान के बस की बात नहीं। आधे रास्ते में उन्होंने अपनी चाल धीमी कर ली। रास्ते के ऊपर मोण्टे–सोल्यारो की चट्टानी दीवार के गुफा–द्वार पर माँ मरियम की मूर्ति खड़ी थी, गर्माहट, प्रकाश और धूप में चमकती, प्लस्तर की सफ़ेद पोशाक पहने, बारिशों से गेरुआ–सुनहरा हो चुका महारानी का मुकुट लगाये, विनीत और

सौम्य, अपने अति पावन बेटे के शाश्वत तथा आनन्दमय वासस्थान – आकाश – की ओर नज़र उठाये। इन दोनों पहाड़ी लोगों ने अपनी टोपियाँ उतार लीं और सूर्य, भोर, इस द्वेषपूर्ण तथा सुन्दर संसार के सभी दुखी–पीड़ितों की पवित्र संरक्षिका – मरियम – और जूदिया के दूरस्थ देश की बीथलेहेम की गुफा में एक ग़रीब चरवाहे के झोपड़े में उसकी कोख से जन्म लेने वाले उसके बेटे का सीधा–सादा, नम्रतापूर्ण तथा सुखद स्तुतिगान करने लगे...

इसी बीच सान–फ़्रांसिस्को के मृत बूढ़े का शरीर अमेरिका के तटों पर अपनी क़ब्र की ओर लौट रहा था। बहुत–सा तिरस्कार और लोगों की बहुत–सी उपेक्षा सहने, एक बन्दरगाह के गोदाम से दूसरे बन्दरगाह के गोदाम तक सप्ताह–भर यात्रा करने के बाद वह आख़िर उसी मशहूर जहाज़ पर पहुँच गया था जिस पर कुछ ही दिन पहले उसे इतने आदर–सम्मान से यूरोप में लाया गया था। किन्तु अब उसे जीवितों से छिपाया जाता था – तारकोल पुते ताबूत में उसे खाव के अँधेरे में उतार दिया गया था। जहाज़ फिर से अपनी लम्बी समुद्री यात्रा पर रवाना हो गया। रात के वक़्त वह काप्री द्वीप के पास से गुज़रा और उस व्यक्ति को, जो उसकी बत्तियों को तट से अँधेरे सागर में धीरे–धीरे ग़ायब होते देख रहा था, वे कारुणिक प्रतीत हुईं। लेकिन वहाँ, उस जहाज़ के उजले, झाड़–फानूसों से चमकते–जगमगाते हॉलों में इस रात भी सदा की भाँति नाच–रंग का समाँ बँधा हुआ था।

अगली रात और उसके बाद की रात को भी ऐसे ही बॉल–नृत्य हुआ – एक बार फिर से महासागर में ज़ोर का तूफ़ान आया जिससे वह अन्त्येष्टि–प्रार्थना की भाँति मरमर करता और रुपहली झालर वाले ताबूत जैसे काले पर्वतों की तरह ऊपर उठता और फेन उगलता रहा। नयी और पुरानी – दोनों दुनियाओं के बीच पाषाणी फाटक यानी जिबराल्टर की चट्टान से देखते हुए शैतान को बर्फ़ के पर्दे के पीछे से अँधेरे और तूफ़ान में बढ़े जा रहे जहाज़ की असंख्य चमकती हुई आँखें मुश्किल से ही दिखायी दे रही होंगी। शैतान चट्टान की तरह ही विराट था, किन्तु पुराने दिलवाले नये इन्सान द्वारा निर्मित अनेक मंज़िलों और अनेक चिमनियोंवाला जहाज़ और भी विराट था। तूफ़ान उसके साज़–सामान, बर्फ़ से सफ़ेद उसकी चोड़े मुँह की चिमनियों पर ख़ूब ज़ोर से झपटता था, लेकिन वह दृढ़, दिलेर और गरिमापूर्ण था, भय उपजाता था। चक्कर काटती बर्फ़ में सबसे ऊपरवाले डेक पर बड़े आरामदेह और मद्धिम रोशनी वाले कमरों में बुतपरस्तों के देवता जैसा जहाज़ का भारी–भरकम कप्तान जब–तब और कुछ देर को झपकी लेता हुआ पूरे जहाज़ की अध्यक्षता कर रहा था। वह तूफ़ान में घुटी–घुटी आवाज़ वाले भोंपू की भारी और तीखी आवाज़ें सुनता था, किन्तु बग़ल के कमरे में उस चीज़ की निकटता से तसल्ली पाने की कोशिश करता

था जिसे वह स्वयं ही बहुत कम समझ सकता था। बग़ल वाला, मानो कवच मढ़ा यह कमरा जब-तब रहस्यपूर्ण शोर और सिर के गिर्द धातु का अर्धचक्र लगाये पीले चेहरे वाले रेडियो ऑपरेटर के गिर्द जल उठने वाली नीली बत्तियों की भभक और सूखी चटक से भर जाता था। सबसे नीचे, 'एटलाण्टिस' की जलमग्न गहराइयों में, जहाँ बायलरों और अन्य मशीनों का बीस टन बोझ धुँधला-सा दिख रहा था, सूँ-सूँ करती भाप निकल रही थी और उबलता तेल तथा पानी रिस रहा था, वहाँ उस रसोई में, जहाँ नीचे से जलायी गयी जहन्नुमी ज्वालाओं पर जहाज़ की गति को पकाया जा रहा था, अपने संकेन्द्रण में भयावह ऊर्जा को मथा जा रहा था, उस ऊर्जा को जो जहाज़ के आख़िरी हिस्से तक, अन्तहीन लम्बे तहख़ाने, गोलाकार मद्धिम रोशनी वाली सुरंग तक पहुँचती थी। वहीं एक विराटकाय धुरा मानव की आत्मा को कुचलने वाली दृढ़ता से अपने तेल के डबरे में ऐसे धीरे-धीरे घूम रहा था मानो नालमुख जैसी सुरंग में कोई ज़िन्दा राक्षस अपने फैले अंग हिला-डुला रहा हो। किन्तु 'एटलाण्टिस' के मध्य भाग, उसके भोजनालयों और नृत्य-हॉलों में जगमगाहट थी, वहाँ ख़ुशी छलक रही थी, सजे-धजे लोगों की भीड़ की बातचीतों की भनभनाहट थी, तार वाले बाजों की संगत में गीत-गाने गाये जा रहे थे और वे ताज़ा फूलों की सुगन्ध से महक रहे थे। फिर से इस भीड़, बत्तियों, रेशमी पोशाकों और हीरों की चमक-दमक तथा नारियों के नंगे कन्धों के बीच यातनापूर्ण ढंग से नृत्य-मुद्रा में झूमते अथवा एक-दूसरे के साथ चिपके हुए किराये के छरहरे और लचीले बदन वाले प्रेमी-जोड़े को देखा जा सकता था - बहुत ही मामूली केश-विन्यास किये, पलकें झुकाये, गुनाह की हद तक विनम्र लड़की और तंग, लम्बे पल्लों का फ़्राक-कोट तथा बढ़िया जूते पहने और मानो गोंद से चिपकाये काले बालों वाले, लम्बे, ख़ूबसूरत नौजवान को, जिसका चेहरा पाउडर के कारण पीला था और जो एक भीमकाय जोंक जैसा लगता था। और कोई भी यह नहीं जानता था कि बेहयाई की हद तक उदासी भरे संगीत के साथ कृत्रिम, मधुर पीड़ा का नाटक करते-करते यह जोड़ा कभी का ऊब चुका है और न ही किसी को यह मालूम था कि बहुत नीचे, महासागर और तूफ़ान में से जैसे-तैसे आगे बढ़ते हुए जहाज़ की अँधेरी, उमस भरी गहराइयों के निकट वाले अन्धकारपूर्ण तल में क्या रखा हुआ है...

1915

अनु. - मदनलाल 'मधु'

• • •

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2021

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिंगारी।
घर-घर तक चिंगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुँचाना होगा।

तीन दशक से भी पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी-सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी-सी दुकान और फुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर-घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। अपने प्रदर्शनी वाहनों के माध्यम से भी जनचेतना कई राज्यों के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी, मराठी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला-सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन-संघर्ष-सृजन-प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइए, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिए।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

नयी
1. **पहला अध्यापक**/चिंगीज़ आइत्मातोव 50.00
2. **तरुणाई का तराना**/याङ मो ...
3. **तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ...
4. **माँ**/मक्सिम गोर्की 275.00
5. **वे तीन**/मक्सिम गोर्की 75.00
6. **मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की ...
7. **जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की ...
8. **मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की ...
9. **फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की 55.00
10. **अभागा**/मक्सिम गोर्की 40.00
11. **बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की 25.00
12. **असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई 260.00
13. **तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव (दो खण्डों में) 160.00
14. **गोदान**/प्रेमचन्द ...
15. **निर्मला**/प्रेमचन्द ...
16. **पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र ...
17. **चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र ...
18. **गृहदाह**/शरत्चन्द्र ...
19. **शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र ...
20. **इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का ...
21. **इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव ...
22. **दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव 70.00
23. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
24. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
25. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/ व्सेवोलोद इवानोव 30.00
26. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
27. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
28. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
29. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00

30. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 70.00

31. **Mother**/*Maxim Gorky* 250.00

32. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

नयी 3. **इटली की कहानियाँ** 150.00

4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 200.00
6. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) 150.00
7. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 15.00
8. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** 10.00

अन्तोन चेख़व

9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) 150.00
10. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) 150.00

11. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
12. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
13. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
14. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
15. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
16. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
17. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00
18. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
19. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
20. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
21. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
22. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
23. **समय के पंख**/ कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
24. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
25. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
26. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
27. **दोन की कहानियाँ**/ मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
28. **अब इन्साफ़ होने वाला है** (भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन) (ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/ स. **शकील सिद्दीक़ी** ...
29. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
30. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/ मदन मोहन 35.00

कविताएँ

नयी 1. **कौन देखता है कौन दिखता**/लाल्टू 150.00

नयी 2. **अनिश्चय के गहरे धुएँ में**/ निर्मला गर्ग 100.00

3. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/ पाब्लो नेरूदा 60.00

4. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/ लैंग्सटन ह्यूज़ 60.00

5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट** (मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल) 130.00 (ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित)

6. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) ...

7. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00

8. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/ हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00

9. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00

10. **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/ होसे मारिया सिसों 25.00

11. **इन्तिफ़ादा :** फ़िलस्तीनी कविताएँ/ स. रामकृष्ण पाण्डेय 100.00

12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :** फ़िलस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन) **A Rose Breaking Out of Steel and Blood** (Palestinian Poems) ...

13. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश 125.00

14. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00

15. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00

16. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/ विष्णु खरे 60.00

17. **वाचाल दायरों से दूर**/मलय 125.00

18. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00

19. **देखते न देखते**/मलय 65.00

20. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00

21. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00

22. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...

23. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00

24. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00

25. **कविता का जीवन**/असद ज़ैदी 75.00

26. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00

27. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/ शशिप्रकाश 50.00

28. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00

29. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/ कात्यायनी 120.00

30. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 120.00

31. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी 150.00

32. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00

33. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00

34. **नगर में बर्बर**/कविता कृष्णपल्लवी 100.00 (अँधेरे समय की कुछ कविताएँ और कुछ क़िस्से)

35. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00

36. **यह जो वक़्त है**/कपिलेश भोज 60.00

37. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/ नरेश चन्द्रकर 60.00

38. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00

39. **तो**/शैलेय 75.00

40. **पानी है तो फूटेगो**/ राजेश सकलानी 100.00

41. **सवालों का कारख़ाना**/सरिता तिवारी (नेपाली कविताएँ) 100.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00
3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की . . .
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/ अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/ व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/ निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री–विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच** (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य–विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/बेलिंस्की, हर्ज़ेन, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00
5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका श्रृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**
कात्यायनी, सत्यम 25.00

आह्वान पुस्तिका श्रृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

——::——

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1. **नौजवानों से दो बातें**/ पीटर क्रोपोटकिन 15.00
2. **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/ भगतसिंह 15.00
3. **मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह 15.00
4. **बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह 15.00
5. **जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह 15.00
6. **भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह 15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. **भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़** स. सत्यम 350.00
2. **शहीदेआज़म की जेल नोटबुक** भगतसिंह 100.00
3. **विचारों की सान पर**/भगतसिंह 50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. **बहरों को सुनाने के लिए** एस. इरफ़ान हबीब 160.00 (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)
2. **क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा 25.00
3. **भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र 25.00
4. **यश की धरोहर**/भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर 50.00
5. **संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा 100.00
6. **शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/ स. डॉ. हरदीप सिंह 40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है** ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 80.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 100.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 30.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 20.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 20.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 20.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 25.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00
6. **मार्क्सवाद-लेनिनवाद और राष्ट्रीय प्रश्न** (एक बहस)/शिवानी, अभिनव 150.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 20.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00
3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की ...
4. **मई दिवस का इतिहास**/ अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00
6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 15.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 10.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** ...
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 20.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** ...
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** ...
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 120.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/ आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह 150.00
19. **तीन कृषि विधेयक और मज़दूर वर्ग का नज़रिया**/अभिनव 40.00

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार



एक प्रति : 5 रुपये

(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड

निशातगंज, लखनऊ-226006

फ़ोन : 0522-4108495

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स ...
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र** मार्क्स-एंगेल्स 50.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उजरती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/ कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/ कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00
11. **जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 30.00
12. **समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स ...
13. **पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन 15.00
14. **एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन ...
15. **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन 25.00
16. **समाजवाद और युद्ध**/लेनिन 20.00
17. **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन 30.00
18. **राज्य और क्रान्ति**/लेनिन ...
19. **सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन ...
20. **दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन 15.00
21. **गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन 50.00
22. **मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन 20.00
23. **कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन ...
24. **क्या करें?**/लेनिन ...
25. **"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन ...
26. **पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन 15.00
27. **जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन 70.00
28. **धर्म के बारे में**/लेनिन ...
29. **तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन 10.00
30. **मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ** जी. प्लेख़ानोव 30.00
31. **जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव 35.00
32. **लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन 50.00
33. **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास** 90.00

34. **माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में) ...

35. **कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ ...

36. **सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/ माओ त्से-तुङ ...

37. **दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/ माओ त्से-तुङ 70.00

38. **कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़**/माओ त्से-तुङ 15.00

39. **माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण** 50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

नयी

1. **दर्शन कोई रहस्य नहीं** 50.00 (जब किसानों ने अपने अध्ययन को व्यवहार में उतारा)
2. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** 300.00
3. **ख़ुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00
4. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00
5. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
6. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/ डी. रियाज़ानोव ... (विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)
7. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ डेविड गेस्ट ...
8. **इतिहास ने जब करवट बदली**/ विलियम हिण्टन 25.00
9. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/ वी. अदोरात्स्की 50.00
10. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन** अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00 (महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)
11. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/ राहुल सांकृत्यायन 65.00
4. **राहुल निबन्धावली**/ राहुल सांकृत्यायन 50.00
5. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/ गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/ गणेशशंकर विद्यार्थी ...
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/ राधामोहन गोकुलजी 40.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता** राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 80.00
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** 35.00
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा** (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/ एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00
7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/ लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/ राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक ...
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ...

——::——

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1. **A Contribution to the Critique of Political Economy** …
2. **The Civil War in France** …
3. **The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte** 80.00
4. **Critique of the Gotha Programme** 50.00
5. **Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy** 25.00
6. **The Poverty of Philosophy** 80.00
7. **Wages, Price and Profit** 50.00
8. **Class Struggles in France** 50.00

FREDERICK ENGELS

9. **The Peasant War in Germany** 70.00
10. **Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy** 65.00
11. **On Capital** 80.00
12. **The Origin of the Family, Private Property and the State** 100.00
13. **Socialism: Utopian and Scientific** 60.00
14. **On Marx** 30.00
15. **Principles of Communism** 5.00

MARX and ENGELS

16. **Historical Writings** (Set of 2 Vols.) 700.00
17. **Manifesto of the Communist Party** 50.00
18. **Selected Letters** 75.00

V. I. LENIN

19. **Theory of Agrarian Question** 160.00
20. **The Collapse of the Second International** 25.00
21. **Imperialism, the Highest Stage of Capitalism** 80.00
22. **Materialism and Empirio-Criticism** 150.00
23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00
24. **Capitalism and Agriculture** 50.00
25. **A Characterisation of Economic Romanticism** …
26. **On Marx and Engels** 35.00
27. **"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder** 75.00
28. **Party Work in the Masses** 55.00
29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 75.00

30. **One Step Forward, Two Steps Back** ...
31. **The State and Revolution** 80.00

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat, *Questions and Answers*** 50.00
33. **On the Dictatorship of the Proletariat: *Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** ...

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00
36. **Anarchism or Socialism?** 60.00
37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** ...
38. **On Organisation** 15.00
39. **The Foundations of Leninism** 70.00
40. **The Essential Stalin** ...
Major Theoretical Writings 1905–52 (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** 30.00

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 80.00
43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00
44. **On Literature and Art** 80.00
45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** ...
46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** ...

OTHER MARXISM

1. **Political Economy, *Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 375.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 150.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/*Howard Selsam & Harry Martel* ...
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* ...
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)/*Howard Selsam* 100.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics**/*Maurice Cornforth* 70.00

George Thomson

7. **From Marx to Mao Tse-tung** 120.00
8. **Capitalism and After** 100.00
9. **The Human Essence** 80.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions**/*Bob Avakian* ...
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00

12. **The Lessons of the Paris Commune**/*Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

13. **Subversive Interventions** (An Anthology**)** *Abhinav Sinha* 500.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) ...
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov 150.00
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* 80.00

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle Red Papers 7** 175.00
2. **Preface of Class Struggles in the USSR**/*Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University**/*Victor Nee* with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** *William Hinton* 50.00
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* 50.00

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969
   Joshua S. Horn 125.00
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China / *Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* …
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) …

ON THE CASTE QUESTION

1. **On the Caste Question:**
   Towards a Marxist Understanding
   Abhinav Sinha 200.00
2. **Caste and Class:**
   A Marxist Viewpoint / Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 30.00
2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism? /** *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?** 20.00
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality /** *Alok Ranjan* 20.00

"The books that help you most are those which make you think the most. The hardest way of learning is that of easy reading; but a great book that comes from a great thinker is a ship of thought, deep freighted with truth and beauty."

– Pablo Neruda

BIGUL REPRINT SERIES

1.	**Still Ablaze is the Torch of October Revolution**	30.00
2.	**Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan	75.00

WOMEN QUESTION

1.	**The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin*	100.00
2.	**Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** / *Mary Lou Greenberg*	50.00

MISCELLANEOUS

1.	**Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin*	…
2.	**An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin*	20.00

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलनः निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद** (चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना इन पुस्तकों की भी मुख्य वितरक है

1. **बच्चों के लिए अर्थशास्त्र (मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ)**/रंगनायकम्मा 120.00
2. **घरेलू काम और बाहरी काम**/रंगनायकम्मा 40.00
3. **For the Solution of the 'Caste' Question, Buddha is not enough, Ambedkar is not enough either, Marx is a must**/Ranganayakamma 100.00
4. **Economics for Children [Lessons based on Marx's 'Capital']**/Ranganayakamma 150.00
5. **Household Work and Outside Work** 60.00

अनुराग ट्रस्ट

1. **बच्चों के लेनिन** 35.00
2. **Stories About Lenin** 35.00
3. **सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर 25.00
4. **औज़ारों की कहानियाँ** 20.00
5. **गुड़ की डली** /कात्यायनी 20.00
6. **फूल कुण्डलाकार क्यों होते हैं**/सनी 20.00
7. **धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव ...
8. **कज़ाकी**/प्रेमचन्द 35.00
9. **नीला प्याला**/अरकादी गैदार 40.00
10. **गड़रिये की कहानियाँ**/ क़यूम तंगरीकुलीयेव 35.00
11. **चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/ अ. मित्यायेव 35.00
12. **अन्धविश्वासी शेकी टेल**/ सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
13. **चलता-फिरता हैट**/ एन. नोसोव, होल्कर पुक्क 20.00
14. **चालाक लोमड़ी** (लोककथा) 20.00
15. **दियांका-टॉमचिक** 20.00
16. **गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
17. **गुफ़ा मानवों की कहानियाँ**/ मैरी मार्स 20.00
18. **हम सूरज को देख सकते हैं**/ मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच 20.00
19. **मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव 20.00
20. **नन्हे आर्थर का सूरज**/ हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा 20.00
21. **आकाश में मौज-मस्ती**/ चिनुआ अचेबे 20.00
22. **ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन 40.00
23. **एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की 20.00
24. **बहादुर**/अमरकान्त 15.00
25. **बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/ शस्या हर्ष ...
26. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/ मक्सिम गोर्की 10.00
27. **नन्हा राजकुमार**/ आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी 40.00
28. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/ मक्सिम गोर्की 30.00
29. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/ मक्सिम गोर्की 15.00
30. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
32. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
33. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
34. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00

35. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
36. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
37. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
38. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
39. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
40. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
41. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
42. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
43. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
44. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
45. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
46. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
47. **उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर 35.00
48. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
49. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
50. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी 30.00
51. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
52. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
53. **लाखी**/अन्तोन चेख़व 25.00
54. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00
55. **हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक 25.00
56. **घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव 10.00
57. **बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव 20.00
58. **मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन 35.00
59. **पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की 20.00
60. **कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय 30.00
61. **मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव 30.00
62. **सदानन्द की छोटी दुनिया**/ सत्यजीत राय 15.00
63. **छत पर फँस गया बिल्ला**/ विताउते जिलिन्सकाइते 35.00
64. **गोलू के कारनामे**/रामबाबू 25.00
65. **दो साहसिक कहानियाँ**/ होल्गर पुक्क 15.00
66. **आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क 20.00
67. **कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क 20.00
68. **रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क 20.00
69. **अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क ...
70. **नये ज़माने की परीकथाएँ**/ होल्गर पुक्क 25.00
71. **किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/ मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन 15.00
72. **पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन) / कमला पाण्डेय 30.00
73. **यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण) / कमला पाण्डेय 100.00
74. **हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ) / कमला पाण्डेय 60.00
75. **कालमन्थन** (उपन्यास) / कमला पाण्डेय 60.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादकः कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादकः कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फ़ोन: 9936650658, 8853093555

वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com

वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com



मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय

बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094

ईमेल : ahwan@ahwanmag.com, ahwan.editor@gmail.com

वेबसाइट : ahwanmag.com

फ़ेसबुक : facebook.com/muktikamiahwan

एक प्रति : 20 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल–साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र–पत्रिकाएँ
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों–चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य–निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास और **ऐरण प्रकाशन** की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्रोतों - सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और देशी-विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

हमसे पुस्तकें मँगाने के लिए इन बातों का ध्यान रखें

- प्रत्येक पत्र तथा आदेश-पत्र पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) और फ़ोन नम्बर साफ़-साफ़ लिखें।
- मनीऑर्डर के पीछे सन्देश वाले स्थान पर अपना पूरा नाम-पता (पिनकोड सहित) साफ़-साफ़ ज़रूर लिखें।
- चेक/ड्राफ़्ट 'जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति' (JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI) के नाम से लखनऊ में देय भेजें। बैंक खाते की जानकारी :

  खाता सं. 0762002109003796

  पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज, लखनऊ

  IFSC: PUNB0076200
- पुस्तकों पर डाक-व्यय तथा रेल या ट्रांसपोर्ट का भाड़ा अलग से देय होगा।
- पुस्तक विक्रेताओं तथा वितरकों द्वारा पुस्तकें मँगाने की शर्तों के लिए हमसे पत्र, ईमेल अथवा फ़ोन से सम्पर्क करें।

जनचेतना पुस्तक प्रतिष्ठान समिति द्वारा संचालित